हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत् त्वं पूषन् ! अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

—ईशोपनिषद्

सोने की तरह चमकीले ढक्कन से सत्य का मुंह ढका हुआ है । हे पूषन् ! (जगत् का पोषण करने वाले भगवान् !) सत्य-धर्म का दर्शन कराने के लिए वह ढक्कन हटा दो ।

१

वह पैसेंजर गाड़ी के तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठा था। प्रभात का सुहावना समय था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। खिड़की से जहां भी नजर फैलाता, दूर नई हरियाली ही हरियाली दिखाई देती थी जो आंखों को शीतलता पहुंचाती थी। बीच में एकाध नदी भी आ जाती जो जल की विपुलता में, भरी हुई वह रही थी। बीच-बीच में कुछ झरने भी पड़ जाते थे, पर वे भी अपने जल के अलंकार से युक्त, बाल-बच्चों से भरे-पूरे परिवारों की तरह प्रसन्न दिखाई देते थे। वर्षा ऋतु का आधा मौसम समाप्त हो गया था, सृष्टि अपने प्राकृतिक सौन्दर्य की आभा से लहलहा उठी थी, हरी हो गई थी, मानो वह चारों तरफ आनन्द ही आनन्द बरसा रही हो। समूचे वातावरण में उल्लास ही उल्लास था। आकाश में उड़ते हुए पक्षी दिखाई देते तो लगता कि मानो वे गीत गाते जा रहे हैं। खेतों-खलिहानों में गाय-भैंसें दिखाई देतीं, तो लगता कि वे भी न जाने किस अपूर्व उमंगों से भरी कूद-फांद रही हैं। मानो सारी धरती, आकाश और सृष्टि एक नये रंग में रंग उठी हो, एक नये संगीत से झंकृत हो उठी हो।

गाड़ी की रफ्तार बहुत तेज नहीं थी क्योंकि वह पैसेंजर गाड़ी थी। हर स्टेशन पर वह रुकती और दो-चार मिनट ठहरकर फिर आगे बढ़ती। वह बड़े कुतूहल से चढ़ने-उतरने वाले मुसाफिरों को देखता, पान, चाय, बीड़ी, सिगरेट बेचने वालों को देखता, स्टेशन के बाबुओं को देखता। ऐसा लगता जैसे सबमें नई जान आ गई हो। वह पुरानी मुर्दनी, पुरानी मायूसी और सुस्ती न जाने कहां गायब हो गई और उसकी जगह यह उत्साह, यह फुर्ती, यह चुस्ती न जाने कहां से आ गई?

पर उसे जो सबसे आश्चर्य हुआ वह इस बात का कि खेतों-खलिहानों में, देहात के छोटे-छोटे गांवों में, मकानों पर, झोंपड़ियों पर एकाएक इतने राष्ट्रीय झण्डे कैसे फहराने लगे। जहां कहीं मनुष्यों की बस्ती दिखती, दो-चार फूस के झोंपड़े नजर आते, वहां एक न एक झण्डा ज़रूर दिखाई देता जो उस सुहावनी

प्रभात की शीतल समीर में फड़फड़ा उठता। इन तिरंगे झण्डों का इतना व्यापक प्रदर्शन किसी दल या संगठन की हिदायतों के कारण नहीं था। यह तो इतना स्वयंस्फूर्त और आकस्मिक था, जैसे देश के कोटि-कोटि लोगों के मन में एक साथ यही प्रेरणा उठी हो कि आज देश स्वतन्त्र हो गया है और हमें अपने राष्ट्रीय झण्डे को शान के साथ फहराना चाहिए, उसका वन्दन करना चाहिए।

भारतीय स्वतन्त्रता का पहला दिन! भारतीय शासन-प्रतिष्ठा का प्रथम मंगल प्रभात!

१५ अगस्त, १९४७ का स्वर्ण दिवस! अनन्त वर्षों का स्वप्न आज साकार हो उठा, अनगिनत लोगों की तपस्या सार्थक हुई, कोटि-कोटि जनों की प्रार्थना सुन ली गई, और भारत की गुलामी की लम्बी काली रात खतम हो गई। ऋषि-मुनियों का देश, संतों और तपस्वियों का देश, चिन्तकों और कर्मयोगियों का देश, धर्म-गुरुओं और प्रतापी राजाओं का देश, जो मध्ययुग में पतन के गर्त में गिरा हुआ था, अब फिर उठ खड़ा हुआ है, अपनी सारी इज़्ज़त और वैभव के साथ। हम धन्य हो गए, हम कृतार्थ हो गए। हमारे अहोभाग्य जो आज हम जीवित हैं और यह अद्‌भुत संक्रान्ति, यह विराट परिवर्तन स्वयं अपनी आंखों देख रहे हैं। इतिहास हमारे सौभाग्य पर नाज़ करेगा, आने वाली पीढ़ियां मीठी ईर्ष्या करेंगी। कैसे उनके धन्य भाग्य थे जो यह सब वे अपने जीते जी देख सके।

उसकी आंखें सजल हो उठीं, कण्ठ गद्‌गद हो गया, आनन्द के अतिरेक में, उल्लास की उर्मियों में। वह अपने आपको नहीं सम्भाल सका, आंसू बहते रहे और वह उन्हें रूमाल से पोंछता रहा। यह अच्छा था कि उसका चेहरा खिड़की के बाहर था और उसके सहयात्री उसे देख नहीं पाते थे।

उसे याद आया गत मध्यरात्रि का वह अविस्मरणीय प्रसंग। गवर्नमेन्ट हाउस में सत्ता के हस्तांतरण का समारोह था और नये राज्यपाल तथा मन्त्रिमण्डल की शपथ-विधि। अन्तिम अंग्रेज़ गवर्नर प्रस्थान कर रहा था, उसकी जगह एक सफेद टोपी वाला खादीधारी भारतीय राज्यपाल का स्थान लेने वाला था। पुराना मन्त्रिमण्डल समाप्त होकर नया मन्त्रिमण्डल स्वतन्त्र भारत की निष्ठा की शपथ ग्रहण करने वाला था। यूनियन जैक की जगह राष्ट्रीय तिरंगा उस भव्य प्रासाद के प्रांगण में फहराने वाला था जहां आज तक केवल अंग्रेज़ी शासकों का ही आधिपत्य था।

एक स्थानीय पत्र के सम्पादक की हैसियत मे उसे भी उस समारोह का निमन्त्रण था, और उसने जीवन में पहली बार गवर्नमेन्ट हाउस के अहाते में कदम रखा था।

ठीक मध्यरात्रि की घड़ी आ पहुंची, एक तोप छूटी, यूनियन जैक उतरा, उसकी जगह राष्ट्रीय ध्वज चढ़ा, पुलिस के बैंड ने 'गॉड सेव द किंग' की जगह वन्देमातरम् के स्वरों का उद्घोष किया, सिपाहियों ने और नये राज्यपाल ने ध्वज को सलामी दी और एक जुलूस के साथ दरबार हॉल में प्रवेश किया जहां सभी अतिथि पहले से ही प्रतीक्षा में बैठे थे। खद्दरधारी राज्यपाल के प्रवेश करते ही सारे भवन में एकदम शान्ति छा गई, सबने हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर उनका आदरपूर्वक अभिवादन किया। हमारी स्वातन्त्र्य भावना का वही प्रतीक था। इसमें व्यक्ति की महत्ता की कोई बात नहीं थी, वह भावना की बात थी।

उसने सहसा देखा कि चीफ सेक्रेटरी जो अब तक सिर्फ अंग्रेज़ी लिबास में ही रहा करते थे आज खद्दर की काली शेरवानी, चूड़ीदार पैजामा और सफेद गांधी-टोपी लगाए समारोह का संचालन कर रहे हैं।

हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस एक अंग्रेज़ थे पर उन्होंने शपथ-विधि हिन्दी में पूरी कराई। राज्यपाल ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में शपथ दोहराई, जिसके बाद मंत्रि-मण्डल को शपथ उन्होंने दिलवाई। चीफ सेक्रेटरी की कल्पकता के कारण पांच दक्षिणी ब्राह्मण भी त्रिपुण्ड लगाए, लाल ज़री की शाल ओढ़े स्वतन्त्रता के आगमन में वेदमन्त्रयुक्त पुष्पांजलि अर्पण करने के लिए उपस्थित थे। जिस राजभवन ने आज तक गोरे स्त्री-पुरुषों के नृत्य-संगीत या संभाषण की ध्वनियां ही सुनी थीं, जहां मटन और गो-मांस के और शराब के जामों के दौर चला करते थे, जिससे मदहोश होकर रंगरेलियों के फव्वारे छूटा करते थे, उसी भवन में आज वेदों की मन्त्र-ध्वनि सुनाई पड़ी। काल-चक्र का कितना ज़बर्दस्त परिवर्तन था? कैसा अद्भुत, कैसा महान्, कैसा भाग्यशाली। मानो आंखों के सामने ही इतिहास ने करवट ली और अपने विराट ग्रन्थ का एक अध्याय समाप्त किया, और दूसरे अध्याय के स्वर्ण पृष्ठ का उद्घाटन किया।

राजभवन का यह सब अलौकिक दृश्य देखकर एक सरकारी अधिकारी ने अत्यन्त प्रभावित होकर विचार व्यक्त किया कि आज का यह शुभ दिन जिन त्यागी एवं तेजस्वी शहीदों के बलिदान के कारण नसीब हुआ, जिन महान् नेताओं

के त्याग एवं वीरता के कारण यह देखने को मिला उनकी जूतियां बनाने के काम में यदि मेरे शरीर की चमड़ी का उपयोग हो सका तो मैं धन्य हो जाऊंगा। भावनाओं का एक विचित्र उद्रेक एक बाढ़ की तरह फूट पड़ता था।

मध्यरात्रि का यह समारोह समाप्त होने के बाद जब वह घर लौटा तो रात के डेढ़ बजे थे। उसकी पत्नी राह देखती बैठी थी।

दोनों उठकर पूजागृह में गए, कर्पूरदीप और अगरबत्ती जलाकर भगवान की आरती की, और जमीन पर माथा टेककर प्रार्थना की कि हमारी यह स्वतन्त्रता चिरस्थायी हो, हमारा भारत सुख और समृद्धि को प्राप्त हो, वह अपने घर में तथा विश्व में रामराज्य की स्थापना करने में योग दे सके और स्वतन्त्र भारत अमर हो।

और पूजा के थोड़ी देर बाद ही वह स्टेशन के लिए निकल पड़ा था, क्योंकि उसे प्रातःकाल की गाड़ी से किसी तहसील के एक स्थान पर जाना था जहां सुबह साढ़े आठ बजे उसीके हाथों ध्वज फहराने का समारंभ होने वाला था। वह स्थान शहर से लगभग साठ मील दूर था और इसी पैसेंजर गाड़ी से गए बगैर वह वहां समय पर पहुंच नहीं सकता था।

और वह उस पैसेंजर गाड़ी के तीसरे दर्जे के डिब्बे के एक कोने में बैठा इस प्रवास पर जा रहा था। पर उसकी भावनाएं तरल थीं, हृदय गद्गद था, शरीर का रोम-रोम पुलकित था मानो उसका समस्त व्यक्तित्व ही किसी दिव्य शक्ति के कारण अनुप्राणित हो उठा हो।

ठीक आठ बजे गाड़ी नियत स्टेशन पर पहुंची।

भारत माता की जय ! स्वतन्त्र भारत की जय ! आजाद हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद !

दो-ढाई सौ लोगों का जमाव उसके स्वागत के लिए इकट्ठा हुआ था, और उत्साह के साथ गला फाड़-फाड़कर नारे लगा रहा था। बीसियों लोगों के हाथों में राष्ट्रीय झण्डे थे, कुछ लोगों के हाथ में फूलमालाएं थीं, गुच्छे थे। लोगों के आनन्द और उत्साह का ठिकाना नहीं था। उन्होंने अत्यन्त प्रेम से उसका स्वागत किया।

झण्डा फहराने का कार्यक्रम पुलिस थाने के सामने वाले मैदान में था, जहां सन् बयालीस की क्रांति के दौरान में जगन्नाथ नाम के एक स्वयंसेवक को पुलिस

की गोली खाकर शहादत मिली थी। आज उस मैदान का नाम जगन्नाथ चौक रखा गया था।

कार्यक्रम के संयोजक महोदय ने अपने प्रारंभिक भाषण में कहा :

'आज की इस मंगल वेला में हमारे ध्वजारोहण के लिए हमें श्रीमान धनंजय बाबू जैसे महान देशभक्त मिले उसके लिए हम अपने आपको धन्य मानते हैं। वे 'युगान्तर' नामक तेजस्वी राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं जिसने इस प्रदेश में क्रान्ति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित रखने में महत्वपूर्ण योग दिया है। वे सन् बयालीस की क्रान्ति में साढ़े तीन वर्ष जेल भोग चुके हैं, और क्रान्ति-आन्दोलन के एक मूक एवं गुप्त नेता के रूप में जाने जाते हैं। हमारे नगर के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसके कारण हमने उन्हें आज इस शुभ समारोह के लिए विशेष रूप से कष्ट दिया। शहीद जगन्नाथ की मृत्यु के बाद वे उसकी वृद्धा मां को सांत्वना देने के लिए यहां तुरन्त दौड़ आए थे, और उसके दुखी परिवार को उन्होंने आर्थिक मदद पहुंचाकर उसके दुःख को कम करने का प्रयत्न किया था। धनंजय बाबू को राजनीति से कोई दिलचस्पी नहीं है पर वे उच्चकोटि के देशभक्त हैं जिनकी विधायक एवं अदृश्य सेवाओं के कारण इस प्रदेश का क्रान्ति-आन्दोलन ताकत और प्रोत्साहन पाता रहा और अन्त में चलकर सफल हुआ। देश के शहीदों के लिए उनके मन में सबसे अधिक आस्था है, और एक शहीद के मृत्यु-स्थल पर उन्हींके कर-कमलों द्वारा ध्वज चढ़ाने में विशेष औचित्य है, ऐसी हमारी धारणा है। अब हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे ध्वज-वंदन का समारोह सम्पन्न करें।'

धनंजय ने स्थानीय तिलक विद्यालय के बैण्ड की सलामी के साथ ध्वज फहराया। करतल-ध्वनि के साथ जनता ने उसका नमन किया, सबने मिलकर बड़े जोश के साथ 'भण्डा ऊंचा रहे हमारा' गीत गाया।

धनंजय ने अपने भाषण में कहा :

'आज का स्वर्ण दिवस धन्यवाद और प्रार्थना का है। हमारा कर्तव्य है कि हम जगन्नियन्ता परमेश्वर को अपने समस्त अन्तःकरण के भक्तिभाव से धन्यवाद दें जिसकी असीम अनुकंपा के कारण हमें आज का दिन देखने को मिला। हम आज भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे देश को धन-धान्य और सुख-समृद्धि से पूरित करे ताकि हमारी जनता के शताब्दियों के कष्टों का परिमार्जन हो और उन्हें सुख-चैन के दिन नसीब हों। हमें आज यह भी प्रार्थना करनी है कि भगवान

हमारे नेता, हमारे महाप्राण महात्मा गांधी को दीर्घायु प्रदान करे, जिनके क्रान्तिकारी नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन के कारण हम इतने बड़े शक्तिशाली साम्राज्य के पंजे से अपनी मुक्ति पा सके। हमें उन असंख्य शहीदों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए, जिनके अतुल त्याग और बलिदान के कारण हमें आज की शुभ घड़ी का दर्शन हुआ। हमें कितने भी अच्छे दिन देखने को मिलें, हम कितने ही सम्पन्न और खुशहाल क्यों न हो जाएं, पर हमें इन महापुरुषों और उनके परिवारों का विस्मरण कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे बढ़कर और कोई कृतघ्नता नहीं हो सकती। जो देश और जाति अपने पूर्वजों का तथा अपने उपकारकर्ताओं का स्मरण नहीं करती है वह कदापि महान नहीं हो सकती।

'आज अंग्रेज़ चले गए हैं और सत्ता हमारे हाथ में, हमारे देशवासियों के हाथ में, आपके-हमारे हाथ में आ गई है। यह सत्ता भारतीय जनता की सत्ता है और हम लोग उसके न्यासी मात्र हैं, ट्रस्टी हैं। हमें दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम इस सत्ता का दुरुपयोग हर्गिज़ नहीं करेंगे। उसके कारण मन में मद या अहंकार नहीं आने देंगे, सबके साथ न्याय और निष्पक्षता का बर्ताव करेंगे, सत्य-धर्म से और कर्तव्य के पथ से भ्रष्ट नहीं होंगे और सदा-सर्वदा नम्र बनकर निष्ठापूर्वक लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करते रहेंगे। हम कभी नहीं भूलेंगे कि हम एक गौरवमय विशाल देश के निवासी हैं जिसका पूर्वेतिहास उज्ज्वल और प्रेरणादायक है, जिसने गांधी के मार्ग पर चलकर सत्य और अहिंसा का उपयोग करके स्वाधीनता प्राप्त कर ली, जो घटना सारे विश्व और मानवता के इतिहास में बेजोड़ है। इसका हम यही अर्थ लगाते हैं कि प्रारब्ध ने हमें ही इस मार्ग में चलने के लिए प्रवृत्त किया है और इस मार्ग का सारे विश्व में प्रचार एवं प्रसार करना हमारा धर्म है, मिशन है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इसी मार्ग से विश्व की जटिल से जटिल समस्याएं सुलझ सकती हैं, वह हिंसा के दुश्चक्र से मुक्त हो सकता है और हिंसात्मक युद्ध के विध्वंस से मानवता को तथा दुनिया को बचा सकता है। हमारी नम्र मान्यता है कि नियति ने शायद भारत के लिए यही कार्य सौंपा है, यही संदेश दिया है कि जाओ, अपने देश में तथा विश्व में धर्म-चक्र का प्रवर्तन करो तथा धर्म-राज्य की स्थापना का कंकण बांध लो ताकि सारी दुनिया में ही ईश्वर का साम्राज्य उतर पड़े।

'आज के इस शुभ दिवस पर हमें भगवान से प्रार्थना करनी है, शक्ति मांगनी

है। क्योंकि आज से हमारे देश की नई जीवन-यात्रा प्रारंभ होती है। यह यात्रा कठिन है। इस यात्रा पर तो ईश्वर का आशीर्वाद ही हमारा सबसे बड़ा पाथेय बन सकता है…'

न जाने कितनी देर तक अस्खलित वाणी में धनंजय यही सब कहता गया और जनता एकाग्र चित्त से सुनती रही, बड़े चाव से, बड़ी तन्मयता से, जैसे कोई गंभीर वाणी उन्हें ललकारकर कर्तव्य-पथ पर चलने के लिए आवाहन कर रही हो।

आज के समारोह में चार-पांच पुलिस के आदमी तथा स्थानीय सरकारी नौकर उपस्थित थे। खासकर पुलिस के सबसे बड़े स्थानीय अधिकारी सर्किल साहब तो आज शक्कर की लकड़ी जैसे मीठे और मधुर बनकर दौड़-धूप कर रहे थे। जिस जनता पर उन्होंने क्रूर दमन नीति बरती थी उसीकी कृपा पाने के लिए आज वे विशेष रूप से कोशिश कर रहे थे। समारोह के बाद तो उन्होंने धनंजय को तथा नगर के आठ-दस प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओं को अपने घर चाय-पानी के लिए बुलाया और बड़ी शानदार पार्टी दे डाली। स्थानीय कार्यकर्ता जो आज से पहले सर्किल साहब को जल्लाद मानते थे, उनका यह परिवर्तित रूप देखकर दंग रह गए थे। जिन सर्किल साहब के नाम का आतंक उनके दिल पर छाया था—वे तो आज इतनी खुशामद और आवभगत में लगे थे कि लोग दंग रह जाते थे और अपने आपको बड़ा खुश-किस्मत समझ रहे थे। इन्हीं लोगों का आग्रह धनंजय नहीं टाल सका हालांकि किसी भी पुलिस-अफसर के यहां की चाय पीने में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन स्थानीय कार्यकर्ताओं का ख्याल था कि यदि उन लोगों ने पुलिस के यहां जाकर चाय पी ली तो तमाम नगर को मालूम हो जाएगा कि ज़माना सचमुच बदल गया है और स्वतंत्रता-प्राप्ति का दृश्य रूप में क्या मतलब होता है। कल तक यही पुलिस हमें दुतकार दिया करती थी, घुड़कियां भरा करती थी, पर आज वही हमारी खुशामद कर रही है, हमारा सत्कार कर रही है।

पर न जाने क्यों धनंजय के गले में वह चाय अटक-अटक जाया करती थी। वह चाय पीना तो चाहता था, भाषण देने के बाद उसका गला उसीकी चाह में उत्सुक था, पर पुलिस थाने की चाय ने उसे ज़रा भी स्वाद नहीं दिया। वह चाय पीने का नाटकमात्र करता रहा पर जाते समय वह उसे करीब-करीब वैसी की वैसी हालत में छोड़कर ही चलता बना। बोला, 'मुझे गाड़ी पकड़नी है क्योंकि

तुरन्त शहर लौट जाना है, अग्रलेख जो लिखना है।'

एक बात जो उसे स्पष्ट याद रही थी, वह यह थी कि चाय पीने-पिलाने की आव-भगत के दौरान में सर्किल साहब यदि बार-बार किसी चीज़ को दोहरा रहे थे तो वह यह थी कि पुलिस की गोलीबारी के लिए वे जिम्मेदार नहीं थे, एस० डी० ओ० साहब थे जिन्होंने बार-बार मना करने पर भी गोली चलाने का हुक्म दिया और बेचारे जगन्नाथ की नाहक मृत्यु हो गई। उन्होंने तो यहां तक कहा कि मैंने तो बल्कि जगन्नाथ की जान बचाने की हर तरह कोशिश की क्योंकि वह बेचारा एक बेकसूर नौजवान था जो देश के काम आ सकता था, पर उनकी एक नहीं चली। गांधीजी का असर तो उनके परिवार में बरसों से था और सबूत के नाते उन्होंने जेब से पीतल का एक लॉकेट निकाला जिसपर गांधीजी का फोटो लगा था। भला बताइए, उनकी सज्जनता और देशभक्ति के बारे में शक करने की अब भी कोई गुंजाइश थी? उनके सारे हाव-भाव और बर्ताव-ब्योहार रह-रहकर मानो यही सवाल पूछते थे।

२

मन्त्रिमण्डल के नेता पूरणचन्द्र जोशी देश के एक पुराने तपे हुए कार्यकर्ता थे। गांधीजी के सन् बीस के असहयोग आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय हिस्सा लिया था और तीन महीने के लिए पिकेटिंग के जुर्म में जेल की चक्की पीसी थी। सन् तीस के सत्याग्रह में उन्हें एक साल की सज़ा हुई थी। सन् बत्तीस के आन्दोलन में गोलमेज़ परिषद से लौटने पर गांधीजी की गिरफ्तारी होने के बाद वे भी गिरफ्तार कर लिए गए थे और दो साल की कड़ी कैद की सज़ा पा चुके थे, पर छः महीने के बाद ही वे मेडिकल ग्राउंड्स पर रिहा कर दिए गए थे। तब से उन्होंने राजनीति की अपेक्षा हरिजन उद्धार के कार्यक्रम में विशेष योग देना शुरू कर दिया। सन् पैंतीस में केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों में उनके दल की शानदार जीत हुई जिसका असर प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव पर भी पड़ा। नतीजा यह हुआ कि पं० पूरणचन्द्र जी की पार्टी बहुसंख्या में विजयी हो गई और वही उसके नेता चुने गए। प्रदेश का पहला राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल उन्हींके नेतृत्व में स्थापित

हुआ। पण्डित पूरणचन्द्र की प्रतिष्ठा में अचानक अद्भुत वृद्धि हुई और वे सारे भारत में एक मज़बूत और यशस्वी नेता के रूप में माने जाने लगे। बैरिस्टर थे, अंग्रेज़ी और हिन्दी अच्छी जानते थे, ऊंचा, पूरा गोरा व्यक्तित्व था, शुभ्र खद्दर के वस्त्रों में बहुत भले दीखते थे। उनके व्यक्तित्व का लोगों पर फौरन प्रभाव पड़ता था। वक्ता भी बहुत अच्छे थे, बिना रुके बोलते थे। बीस-बीस, पचीस-पचीस हज़ार की सभाओं को वे अपने भाषणों से मन्त्रमुग्ध कर दिया करते थे। गांधीजी के आन्दोलनों के कारण उन्हें कई बार अदालतों का बहिष्कार करना पड़ा, प्रैक्टिस छोड़नी पड़ी। कभी-कभी ऐसे मौके भी आए कि घर में फाके पड़ने की नौबत आ गई। पुश्तैनी जायदाद थी वह भी एक-एक कर बिकने लगी। पहले दो-एक मकान बिके, पीछे खेती की ज़मीन। यहां तक नौबत आई कि एकाध बार वे राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरे पर फटी कमीज़ पहने भी नज़र आए। जनता के हृदय को उनका त्याग स्पर्श कर गया और उन्होंने तुरन्त ही उसके दिल में स्थान पा लिया। वे बड़े प्रेम से उन्हें 'पूरन बाबू' कहकर पुकारते। राष्ट्रीय मान्यताओं में भी वे अत्यन्त कट्टर थे। प्रखर देशभक्त थे, अंग्रेज़ी शासन का बैर जैसे उनकी हड्डी-हड्डी में समाया हुआ था। निर्भीक इतने कि खुले आम सभा में बड़े से बड़े अंग्रेज़ी अफ़सर की ऐसी मरम्मत करते, ऐसी धज्जियां उड़ाते कि सारी अंग्रेज़ नौकरशाही थर्रा उठती थी। उस ज़माने में जब अंग्रेज़ी हुकूमत की जड़ें मज़बूत थीं और उनके साम्राज्य में जब सूरज नहीं डूबता था, यह बात बड़ी दिलेरी और बहादुरी की मानी जाती थी। अधिकांश पढ़े-लिखे लोग तो अंग्रेज़ी सल्तनत और अंग्रेज़ अफ़सरों की खुशामद करने में ही जीवन की इतिश्री समझते थे। उन्हीं जैसा लिबास पहनना, उन्हींके लहजे में अंग्रेज़ी बोलने की कोशिश करना, उन्हीं जैसा मेज़ पर कांटे-चमचों से खाना खाना और उन्हीं जैसे प्यालों में गोरे हुक्कामों की 'हेल्थ' के लिए शराब पीना और उन्हीं जैसे ऐंग्लो-इण्डियन अखबार पढ़ना, यही उन दिनों का फैशन था, सभ्यता की सबसे बड़ी निशानी थी। बाकी हिन्दुस्तानी तो गंवार-देहाती थे, काले 'नेटिव' थे या पं० पूरणचन्द्र जैसे बागी और गद्दार।

पर पूरणचन्द्र सचमुच बड़े शूर थे और अपने धुन के पक्के। एक बात की ज़िद पकड़ ली तो फिर धरती फट जाए या आसमान टूट पड़े तब भी वे पीछे हटने वाले नहीं थे। वे जब ललकार कर आम सभाओं में दहाड़ते तो पुलिस के रिपोर्टर भी उनकी अक्षरशः रिपोर्ट लेने में घबड़ाते थे क्योंकि उन्हें डर था कि अंग्रेज़

कप्तान यदि उसे पढ़ेगा तो पहला गुस्सा वह पुलिस रिपोर्टर पर ही निकालेगा। पूरणचन्द्र पर प्रदेश को नाज़ था, और वे फौरन गांधीजी की नज़रों पर भी चढ़ गए। उन्हें इसी प्रकार के नेताओं की ज़रूरत थी। यही उनकी सेना थी, जिसने अंग्रेज़ी साम्राज्य के छक्के छुड़ा दिए और भारत को स्वाधीनता दिलाई। जनता भरे हृदय से उनका स्वागत करती। उनकी अपूर्व लोकप्रियता के कारण कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यदि राष्ट्रीय दल का मन्त्रिमण्डल बना तो उन्हें छोड़कर और कोई मुख्य मन्त्री बन सकता था।

सन् १६३७ में वे ही मुख्य मन्त्री हुए तो उनकी प्रतिभा और प्रभाव में चार चांद लग गए। जहां देखो वहां 'पण्डित पूरणचन्द्र की जय', 'पण्डित पूरणचन्द्र की जय' यही नारे सुनाई पड़ते थे। पर यह मन्त्रिमण्डल दो वर्ष भी नहीं टिका। दूसरा महायुद्ध छिड़ गया, अंग्रेज़ों ने बगैर राष्ट्रीय नेताओं से सलाह किए भारत को भी युद्ध में झोंक दिया। राष्ट्रीय नेताओं ने प्रतिकार के रूप में अपने मन्त्रिमण्डलों को स्तीफा देने का आदेश दे दिया। पूरन बाबू ने भी तुरन्त त्यागपत्र दे दिया और गांधीजी के व्यक्तिगत सत्याग्रह में शामिल हो गए।

छः महीने की सज़ा पाई तब बाहर निकले। राष्ट्रीय एवं तेजस्वी विचारों के समाचारपत्र की स्थापना की, क्योंकि पराधीन भारत में राष्ट्रीय समाचारपत्र ही लोक-जागृति के साधन थे। आन्दोलन की आग को प्रज्ज्वलित करने का महान कार्य भी राष्ट्रीय पत्र ही किया करते थे। पर वे अपने समाचारपत्र को ठीक से जमा भी नहीं पाए थे कि गांधीजी ने सन् बयालीस का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ दिया। पण्डित पूरणचन्द्र जी के समाचारपत्र को सरकारी प्रकोप का भाजन बनना पड़ा, पांच हज़ार रुपये की ज़मानत दाखिल करनी पड़ी। इसी बीच पूरन बाबू गिरफ्तार हो गए और लम्बी मियाद तक जेल में नज़रबन्द कर दिए गए। उनपर इलज़ाम था कि वे ब्रिटिश सरकार के युद्ध-कार्य में बाधा उपस्थित करते थे। इसलिए ज़ाहिर था कि युद्ध की समाप्ति तक उनकी रिहाई असंभव थी। युद्ध कितना चलता है यह कौन कह सकता था? पांच वर्ष चलता है कि सात वर्ष, भविष्यवक्ताओं को भी यह कहना कठिन था। इसलिए पूरणचन्द्र जी तथा उनके सभी साथियों ने आशा ही छोड़ दी कि जेल की चहारदीवारी से वे जल्दी बाहर निकल सकेंगे। उनमें से कुछ तो वयोवृद्ध थे। वे जिन्दा बाहर जा सकेंगे या नहीं यह कहना भी कठिन दिखाई देता था। इसलिए वे भजन-पूजन तथा निवृत्ति

के मार्ग में लग गए। उनकी इच्छा यही थी कि वे जिन्दा रहें या मर जाएं, इसमें कोई खास बात नहीं है। जो आया है सो तो जाएगा ही। पर कैसा अच्छा हो यदि मृत्यु के पहले वे यह समाचार सुन सकें कि उनका देश स्वतन्त्र हो गया है! ऐसा सौभाग्य उन्हें यदि मिल जाए तो मृत्यु भी बड़ी मंगलमयी हो उठेगी। पर ऐसी किस्मत क्या हम सचमुच लिखा कर लाए हैं?

पर पूरणचन्द्र और उनके साथियों को पांच वर्ष जेल में नहीं सड़ना पड़ा। सन् पैंतालीस में ही ब्रिटिश शासन की नीति बदली। उनकी समझ में यह बात आ गई कि भारत में अब जो जागृति फैल चुकी है, उसकी आग फौजों में भी पहुच गई है। सुभाष बाबू के नेतृत्व में आज़ाद हिन्द सेना ने अंग्रेज़ी सत्ता के खिलाफ जो बगावत की उससे उनकी आंखें खुल गईं। फौजी शासन की दृष्टि से यह घटना बड़ी गंभीर थी। जिनके दिल ही बागी हो गए हों तो उनके जिस्म पर हुकूमत चलाकर क्या हासिल होगा? ऐसी सेना जिसका दिल और वफादारी अपने साथ नहीं है कब उलटकर हमें गड्ढे में डाल देगी इसका क्या भरोसा? हां, ब्रिटिश फौजों के बल पर गोरे सिपाहियों की संगीनों के बूते हिन्दुस्तान पर और दस-पन्द्रह साल राज किया जा सकता है पर उससे जो कटुता और विद्वेष की भावना फैलेगी उससे किसका कल्याण होगा? अंग्रेज जाति का भी नहीं। तो फिर ऐसी ज़ोर-ज़बर्दस्ती से फायदा? इससे बेहतर यही होगा कि अपनी स्वेच्छा से, भद्रता से यहां से अपनी सत्ता हटा ली जाए और सद्भावना और मैत्री के वातावरण में भारत सरकार की बागडोर राष्ट्रीय नेताओं के हाथ में सौंप दी जाए। उससे कम से कम द्वेष और प्रतिहिंसा के दुश्चक्र से तो मुक्ति मिलेगी, और भारत की मित्रता पाकर ब्रिटिश कॉमनवेल्थ की सुरक्षा हो सकेगी। यह राष्ट्र-कुटुम्ब समता और संपूर्ण स्वायत्तता की बुनियाद पर ही कायम हो सकता है और उसका असर दुनिया के राष्ट्रों पर भी पड़ेगा। भारतीय साम्राज्य की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सत्ता और प्रतिष्ठा को जो क्षति उठानी पड़ेगी उसकी बहुत कुछ पूर्ति इस बात से हो सकेगी और इंग्लैंड के नैतिक प्रभाव पर विशेष विपरीत परिणाम नहीं होगा। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ सचमुच अत्यन्त चतुर और दूरदर्शी थे। समय की गति को पहचानने में तथा उसके साथ समरस होने में वे देर नहीं लगाते थे। इसलिए यह छोटा-सा द्वीप-समूह विश्व की राजनीति में इतना असर रखता है। अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने के निर्णय ने देश में एक नई लहर पैदा कर दी। लोग सन् बयालीस की क्रान्ति की

क्रूरता और बर्बरता को, यम-यन्त्रणाओं को भूलने की इच्छा करने लगे। आखिर जब हम स्वतन्त्र हो ही रहे हैं तो पुरानी कटुताओं को दिल में समाए रखने में क्या बुद्धिमानी है ? भूलो और माफ करो तथा अपने इतिहास का नया पन्ना खोलो, यही श्रेयस्कर है। और इस वातावरण में भारत और ब्रिटेन की सच्ची मैत्री का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। दुनिया ने दांतों तले उंगली दबाकर इस अद्भुत क्रान्ति का अवलोकन किया। सत्ता के हस्तांतरण की क्रिया अत्यन्त तेज़ी के साथ संपन्न कर दी गई।

स्वातन्त्र्य सूर्य को एक ही ग्रहण लगा, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का। अन्त तक दोनों में एकता प्रस्थापित नहीं हो सकी। घृणा और विद्वेष का भूत दिल और दिमाग पर सवार था। उसके सामने भीतर बैठने वाली मनुष्यता दब गई, उसकी आवाज़ क्षीण हो गई। सभी दलों ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि भारत को खण्डित करना होगा, अखण्ड भारत नहीं बन सकता। एक राष्ट्र हो या दो राष्ट्र, अंग्रेज़ रुकने के लिए तैयार नहीं थे, इसलिए भारत का विभाजन कर वे दोनों के हाथ में सार्वभौम सत्ता सौंपकर चलते बने।

भारत खण्डित तो हुआ, विभाजन की विभीषिका से अभिशप्त भी हुआ, पर धन्य हो उठा। इतना बड़ा भूमि-खण्ड कभी एक झण्डे के नीचे इस देश के पुरातन इतिहास में भी समाविष्ट नहीं हुआ था। भारतीय जनता आनन्द विभोर हो उठी। खुशी के मारे नाच उठी, पागल हो गई।

उसी वातावरण में आई अगस्त सन् १९४७ की १४-१५ की मध्यरात्रि, जब गवर्नमेंट हाउस के समारोह में सत्ता-हस्तान्तरण का कार्य सम्पन्न हुआ। इसके पहले भी पूरणचन्द्र जोशी का मन्त्रिमण्डल अधिकारारूढ़ था, पर वह स्वतन्त्र भारत के प्रदेश का मन्त्रिमण्डल नहीं था। इसलिए ज़ाप्ते के लिए उस मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दिया, और फिर दुबारा स्वतन्त्र भारत के अन्तर्गत इस प्रदेश के प्रथम मन्त्रिमण्डल के रूप में शपथ ग्रहण की। पूरणचन्द्र अपने इस अपूर्व गौरव को देखकर गद्गद हो गए। सारी जनता उन्हें सर-आंखों लेकर घूमा करती। स्वतन्त्रता की कल्पना उनके व्यक्तित्व में साकार हो उठी। भारत की जनता स्वभाव से वीर-पूजक है, व्यक्ति-पूजक है। किसी न किसी व्यक्ति को अपने स्वप्नों और आदर्शों का प्रतीक बनाकर वह उसकी अभ्यर्थना करती है। इस श्रद्धा-भावना में फिर वह उसके दुर्गुणों या कमज़ोरियों का विस्मरण कर देती है। प्रेम की तरह

उनकी श्रद्धा भी अन्धी होती है। उसीका लाभ पण्डित पूरणचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व को मिला। उनकी शक्ति, सत्ता और प्रतिष्ठा मुगल बादशाहों से कम नहीं थी। जहां कहीं वे नजर उठाते, वहां उन्हें अपने ही नाम का बोलबाला सुनाई देता। बड़े से बड़े राजनीतिक कार्यकर्ता और सरकारी कर्मचारी उन्हींके चरण छूने में अपनी धन्यता अनुभव करने लगे। वे कहते थे कि इसमें क्या हर्ज है? आखिर पण्डित जी बुजुर्ग हैं, हम सबके पिता के समान हैं। भारत की तो यही परम्परा रही है कि वह सदा-सर्वदा गुरुजनों का आदर करता आ रहा है। फिर हम उनके सामने झुक गए तो इसमें हमारा स्वार्थ कैसा, दोष कैसा?

पण्डित पूरणचन्द्र जब जेल के कैदी थे या ब्रिटिश शासन के ज़माने में उपेक्षित थे, अरण्यवासी थे, तब कितने लोग उनके चरण छूने और भारतीय परम्परा का निर्वाह करने आते थे, यह प्रश्न पूछने की और उसका उत्तर ढूंढ़ने की आज किसीको ज़रूरत न थी, फुर्सत भी नहीं थी। वर्तमान इतना जग मग है, इतना स्वर्णमय है कि भूतकाल के भूतों का और भविष्य की अनिश्चितताओं का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है? आज तो पण्डित पूरणचन्द्र की ही चलती है, और चलती का नाम गाड़ी है। सो इस समय तो इस लोक और परलोक का कल्याण साधने का एक मात्र नारा यही है कि 'बोलो पण्डित पूरणचन्द्र महाराज की जय।' सियाराम की जय और राधाकृष्ण की जय के साथ ही साथ यह नारा युग का प्रतीक बन गया। स्वयं पण्डित पूरणचन्द्र जी ने कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि द्वापर और त्रेतायुग में भगवान रामचन्द्र और भगवान कृष्ण का जो सम्मान हुआ था उसीकी बराबरी का सम्मान उन्हें भी कलियुग में प्राप्त होगा। सन् बयालीस की लम्बी जेलयात्रा के दौरान में तो यह चिन्ता थी कि यह शरीर कभी जीवितावस्था में जेल के बाहर जा सकेगा या नहीं। पर आज तो सजीव शरीर केवल बाहर ही नहीं है, सिंहासन पर विराजमान है। भाग्य ने कहां से कहां पलटा खाया! स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को जब स्वयं भगवान ही नहीं जानते तो मनुष्य की क्या कथा है?

३

गवर्नमेंट हाउस के मध्यरात्रि के समारोह में प्रदेश के कतिपय प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। उसके निमन्त्रण पाने की भी भीतर ही भीतर बड़ी कोशिशें हुई। न जाने कहां-कहां के जोड़-तोड़ मिलाए गए। पर आखिर कामयाबी हासिल हुई और श्री रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी श्रीमती तारामती देवी को भी निमन्त्रण-पत्र मिला। वे लोक-कर्म विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी थे और बड़े क्रियाशील व्यक्ति माने जाते थे। उनकी पत्नी लिपस्टिक और रेशम की साड़ी के बिना बात नहीं किया करती थीं। असली सोने के गहने और मोतियों की माला के बिना वे बाहर नहीं निकलतीं। रघुनाथ सहाय यदि एक मामूली असिस्टेंट इंजिनियर से डिप्टी सेक्रेटरी तक बढ़े तो इसका श्रेय श्रीमती सहाय को कम मात्रा में नहीं था। अंग्रेजी राज में क्लब और डिनर पार्टियों में वे बराबर अपने पति का साथ देती थीं और अंग्रेजी अधिकारियों से बड़ी निस्संकोच हो और खुलेपन से मिलतीं। परदे में या अपनी घर-गृहस्थी में लिप्त रहने वाली हिन्दुस्तानी स्त्रियां बैकवर्ड (पिछड़ी) हैं, इस देश के लोग डर्टी (गंदे) हैं, इनमें कैरेक्टर (चरित्र) नहीं, सिविलिज़ेशन (सभ्यता) नहीं, इसी प्रकार के प्रगतिशील विचारों से वे अपने गोरे अधिकारियों तथा उनकी मेमों का मनोरंजन किया करती थीं। उनका जन्म केवल हिन्दुस्तान में हुआ था पर लिबास, रहन-सहन, तहज़ीब से क्या मजाल कि वे अंग्रेज़ों को न लजा दें! होली, दिवाली की बजाय क्रिसमस डे का उनके सामने अधिक महत्व था। बड़े दिन की केक और ग्रीटिंग्स कार्ड को वे नियमित भेजा करतीं अपने अंग्रेज या ईसाई आकाओं के यहां। एक बच्ची थी उसे कनवेण्ट में पढ़ने के लिए भेजतीं जो अंग्रेज़ी छोड़कर दूसरी भाषा बोल नहीं सकती थी। किताबें अंग्रेज़ी साहित्य की ही रहा करतीं। अखबार और सचित्र पत्र केवल ऐंग्लो इंडियनों के ही होते और दीवारों पर लेक डिस्ट्रिक्ट या टॉवर ऑफ लन्दन या टेम्स नदी के पुल के ही चित्र होते, या यूरोपियन आल्प्स के। यानी अंग्रेज़ी राज की भावना और प्रकृति से वे इस तरह समरस हो गई थीं जैसे दूध में पानी। उनके पति उनका लोहा मानते थे और जानते थे कि उनकी पत्नी की मदद न होती तो उन्हें वह सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलती जो अब मिली है और जिसके बल पर वे अपने कई सहयोगी अधिकारियों को सुपरसीड कर (पीछे छोड़कर)

डिप्टी सेक्रेटरी पद पर पहुंच गए थे। वे बेचारे हारे हुए अधिकारी कहते कि हमारी इतनी खुशकिस्मती कहां कि हमें तारामती देवी जैसी पत्नी मिलती।

श्रीमती सहाय देखने-सुनने में भी अच्छी थीं। उनके काले-काले लम्बे बाल रेशम की तरह चमकते थे। विशाल आंखें और सुन्दर दंतपंक्ति जो लाल-भड़कीली लिपस्टिक की पृष्ठभूमि पर मोतियों की लड़ी की तरह चमक उठती, बड़ी आकर्षक लगती। उनके चाहने वालों में एक नया भरतीशुदा अंग्रेज आई० सी० एस० असिस्टेंट कमिश्नर था जो कहता था कि श्रीमती सहाय में ज़बर्दस्त आकर्षण है। श्रीमती सहाय को इस प्रकार स्तुति से ज़रा भी संकोच न होता, बल्कि खुशी होती, गर्व होता। जो हिन्दुस्तानी औरत अंग्रेज़ों को भी आकर्षित कर सके उसके सौन्दर्य के बारे में और किस सर्टीफिकेट की ज़रूरत है?

मिस्टर और मिसेज़ सहाय ने तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि एक दिन अंग्रेज भारत से चले जाएंगे और हुकूमत उन 'नेटिव' हिन्दुस्तानियों के हाथ आ जाएगी जिनको कोसते-कोसते और हिकारत की नज़रों से देखते उनकी तमाम ज़िन्दगी बीती थी। गांधी उनके लिए एक पागल था जो अपने खब्त के लिए लोगों को गुमराह करता था। उसका लिबास भी इतना असभ्य और अशोभनीय रहता था कि सभ्य समाज की स्त्रियों को उसके सामने जाने में भी संकोच होता। और ये राष्ट्रीय आन्दोलन में काम करने वाले और जेल जाने वाले नौजवान तो एकदम बेहूदा लोग हैं जो अंग्रेज़ों द्वारा भारत में निर्माण किए गए स्वर्ग में अपशकुन पैदा करते हैं। भला इनकी गीदड़-भभकियों से या वानर-चेष्टाओं से कहीं स्वराज्य मिल सकता है?

पर वक्त का फेर देखिए कि एकदम अचित्य और अकल्पित घटना हो गई और स्वराज्य मिल गया। इसका सबसे बड़ा धक्का तो मिस्टर और मिसेज़ सहाय जैसे लोगों को लगा; पर वे दुनियादारी जानने वाले लोग थे, इसलिए विचलित नहीं हुए, हालांकि चिन्तित ज़रूर थे। फिर भी चतुर और व्यवहार-कुशल थे, जीवन-कला के तत्वों को घोलकर पी चुके थे, इसलिए उन्होंने फौरन ही परिस्थिति से रुख मिलाया, नई आबोहवा में उसी तरह घुल-मिल गए जैसे कि अंग्रेज़ों के ज़माने में। स्वातंत्र्य समारंभ के दो दिन पहले ही उन्होंने अपने शिष्टाचार का तन्त्र बदला और कपड़े भी बदल डाले। एकदम खद्दर पर तो नहीं आए पर सूट और पतलून की जगह सफेद चूड़ीदार पैजामा और काली अचकन आ गई और

सिर पर सफेद टोपी। श्रीमती सहाय भी एक मामूली किन्तु शुभ्र साड़ी पहनकर समारंभ में उपस्थित थीं। लिपस्टिक भी गायब थी और उसकी जगह सादी वेश-भूषा और स्वाभाविक वर्ण ने ले ली थी। उन्हींकी कतार में और भी अनेक उच्च सरकारी अधिकारियों की पत्नियां बैठी थीं। पर उनमें भी बनाव-सिंगार का भड़कीलापन नहीं था जो अंग्रेज़ों के ज़माने में प्रदर्शित होता था। लेकिन जन्म भर की आदत कहां जाती? सादगी आती तो कहां तक आती? उनकी जो वेश-भूषा थी, और सौन्दर्य प्रसाधन का ढंग था वह बरबस लोगों को आकर्षित कर लेता था, खासकर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं और नेताओं को जो इस वातावरण से एकदम नावाकिफ थे। गांधीजी के नेतृत्व में उन्हें सादगी का पाठ पढ़ाया गया था। स्त्रियों और पुरुषों में एक प्रकार का आत्मनियन्त्रण था, आचारों का और विचारों का। त्याग और कष्ट-सहन पर विशेष ज़ोर था। मोटे खद्दर की साड़ी ही स्त्रियों का सबसे बड़ा आभूषण था। और इसमें उन्हें आन्तरिक सुख था, संतोष था। ऐसे लोगों की समाज में प्रतिष्ठा थी, सरकारी तबकों में भी मान था। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के त्याग के लिए सबके मन में आदर था और सरकारी अधिकारियों में ऐसे कई लोग थे जो गुप्त रूप से उन्हें अप्रत्यक्ष मदद भी किया करते थे।

पर आज तो समय ने ही पलटा खाया था और हिन्दुस्तान का नक्शा ही बदल रहा था, तमाम मान्यताएं ही तब्दील हो रही थीं। जो जेलखानों में थे, वे सिंहासन पर बैठ गए। जो विदेशी हुकूमत के द्वारा सताए जाते थे वे खुद सत्ता पर आरूढ़ हो गए। जो नौकरशाही उनपर ज़ुल्म ढाती थी वह अब से उन्हींकी आश्रित हो गई, उनसे दबने लगी। जिन्होंने केवल त्याग, मितव्ययिता, सादगी एवं प्रखरता का जीवन देखा था उनके हाथ में शासन की बागडोर आ गई। उसके साथ ही साथ आराम और सुख-भोग की सामग्री भी मिली। जेल में तो एक छोटे-से 'सेल' में रहना पड़ता, या बाहर दो-तीन कमरे वाले साधारण मकान में, और अब तो एक-एक लाख की लागत से बने मिनिस्टरों के बंगले रहने के लिए मिलने लगे, जिनके एक-एक कमरे में उनका पहले का पूरा का पूरा घर समा जाता था। बिजली, पानी, फर्नीचर, चपरासी मुफ्त, यानी सरकार की ओर से। मिनिस्टरों को ताज़ी से ताज़ी घटनाओं से वाकिफ रहना चाहिए इसलिए रेडियो लगे, सेहत अच्छी रहनी चाहिए और गर्मी से परेशानी नहीं होनी चाहिए ताकि काम अच्छा हो इसलिए रेफ्रिजरेटर आए। अधिक से अधिक क्षेत्रों में भ्रमण किया जा सके तथा

जनता से सम्पर्क रखा जा सके इसके लिए मोटरें आ गईं। ड्राइवर और पेट्रोल सरकार देती थी। जनता से सम्पर्क रखे बिना भला उनके दुख-सुख की बात कैसे समझ में आएगी, और उसका समाधान कैसे होगा ? बाग-बगीचे की रखवाली के लिए माली और दूसरे चाकर भी होने चाहिएं क्योंकि बंगले की सजावट सुन्दर होनी चाहिए। फर्नीचर तो आला दर्जे का होना इसलिए जरूरी है कि यदि कोई विदेशी हमारे मन्त्री से मिलने के लिए आए तो उसपर कुछ रौब तो पड़ना चाहिए। स्वतंत्रता के साथ विभाजन हुआ, मार-पीट हुई, दंगे-फिसाद हुए, अराजकतावादी शक्तियों ने सिर उठाया, इसलिए ज़रूरी हुआ कि मन्त्रियों की सुरक्षा के लिए व्यक्तिगत बॉडीगार्ड चाहिए जो हमेशा बगल में भरी पिस्तौल लिए साथ चलते रहें। बंगले के आसपास भी संगीनधारी सिपाहियों का पहरा होना चाहिए, जो आने-जाने वालों को 'अटेन्शन' होकर सलाम करते रहें और मिनिस्टर साहब जब भी बरामदे में या बंगले के अहाते में दिखें तो उन्हें भी चुस्त सलामी झाड़ दें। इससे मिनिस्टर की प्रतिष्ठा तो बढ़ती है ही, पर उनके यहां आने-जाने वाले लोगों पर भी रौब जमता है, प्रभाव पड़ता है। यह ख्याल भी कम तसल्ली और खुशी नहीं देता कि अंग्रेज़ी ज़माने में देहात में प्रचार करते समय जिस पुलिस सिपाही को देखकर दिल में, ज़रा-सा ही क्यों न हो, खौफ छा जाता, आज वही सामने खड़ा होकर अदब के साथ हमें सलाम कर रहा है और हम ज़रा-सी गर्दन झुकाकर उस-पर इनायत करते नज़र आते हैं। चुनाव-क्षेत्रों से आने वाले कार्यकर्ताओं पर इसका बड़ा गहरा असर पड़ता है और वे अपने पुराने साथी के वैभव और शान-शौकत की कहानियां नमक-मिर्च लगाकर देहात-देहात में पहुंचाया करते हैं।

ऐसे लोगों को पहली बार स्वातंत्र्य समारोह के दिन गवर्नमेंट हाउस में एक नई दुनिया दिखी, सरकारी अफसरों की खुशहाल दुनिया, जिनकी मोटी तनख्वाहें, निश्चिन्तता और सुरक्षा के वातावरण में पले स्वस्थ शरीर, ऊंचे दर्जे के कपड़े तथा सभ्य एवं साफ-सुथरी एवं सुन्दर दिखनेवाली स्त्रियां थीं।

इन सरकारी नौकरों ने भी एक नई दुनिया देखी, खद्दर पहने, सफेद टोपी लगाए दुबले-पतले आदमी, जिनके गालों पर झुर्रियां हैं, जो कष्ट-सहन की अग्नि-परीक्षा में दग्ध हैं, जिनके बदन पर आज़ादी के जंगे मैदान के ज़ख्म लगे हैं, और जिन्होंने ज़िन्दगी को एक सतत संघर्ष, एक सतत आदर्श और एक सतत रणक्षेत्र माना है, आराम और भोग-विलास की क्रीड़ास्थली नहीं। अंग्रेज़ी शासकों के अब

ये ही उत्तराधिकारी थे।

ये दोनों दुनियाएं थीं, एक दूसरे से अलग, बहुत दूर, जिन्होंने एक दूसरे के बारे में कहीं दूर से कुछ सुन रखा हो, पर प्रत्यक्ष आज ही देखा हो, गवर्नमेंट हाउस के इस ऐतिहासिक समारोह में जब वहां ध्वजस्तंभ से यूनियन जैक को उतरना पड़ा था और राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे को अपनी शान की जगह लेनी पड़ी थी, और जब अंग्रेजी सत्ता भारतीय सत्ता के पक्ष में अवकाश ग्रहण कर रही थी, रंगमंच से विलीन हो रही थी।

रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी तारामती देवी ने, तथा उनकी श्रेणी के अनेक लोगों ने सुराजियों की उस नई दुनिया को देखा जो अब एक हकीकत बन गई थी।

सुराजियों ने भी अपने बगल में बैठी सरकारी अधिकारियों की और अंग्रेज़ी राज्य के पुराने आश्रितों और आधारस्तंभों की इस चकाचौंध और जगमगाहट से भरी दुनिया को देखा। उनमें थे मन्त्रिमण्डल के सबसे तरुण सदस्य मनमोहन बाबू, जिनकी आयु तीस वर्ष की थी, पर जो मन्त्रिमण्डल में केवल इसीलिए लिए गए थे कि वे एक विशिष्ट जाति के प्रतिनिधि थे, जिनकी संख्या इस प्रदेश में काफी मात्रा में थी। उन्होंने अपनी विस्फारित आंखों से इस नई दुनिया की तरफ नज़र डाली जो उन्होंने किसी ज़माने में उपन्यासों में पढ़ी थी। और उन्हें लगा कि ज़िन्दगी सचमुच एक नियामत है, एक परम सौभाग्य है जिसमें शान, इज़्ज़त, प्रभाव और आनन्द को छोड़कर और कुछ नहीं है। ठीक भी तो है। आखिर हमने स्वतन्त्रता की लड़ाई में क्या कम कुर्बानियां की हैं? हमीं ने क्या ठेका लिया है कि ज़िन्दगी भर मुफलिसी में, दारिद्रय और अभाव में सड़ते रहें। ईश्वर के दरबार में न्याय तो होता ही है, और दुर्दिन भी आखिर बदलते ही हैं। यदि आज हमारी मुसीबतों और कष्टों का परिमार्जन हुआ है तो इसमें कौन-सी बेजा बात हुई?

रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी एकटक मनमोहन बाबू की तरफ देख रहे थे क्योंकि उनके हाथ में पी० डब्ल्यू० डी० महकमा आ गया था और वे स्वयं उसी महकमे में डिप्टी सेक्रेटरी थे। अब से तो वही उनके विधाता बनने वाले थे। उनकी एक-एक अदा पर वे फिदा थे। किस तरह वह शपथ लेने के लिए उठे, किस तरह मंच तक आए, गवर्नर साहब के शब्दों को उन्होंने किस स्पष्टता और लहजे से दुहराया, और कैसे मुसकराए— हर चीज़ निहायत शानदार और असरदार!

'देखो डियर, अपने मिनिस्टर साहब कैसे स्मार्ट (चुस्त) दिखते हैं?'—रघु-

नाथ बाबू ने अपनी पत्नी से कान लगाकर धीरे मे कहा।

'हां, डार्लिंग, मैं भी वही मार्क (लक्ष्य) कर रही थी। पर्सनेलिटी (व्यक्तित्व) भी अच्छी दिखती है। सबमें कल्चर्ड (सुसंस्कृत) तो वही दिखाई देते हैं।' तारामती देवी ने ताईद की।

सुराजियों की पंक्ति में मिनिस्टर मनमोहन बाबू की पत्नी भी बैठी थी जो जिन्दगी में पहली बार इस प्रकार के समारोह में सम्मिलित हुई थी। देहात में रहती थी, एक अक्षर भी नहीं पढ़ पाई थी, और अपनी जन्म-जाति के सतत आभास के कारण कुछ हीनता की भावना लिए हुए थी। इसलिए वह करीब-करीब घूंघट काढ़े ही बैठी थी, पर अपने पति के इस असाधारण उत्थान को देखकर फूली नहीं समाती थी।

४

धनंजय जब अपने प्रवास से दोपहर को घर लौटा तब उसकी पत्नी गीता ने उसे अपने हाथ से काते हुए सूत की धोती का जोड़ा भेंट करते हुए कहा :

'हमारे देश के इतिहास में आज यह स्वर्ण दिन है, पर्वदिवस है। इसको सत्य-सृष्टि में लाने के लिए तुम जैसे देशभक्तों ने अपना रक्त दिया, कष्ट सहन किया। उसीके सम्मान में मेरा यह प्रेम-उपहार लो। मैं तुम्हारी पत्नी हूं इस भाग्य पर तो मैं फूली नहीं समाती हूं।'

'इसमें क्या तो मेरा रक्त-दान और क्या मेरा कष्ट-सहन ? तीन-चार बरस जेल में काटे और अंग्रेज़ी सल्तनत के हाथों कुछ यन्त्रणाएं सहन कर लीं तो क्या हो गया ? हमारे देश के लाखों स्त्री-पुरुषों ने मुझसे कई गुना अधिक त्याग किया है। कई लोग फांसी पर चढ़ गए हैं, हज़ारों लोगों ने कालेपानी में जीवन सड़ा डाला, आराम और सुख का एक क्षण नहीं देखा। उनके सामने क्या मेरा त्याग, और क्या मेरी सेवाएं ? पर हां, इतना जरूर है कि जब अपनी मातृभूमि के दास्य विमोचन का संग्राम चल रहा था उसमें मेरा भी, स्वल्प-सा ही क्यों न हो, योगदान रहा। यही मेरे लिए परम सन्तोष की वस्तु है। और तुमने उसका महत्व

दिया, यही मेरा सबसे बड़ा सुख है। तुम्हारी प्रेरणा नहीं होती, तुम्हारा हार्दिक सहयोग न मिलता तो भला मैं यह सब कर पाता ?'

'इसमें कौन-सी बड़ी बात हो गई ? ऐसे ग्रादर्शप्रिय, कर्तव्यनिष्ठ ग्रौर चरित्र-वान पति को पाकर भला कौन-सी स्त्री धन्य नहीं हो उठेगी ? ग्रौर इन सबके ग्रलावा तुम्हारा जो ग्रनन्य प्रेम है उसकी बराबरी भला इन्द्र का सिंहासन भी क्या करेगा ?' गीता ने कहा।

धनंजय भीतर ही भीतर गद्गद हो गया। यह पहली बार नहीं है जब गीता ने इस प्रकार के विचार व्यक्त किए हों। ग्राज उनके विवाह के दस वर्ष हो चुके हैं। ग्रौर उससे भी पहले यानी शादी के सात-ग्राठ साल पहले से उसने धनंजय को देखा था, ग्रौर धनंजय ने उसे। सन् तीस के सत्याग्रह-ग्रान्दोलन में धनंजय ने कॉलेज छोड़ा था ग्रौर गीता तब स्कूल में पढ़ती थी, जुलूस के सामने की पंक्ति में ग्रन्य बालिकाग्रों के साथ राष्ट्रीय गीत गाया करती थी :

पहन लो केसरी बाना हुग्रा फर्मान है जारी।

वे महिला विद्यालय की बालिकाएं ! उनकी प्रधानाध्यापिका स्वयं राष्ट्रीय संग्राम में कूद पड़ी थीं। उन्हींके ग्रादर्श को लेकर ये बालिकाएं भी राष्ट्रीयता से ग्रोतप्रोत थीं। गीता का ग्रूप स्वयं केसरी रंग की साड़ी पहने रहता। वही उसकी कप्तान थी। उसका कण्ठ सुरीला था ग्रौर वह ग्रपने गीत में हृदय की भावनाग्रों को इस कदर साकार कर दिया करती कि सुनकर लोग ग्रभिभूत हो जाते। ऐसा लगता जैसे गीता स्वयं राष्ट्रीयता की प्रतिमूर्ति हो।

धनंजय उसके इस दिव्य स्वरूप को दूर से ही निहारा करता, उससे बड़ा प्रभावित होता। ऐसा लगता जैसे यह बालिका ग्रौरों से भिन्न है। देशभक्ति, ग्रादर्श ग्रौर महत्वाकांक्षा का यह एक स्फुलिंग है। मन ही मन उसे बड़ा कौतुक हुग्रा, ग्रनायास उसकी ग्रोर ग्राकर्षण भी हुग्रा। पर दूर ही दूर से।

धनंजय कॉलेज छोड़कर ग्राया था ग्रौर राष्ट्रीय ग्रान्दोलन में कूद पड़ा था। उस समय नगर के मुख्य-मुख्य नेता ग्रौर कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चुके थे। बाहर कार्यकर्ताग्रों की कमी थी। सो उसके हाथ में ही नगर के ग्रान्दोलन की बागडोर थमा दी गई। इस ज़िम्मेदारी से वह पहले तो घबड़ाया— उन्नीस-बीस साल का लड़का जो ठहरा; पर स्वभाव से ही वह ज़िम्मेदारियों से मुंह मोड़ना नहीं जानता था। बुद्धिमान तो था ही, वक्तृत्व भी ग्रच्छा था, व्यक्तित्व भी ग्रसरदार था,

फौरन नेतृत्व के पद पर शोभने लगा। गीता ने उसे इस नये नेता के रूप में ही देखा, एक कर्तृत्ववान युवक जो किसी महान ध्येय को लेकर अपना कैरियर (भविष्य) खतरे में डालकर इस संग्राम-ज्वाला में कूद पड़ा है।

गीता की आयु उस समय चौदह-पन्द्रह साल की होगी पर वह भी बड़ी बुद्धिमान लड़की थी। वह देखती थी कि उसके चचेरे-ममेरे भाई और उनके मित्र जो धनंजय की उम्र के ही थे, हमेशा हॉकी-क्रिकेट या सिनेमा को छोड़कर और किसी बात में दिलचस्पी नहीं लेते थे, नफीस कपड़ा और नफीस खाने के लिए लालायित रहा करते थे। हल्की और सस्ती कथा-कहानियों के पढ़ने में और छुट्टी के दिन सारी दोपहर सोने में बिता देते थे——उन सबसे धनंजय कितना भिन्न था ! जैसे वह इन सबसे अलग किसी और सांचे में ढला हो।

यही भिन्नत्व गीता के हृदय को स्पर्श कर गया और वह भी धनंजय के प्रति अनायास ही एक सूक्ष्म आकर्षण अनुभव करने लगी। उस आकर्षण के आधार में मूलतः आदरबुद्धि थी, यही धारणा उसकी कई दिनों तक बनी रही। पर ब्राह्म मुहूर्त का अन्धकार धीरे-धीरे प्रभात के प्रकाश में अनजाने और अनायास कैसे परिवर्तित हो जाता है ? ठीक उसी तरह इस आदर ने स्नेह का, और स्नेह ने प्रीति का रूप ग्रहण कर लिया, इसका स्वयं गीता को भी पता नहीं लगा।

गीता को पहली बार पता तब चला जब सत्याग्रह-संग्राम की घटनाओं के सात-आठ वर्षों बाद धनंजय की बहिन ने, जो गीता के साथ पढ़ती थी. एक दिन अकस्मात पूछ डाला :

'क्या तुम मेरी भाभी बनोगी गीता ?'

गीता हड़बड़ा गई, अकचका गई। सारा शरीर पसीने से तर हो उठा—कम्पायमान हो गया। समूचे शरीर का रोम-रोम खिल उठा। बोली, 'ऐसा कैसे पूछती है री ? यह सवाल तो पहले उनसे पूछने का है।' गीता अपना साहस बटोरकर बोली :

'भैया के दिल में तो जाने कब से तू छिपकर जा बैठी है। तेरे मन में क्या है सो बता।'

गीता उससे लिपट पड़ी, उसकी आंखों में आंसू आ गए। वह गद्‌गद होकर बोली :

'भाग्य मेरे सिर पर इस तरह अमृत वर्षा करेगा, ऐसी स्वप्न में भी कल्पना

नहीं थी बहिन। मैं तो समझती थी कि उनके बारे में विचार तक करना चन्द्रमा पाने की इच्छा रखने जैसा है। पर आज तो स्वयं चन्द्रमा ही मेरे हृदयाकाश में खिल उठा है। मैं तो तर गई, दीदी।'

और इस तरह गीता और धनंजय का वरण हुआ। पर उनके विवाह के पहले एक दुर्घटना हुई।

वह बहिन, जिसके कारण इन दोनों की भावनाएं इतनी साकार हुई, एकाएक चल बसी। एक साधारण-सी बीमारी थी, बाद में चलकर वह तीन-चार महीने को लम्बा गई, और उसीमें उसका अन्त हो गया। धनंजय की वह पीठ की बहिन थी। उसे गहरा धक्का लगा। जीवन में पहली मृत्यु अपनी आंखों के सामने देखी और वह भी ऐसे प्रिय जन की जो अपने कलेजे का टुकड़ा हो।

देखते-देखते वह जा रही है और फूट-फूटकर रोने के सिवा और कुछ करते नहीं बनता है। ऐसी असहायता, ऐसी बेबसी, ऐसी दर्दनाक पीड़ा!

वह चली गई पर धनंजय को गीता दे गई, और गीता को धनंजय! दोनों के मिलन में उस अभागी बहिन की याद ने एक प्रकार का दिव्यत्व ला दिया, एक प्रकार की अपूर्व पवित्रता!

गीता के सगे-सम्बन्धियों ने उसे बहुत समझाया कि तू इस लड़के से शादी मत कर, यह तो हमेशा अंग्रेज़ी हुकूमत से लड़ता ही रहता है। जेल जाएगा, गरीबी भोगेगा, भूखों मरेगा—इसके साथ तुझे दुख के सिवा और कुछ मिलने वाला नहीं है।

गीता के सगे-सम्बन्धी अधिकतर सरकारी कर्मचारी थे या अंग्रेज़ी शासन के दबदबे से प्रभावित थे। उन दिनों तो वह दबदबा बड़ा जमा हुआ था। चन्द्र और सूर्य की तरह भारत में अंग्रेज़ी राज्य अटल है, ऐसी ही उन लोगों की धारणा थी। जीवन की जितनी भी सुख-समृद्धि है वह ब्रिटिश सरकार के आश्रय और सहयोग मात्र से मिल सकती है, उसके बाहर जो है वह है मुफलिसी, गरीबी, अप्रतिष्ठा और अपमान, पीड़ा और लांछन! यह धारणा प्रायः सभी पढ़े-लिखे लोगों में एक अटूट विश्वास की तरह घर कर गई थी।

उनका सोचना सही हो या गलत, पर उनके दिल में गीता के कल्याण को छोड़कर और कोई भावना नहीं थी।

पर गीता थी कि उसकी कल्याण की कल्पना इन सबसे एकदम भिन्न थी,

इसलिए उसने बात तो सबकी सुनी, पर गुनी अपने मन की। निरादर किसीका नहीं किया, लड़ाई-झगड़ा भी नहीं किया। केवल उनके चरणों पर सिर रखकर बोली, 'गुरुजनों के आशीर्वाद से भला क्या नहीं हो सकता ? सावित्री को उसका पति वापस मिल गया, तो क्या आप लोगों के आशीर्वाद से मुझे मेरा सुख और मांगल्य नहीं मिलेगा ? बस, आप मुझपर इतनी ही दया करें और अपने अन्तःकरण से मुझे आशीर्वाद दें, मुझे सब कुछ मिल जाएगा।'

वे लोग जानते थे कि गीता कितनी दृढ़ निश्चयी है। उन्होंने उसे अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया :

'अखण्ड सौभाग्यवती भव।'

और गीता उठी और धनंजय के जीवन में विलीन होने के लिए निकल पड़ी। तन से, मन से, धन से——जैसे प्राणों से प्राण मिले, ज्योति से ज्योति मिली।

धनजय धन्य हो उठा। जैसे वह दुनिया की सार्वभौम सत्ता पा गया। जानता था कि गीता असाधारण नारी है। और वही उसकी जीवन-संगिनी है, उसकी प्रेरणा है, उसकी शक्ति का स्रोत है। वह साथ है तो विश्व का सारा सौन्दर्य, विश्व का सारा सुख और पुरुषार्थ उसके साथ है। पुरुषार्थ बाह्य परिस्थितियों और उपकरणों पर अवलम्बित नहीं रहता। धन-सम्पदा, शस्त्रास्त्र या सत्ताबल पर वह आधारित नहीं है। वह तो अपने मन की आन्तरिक प्रेरणा और शक्ति पर अवलम्बित रहता है। मन की दुर्दम्य अपराजेय इच्छाशक्ति ही समस्त पुरुषार्थ और कर्तृत्व की आधारशिला है। जो मन के पिण्ड में उठता है वही ब्रह्माण्ड में छा जाता है। आदि पुरुष ने कहा, मैं एक हूं, अनेक बनना चाहता हूं। और वह अनेक बन गया। यह उसकी विराट इच्छाशक्ति की लीला मात्र है। पुरुष और प्रकृति के संयोग से ही तो इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। वह, धनंजय, पुरुष है; गीता प्रकृति है। क्या उनके संयोग से, संयुक्त मानव का, उनके अपने विश्व का निर्माण नहीं होगा ? ऐसे विश्व का, जिसमें भारत स्वतंत्र हो, मानव मानव की तरह प्रतिष्ठा पाए, और विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रभाव फैले और विश्व में रामराज्य का स्वप्न साकार हो ? इस विशाल स्वप्न के सामने, इस दिगन्तव्यापी ध्येय की पृष्ठभूमि में गरीबी, व्यक्तिगत प्रताड़ना, कारावास और लांछन से क्या बनता-बिगड़ता है ?

धनंजय ने कभी नहीं माना कि इन बातों से कभी भी, कुछ भी बनता-

बिगड़ता हो।

श्रौर गीता ? उसे तो लगा कि जीवन की इस भव्यता श्रौर श्रसीमता में उसे चाहने या मांगने को क्या रह जाता है ?

इसलिए वह धनंजय के श्राजानबाहुश्रों में इस तरह समा गई जैसे सागर में सरिता। जैसे यात्री श्रपने तीर्थ को पहुंच गया, भक्त ने इष्टदेव को पा लिया, श्रौर श्रब विराट सुख श्रौर शांति को छोड़कर श्रौर कुछ नहीं बच रहा।

'श्राज श्रानन्द का दिवस तो है गीता, पर जाने क्यों मेरा मन रह-रहकर नोश्राखाली में जाकर श्रटक जाता है जहां गांधीजी पीड़ितों श्रौर निराश्रितों के बीच में घूम रहे हैं,' धनंजय ने कहा। 'दिल्ली में रोशनी है, श्रातिशबाज़ी है, बड़े-बड़े जुलूस श्रौर भोज चल रहे हैं, क्योंकि श्राज स्वाधीनता का पर्व है। पर गांधी वहां नहीं है, उसका मन इस मौज-शौक में रमता नहीं है। श्रसल में भारत स्वतन्त्र हुश्रा तो मुख्यतः गांधी के कारण ही। पर वह उसका यश लेने के लिए राजधानी में नहीं है। त्रस्त श्रौर संतप्त मानवता का यह मसीहा पैदल घूम रहा है, उन श्रभागे भाई-बहनों के बीच में जिनके घर-बार उजड़ गए हैं, सगे-सम्बन्धी मारे गए हैं, विभाजन की राक्षसी विभीषिका में, खण्डित भारत की शोणित धारा में। मानो वह कह रहा है कि इस श्रानन्द श्रौर उल्लास में पागल होने का वक्त नहीं है, कर्तव्य की प्रखरता को मत भूलो। रह-रहकर गीता, मुझे गांधी की ही याद बेचैन कर रही है।'

रात के ग्यारह बज चुके थे, श्रौर दिन भर के कार्यक्रमों की धूमधाम के बाद थके हुए शरीरों को शय्या पर टिकाकर वे, धनंजय श्रौर गीता, सोने का प्रयत्न कर रहे थे। पर ज़ाहिर था कि धनंजय का मन श्रशान्त था श्रस्वस्थ था।

यों धनंजय सचमुच बहुत थक गया था। पिछली रात का वह जागरण, मध्य-रात्रि का राजभवन का सत्ता के हस्तांतरण का समारोह! उसके बाद वह साठ मील की यात्रा श्रौर भाषण, तथा उतनी ही दूरी का वापसी प्रवास। घर श्राने के बाद श्रग्रलेख लिखना श्रौर शहर के कई स्थानीय कार्यक्रम। श्रौर मिलने-जुलने वालों का तांता, बधाई श्रौर धन्यवाद की झड़ी! इन सबमें सारा दिन बीत गया—एक क्षण की फ़ुर्सत नहीं मिली। श्रौर दिन होता तो इतनी मेहनत के बाद बिस्तर पर पीठ टिकाते ही उसे नींद श्रा जाती। पर श्राज उसकी भावनाएं विच-लित हो गई थीं। श्रानन्द की, गर्व की, कृतज्ञता की, भगवान के प्रति धन्यता की,

प्रार्थना की।

और अब यह गांधी की याद !

गीता समझ गई, आज हृदयमंथन की रात्रि है, और धनंजय की नींद धोखा दिए बिना रहेगी नहीं। वह एक भावुक युवक है, उसका हृदय अत्यन्त संवेदनशील और कोमल है, घटनाओं और विचारों की प्रतिक्रिया उसके हृदय पर इतनी उत्कटता और तीव्रता से होती है जैसे वह भूकंप के स्पन्दन को भांपनेवाला यन्त्र हो। इसलिए अक्सर उसके स्नायुओं पर एक प्रकार का तनाव ही रहता है। विचित्र है यह धनंजय का स्वभाव। अपने व्यक्तिगत प्रश्नों और सुखों के बारे में एकदम बेलाग और अछूता-सा, पर समष्टि, देश या मानवता के प्रश्नों में इतना उलझा हुआ, इतना समरस जैसे वे सब उसके हृदय के प्रांगण में ही बीत रही हों। वह किस मकान में रहता है, किस प्रकार का भोजन करता है, किस प्रकार के कपड़े पहनता है इसके प्रति उसे कोई विशेष दिलचस्पी नहीं है। एक झोंपड़ी ही सही, पर वहां यदि गीता साथ है और सम्मान की ज़िन्दगी है तो वहां उसके लिए नंदनवन है। खाने के लिए गीता के हाथ से पककर जो सामने आ गया वही अमृत है। और खद्दर का फटा-मोटा जो भी कपड़ा मिल गया वही उसका अलंकार और आभूषण है, बशर्ते कि वह शुभ्र हो। समाचारपत्र का संपादक है इसलिए लिखने-पढ़ने की सामग्री तो चाहिए ही, जो उसे आसानी से मयस्सर हो जाती थी। बस, इसके अलावा उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताएं और कुछ नहीं हैं। पर हां, समाज का ज़रा-सा भी अन्याय, देश की कोई समस्या, कोई राष्ट्रीय अपमान या मानवता का पतन; ये ऐसी बातें थीं जो उसे जड़ से हिला देतीं। वह उनसे इतना बेचैन हो जाता, इतना छटपटाता कि शुरू-शुरू में तो गीता समझ न पाती, असमंजस में पड़ जाती। आखिर दुनिया में यह सब जो हो रहा है इसकी ज़िम्मेदारी अकेले धनंजय पर ही कैसे है?

पर धीरे-धीरे वह उसका स्वभाव जान गई, उसकी आत्मा की छटपटाहट का मर्म समझ गई। सुसंस्कृत भारतीय समाज में हमेशा ही एक वर्ग ऐसा रहता था जो अपने उदर पोषण की चिन्ताओं से मुक्त रहकर हमेशा समाज के कल्याण और मांगल्य की बात ही सोचा करता था। समाज को धारण करने वाला नीति-तत्व जो धर्म है उसका वह प्रतीक था। समाज के ज्ञान को, चिन्तन को, आचरण को विशिष्ट दिशा देना उसका काम था। समाज में दुर्व्यवस्था न हो, अनाचार न फैले, और

उसपर अत्याचार न हो, न राजा की ओर से न प्रजा की ओर से, यह देखना भी इसी वर्ग का काम था। उसका रहन-सहन अत्यन्त सरल था, सादा जीवन और ऊंचे चिन्तन का प्रतीक था। उसकी जीवन की आवश्यकताएं बड़ी परिमित थीं, जो समाज की ओर से अनायास हो पूरी हो जाती थीं, मधुकरी के रूप में हो या दक्षिणा के रूप में। वह स्वयं मुंह से किसीसे कुछ मांगता नहीं था। वह तो इस श्रद्धा से काम करता था कि समाज के कल्याण की चिन्तना और सेवा मात्र उसका धर्म है, और यदि वह अपने धर्म का पालन करता रहा तो उसे कभी भी आजीविका की विवंचना नहीं होगी। उसकी आस्था सशक्त थी, सबल थी और वह कभी भी अकारथ नहीं गई, अपूर्ण नहीं रही।

राजा दशरथ के यहां वसिष्ठ मुनि रहा करते थे, या महाराजा जनक के यहां याज्ञवल्क्य ऋषि थे वे इसी वर्ग के प्रतिनिधि थे। वन में रहा करते थे। कंद-मूल-फल पर जीते थे, तपस्या करते थे, आत्मज्ञान की साधना करते थे, और राजा को अपनी स्पष्ट और निर्भीक सलाह दिया करते थे ताकि उसके हाथ से दुर्नीति न हो और धर्म-चक्र का प्रवर्तन व्यवस्थित रूप से होता रहे। राजाओं पर इन धर्म-गुरुओं का नैतिक अंकुश था, जिसका वे आदर करते थे। धर्म समाज का सर्वश्रेष्ठ तत्व है, उसीसे अर्थ की तथा अन्य कामनाओं की प्राप्ति होती है। ऐसा उनका चरम विश्वास था। इसलिए धर्म के सामने झुकने में, धर्म-गुरुओं के चरणों में नत-मस्तक होने में वे अपना गौरव समझते थे। राजा क्षात्र तत्व का प्रतीक था तो धर्म-गुरु ब्रह्म तत्व का। इन दोनों में समन्वय हो, संघर्ष न हो, और दोनों एक दूसरे की संगति में चलें तो समाज समुन्नत और सुसंस्कृत हो सकता है, ऐसी धारणा थी। यजुर्वेद का ऋषि कहता है, 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तंल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना।' अर्थात् में उस विश्व को जानना चाहता हूं जहां अध्यात्म तत्व (ब्रह्म) तथा भौतिक एवं शासकीय तत्व (क्षत्र) परस्पर सहयोग से रहते हैं, और जहां अग्नि के साथ देवताओं का निवास रहता है।'

जब-जब इन तत्वों में संतुलन रहा है तब-तब समाज आगे बढ़ा है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के ज़माने के राज्य को रामराज्य कहा गया है और उस राज्य की व्यवस्था आदर्श राज्य-व्यवस्था मानी गई है। गांधीजी ने विश्वशांति की कल्पना रखी तो उसका आधार भी रामराज्य ही था। उसका कारण यही है कि वहां

राजा धर्म के शासन को मानता था। जब राजा स्वयं धर्म-मार्तण्ड बन जाता था और धर्म-सत्ता को अपने आप में केन्द्रित कर लेता था तब समाज में अनाचार फैल जाता था और उसके स्थायित्व में न्यूनता आ जाती थी।

पर यह धर्म की कल्पना धार्मिक पाखण्ड, कट्टरता, अन्धश्रद्धा या संकीर्णता से भिन्न थी। कालान्तर से अच्छे तत्वों में भी बुराई आ जाती है। मानव का स्वभाव ढलान की तरफ जाने का है, फिसलन से उसे बड़ा आकर्षण होता है, हालांकि वह हमेशा गिरकर भी उठने की कोशिश करता रहता है। इसलिए स्वार्थ के कारण हो या कर्तव्य-भ्रष्टता के कारण, जिस प्रकार जीवन के अन्य क्षेत्रों में भ्रष्टता आ गई उसी प्रकार धर्म के क्षेत्र में भी आ गई। पर उसके कारण धर्म की मूल भावना को कोई धक्का नहीं लगता। वह तो एक व्यापक प्रेरणा है जो जीवन को श्रद्धा और शक्ति प्रदान करती है, जो जीवन को दिशा और आदर्श देती है, एक ऐसी चेतना देती है जिसके नाम पर मर मिटने के लिए भी आदमी तैयार हो जाता है, जो हृदय और आत्मा को गहराई तक स्पर्श करती है, प्रभावित करती है। उसके कारण मानव को अपने भीतर बसने वाले दानव का दलन कर देवत्व की ओर जाने की प्रेरणा मिलती है। चारित्र्य बल का वह एक बड़ा आधार है।

इस प्रकार के धर्म का प्रवर्तन करने वाले लोग हमेशा हर युग में रहे हैं। कभी उनकी आवाज़ क्षीण हो जाती है तो कभी बुलन्द रहती है। वे व्यक्तिनिष्ठ नहीं होते, समाजनिष्ठ होते हैं, आत्मरत नहीं रहते, पर-रत रहते हैं, जो अपना भला-बुरा नहीं सोचते, औरों का भला-बुरा सोचते रहते हैं। उनकी संख्या भले ही कम हो, उनकी वाणी भी दब जाती हो, पर उनका अस्तित्व ज़रूर रहता है।

गीता मानती थी कि धनंजय इन्हीं व्यक्तियों की परम्परा का व्यक्ति है। वह उसका स्वभाव है, प्रकृति है। और मनुष्य की मूल प्रकृति को कह-सुनकर बदला नहीं जा सकता। वह तो गंगा के प्रवाह की तरह अखण्ड है, अपराजेय और अपरिवर्तनीय है। उसको तो वह जैसा है उसी तरह स्वीकार कर लेने में सार है। गीता ने भी यही माना था।

पर धनंजय के इसी स्वभाव का उसे अद्भुत आकर्षण था। वह अक्सर भावनाओं या विचारों की दुनिया में रहता। कई बार जड़ भौतिक जगत की बातें उसे छू ही नहीं पातीं जैसे वह बाहरी दुनिया से अलग कहीं अपने अन्तर्जगत में रहता हो। सामाजिक आन्दोलनों की, विचारों के प्रवाहों की, राष्ट्रीय जीवन की उठती-

गिरती लहरों की उसके हृदय और मस्तिष्क पर तुरन्त प्रतिक्रिया होती। सफलता और विफलता, आशा और निराशा, आनन्द और उदासी, उत्साह और हताशा, जो जिस समय उसे अनुभव होता वह तुरन्त उसके चेहरे पर, व्यक्तित्व में दिखाई पड़ जाता था। एक तरह से वह बच्चों की तरह निर्मल और अकृत्रिम था। दुनिया के छल-छद्म मानो उसे स्पर्श ही नहीं कर गए। उसे कोई बनाना चाहे तो फौरन बना सकता है। वह सबकी नीयत पर विश्वास करके चलता था, जब तक उसका अनुभव विपरीत न हो। मित्रों का सच्चा मित्र था, पर शत्रुओं का सच्चा शत्रु नहीं था क्योंकि वह शत्रु व्यक्तियों का नहीं सिद्धान्तों का हो जाता था।

पर एक बात थी। जब कभी उसे अनुभव होता कि जिसपर उसने समूचा विश्वास कर अपने हृदय का समस्त स्नेह और श्रद्धा समर्पित की, उसीने उसका विश्वासघात किया, तो फिर वह कुसुम-सा कोमल व्यक्ति वज्र जैसा कठोर हो जाता था। इस आघात से पहले तो उसका हृदय विदीर्ण हो जाता, भयंकर निराशा और विफलता होती, शरीर भी लड़खड़ा उठता; पर ऐसा लगता कि उसके भीतर न जाने कौन-सी सुप्त जीवन-शक्ति थी, अथाह, अज्ञेय, जो न जाने कहां से आकर उसे अदम्य साहस और असीम निर्भयता प्रदान कर देती जिसके सामने लगता कि पहाड़ भी हिल उठें, और धरती भी कंप जाए। लोग उससे प्रेम करते, उसे आदर देते, पर भीतर ही भीतर उससे भय भी खाते।

गीता इसी प्रकार के धनंजय पर फिदा है, उसके लिए सर्वस्व समर्पण करने के लिए हमेशा तैयार रहती है। धनंजय में प्रतिभा है, व्यक्तित्व है, एक अद्भुत तेज और पराक्रम है जो सूरज की प्रभा से टक्कर लेता-सा नजर आता है। और यही गीता धनंजय की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। इतना भावुक, इतना कोमल व्यक्ति नारी के प्रेम के बिना जीवित रह सकता था ?

गीता उसकी सखी थी, प्रेयसी थी, मन्त्री थी, माता थी। गीता जानती थी कि वह यदि उसकी सार-संभाल के लिए पास न होती तो धनंजय की जीवन-नैया कठोर दुनिया की छोटी-सी चट्टान पर टकरा कर न जाने कब छिन्न-विच्छिन्न हो जाती।

वह धनंजय के लिए आवश्यक है। उसके बिना धनंजय पूर्ण नहीं है, यह वह जानती है।

धनंजय भी यही मानता है। अपने इस विचित्र संघर्षमय जीवन में गीता का

साथ न होता तो वह पागल हो जाता, लड़खड़ा जाता, हार जाता; ऐसी उसकी निश्चित धारणा थी।

अपमान हो या अन्तर्व्यथा हो, पराजय हो या विफलता हो, रात्रि की नीरवता में जब वह गीता के वक्ष में अपना सिर छिपाकर बच्चों की तरह रो नहीं लेता था और अपनी भावनाओं के विराट आवेग को बहा नहीं डालता था तब तक उसका मन शांत नहीं होता।

यह गीता ही उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी थी, और सबसे बड़ी शक्ति थी।

दिल्ली में स्वतंत्रता के उपलक्ष्य में आतिशबाज़ी हो रही है, भोज उड़ाए जा रहे हैं, यहां भी उसके नगर में उत्सव मनाया जा रहा है, पर इसमें उसका मन नहीं रमा।

उसका मन दौड़-दौड़कर गांधी के पास जाता है जो लाठी उठाकर, पैदल प्रवास में, नोआखाली के अरण्यकों में, मसीहा की तरह सांत्वना और राहत का संदेश दे रहा है।

और एकाएक उसके दिल में विचार आया, यह गांधी औरों को सांत्वना और राहत दे रहा है या अपने आपको? वह दूसरों के आंसू पोंछ रहा है या अपने आपके आंसुओं को रोक रहा है?

अकस्मात उसके अन्तर्मन ने उससे कहा कि गांधी का हृदय इस समय विदीर्ण है, दारुण व्यथा से पीड़ित है।

किस बात की उसे व्यथा थी? वह कौन-सा आघात था जो उसे इस मंगल-पर्व में शरीक होने से रोके हुए था। उसके दिल पर कौन-सा ज़ख्म है, किस बात की चोट पहुंची है?

धनंजय यह स्पष्ट रीति से तो नहीं जान सका, पर उसका मन गहरी विषण्णता से भर गया और बरबस उसकी आंखों में आंसू आ गए।

यह भारतीय स्वतंत्रता का पर्व-दिवस था, और धनंजय अपनी प्राणप्रिया की गोद में सोया हुआ था, पर उसकी आंखें झर-झर बह रही थीं।

गीता ने भी धीरे से अपनी आंखों को आंचल लगा लिया।

५

गीता का विवाह हुए दस वर्ष हो चुके हैं, और उसे धनंजय का स्वभाव भीतर-बाहर से पूरा-पूरा मालूम है। उसके जीवन को उसने निकट से देखा ही क्या, उसके सुख-दुख का प्रसाद पूर्ण मात्रा में ग्रहण किया है। कितना प्रखर उसका जीवन था? बाहरी दुनिया को उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

धनंजय एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र 'युगान्तर' का संपादक था, और गीता के सगे-सम्बन्धी जानते थे कि इस धन्धे में सामाजिक प्रतिष्ठा जो भी हो, आर्थिक दृष्टि से फाकेकशी को छोड़कर और कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। खासकर जब कि पत्र विशुद्ध राष्ट्रीयता का प्रचारक था, और अंग्रेज़ी साम्राज्य के मजबूत अस्तित्व का कट्टर विरोधी था।

पत्र सचमुच बड़ा लोकप्रिय था, क्योंकि धनंजय के विचार बड़े निर्भीक और तर्कशुद्ध रहा करते थे, उनमें तेजस्विता थी, जो उन दिनों की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। अन्य समाचारपत्र सरकार की मरज़ी सम्हालकर ही राष्ट्रीय विचारों का प्रतिनिधित्व करने का आभास मात्र निर्माण करते थे, पर उनकी मर्यादा यही थी कि अंग्रेज़ी शासकों की नाराज़ी का ज़रा भी खतरा हुआ कि अपने विचारों को फौरन मोड़ दे दिया करते। आखिर कलम बड़ी लचीली होती है, उससे जो लिखाना हो वह लिख देती है—राम की गुणगाथा भी, और रावण की भी। वह तो लिखने वाले की करामात पर अवलम्बित रहता है। प्रबुद्ध पाठक जान जाते कि यह तार पर की कसरत क्यों कर चल रही है। पर उन पत्रों के संपादक समझते कि वे अपनी और जनता की आंखों में इस प्रकार अंजन लगा सकते हैं ताकि उनकी कमजोरी पर किसीकी नज़र न टिके।

पर जनता ऐसी बेवकूफ कभी नहीं रही है—न तब थी और न अब है। वह तो अपने सच्चे सेवक को पहचानती थी, सेवा का नाटक करने वालों को भी जानती थी।

और इस सब वातावरण में धनंजय एक देदीप्यमान नक्षत्र की तरह चमक उठता। उसका समाचारपत्र स्वातंत्र्य संग्राम का प्रहरी था। वह न सरकारी शक्तियों को अपने शब्द-बाणों के आक्रमण से छोड़ता और न उन भारतीय पंचम स्तंभियों को जो विदेशी शासन की छत्रछाया में फल-फूलकर अपनी मातृभूमि की दासता की ज़ंजीरों को और भी मज़बूती से जकड़वाने में मदद करते। समस्त

राष्ट्रीय जागरण के आन्दोलनों और प्रवृत्तियों की सेवा में उसका साप्ताहिक पत्र 'युगान्तर' संकटमोचन हनुमान जी की तरह अडिग खड़ा रहता। राष्ट्रीय तत्व के लोग उस पर नाज़ करते, अराष्ट्रीय तत्व उससे हमेशा भय खाते, उसे अपने मार्ग का कांटा समझते। शासन के ऊंचे से ऊंचे अधिकारियों पर, फिर वे गवर्नर हों या चीफ सेक्रेटरी हों, उसका सदैव बड़ा आतंक रहता।

धनंजय ने कहीं नेपोलियन का यह विचार पढ़ा था कि वह चार रेजिमेण्टों से उतना नहीं घबड़ाता जितना एक समाचारपत्र से। अंग्रेज साहित्यिक और चिन्तक टॉमस कार्लाइल के यह विचार भी उसे बड़े आकर्षक लगते कि एक सुयोग्य संपादक एक बादशाह से किस प्रकार कम है? फर्क इतना है कि उसकी बादशाहत वर्ग मीलों की संख्या से नहीं उसके पाठकों की संख्या से कूती जाती है।

धनंजय इसी बादशाहत की शान-शौकत में मस्त रहता। अपनी संपादकीय कुर्सी के सामने उसने संत कबीर का यह वचन लगाया था :

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछु ना चाहिए, सोई साहंसाह॥

पत्र-संपादन उसके लिए रोज़गार नहीं था, एक मिशन था। वह व्यक्तिगत उन्नति का, स्वार्थसाधन का या नेतागिरी कमाने का ज़रिया नहीं था, जनसेवा का देशसेवा का पवित्र माध्यम था जिसकी विशुद्धता को बनाए रखना सब समय आवश्यक था। इस मार्ग में खतरा है, बाधाओं की कमी नहीं है, प्रलोभनों की भरमार है, कण्टक हैं, तो सुविधाएं भी हैं। उन सबसे बचकर अपने कर्तव्य-पथ से क्षण भर के लिए भी विचलित या भ्रष्ट न होना सरल काम नहीं है, बड़ी साधना और तपस्या है। वह भगवान से निरंतर यही प्रार्थना करता रहता कि वह उसे इस मार्ग पर अडिग और निर्भय चलने की शक्ति देता रहे।

उस ज़माने की पत्रकारिता भी कितनी कठिन थी! पास में कोई पूंजी नहीं, प्रेस की छपाई का बिल भी नियमित रूप से देना मुश्किल। सरकार से तो खुली लड़ाई थी इसलिए सरकारी विज्ञापन भी मिलने से रहे। ग्राहक-संख्या ठीक थी, पर समय से चन्दा वसूल होना कठिन था। एक प्रति दस-दस, बीस-बीस लोग पढ़ लेते थे। अलग से खरीदकर पढ़ने वाले कम थे। उन दिनों यानी सन् १९३५-३६ में कांग्रेस की बड़ी प्रतिष्ठा थी, और वही संस्था राष्ट्रीय जागरण और आन्दोलन की एकमात्र प्रतीक थी। इसीलिए स्वभावतः सभी राष्ट्रीय पत्रों का उसे सम-

र्थन रहता। 'युगान्तर' से भी सबसे अधिक शक्ति कांग्रेस दल को ही मिली। पर अधिकांश में कांग्रेस नेताओं और कार्यकर्ताओं की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे ज्यादा अखबार खरीदकर पढ़ें। फिर भी वे 'युगान्तर' के प्रचार में थोडी-बहुत मदद ज़रूर करते, और पूरी सहानुभूति जताते। उनके अन्तःकरण में धनंजय के लिए बड़ा आदर था। उसकी प्रखर राष्ट्रीयता, निर्भीकता तथा तेजस्विता के कारण वे उसकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। स्वेच्छा से उसके पत्र की थोड़ी-बहुत सहायता भी करते थे। पर पत्र का घाटा किसी तरह पूरा ही नहीं होता था। प्रेस की उधारी या कागज़ वालों की सहूलियतों से और अन्त में चलकर अपना पेट काटकर ही वह किसी कदर अपना काम चलाया करता था। प्रेस के मालिक और कर्मचारी भी अधिकतः राष्ट्रीय वृत्ति के ही थे। उस ज़माने में तो देशभक्ति की भावना घर-घर में कूट-कूटकर भरी थी। गांधीजी का जबर्दस्त प्रभाव था, उन्होंने समूची की समूची पीढ़ी की जीवन-दिशा ही बदल दी थी। इसलिए वे सब कर्मचारी भी 'युगान्तर' के प्रकाशन में पूरा योग देते थे, जैसे किसी यज्ञ में आहुति दे रहे हों। 'युगान्तर' सबके हृदयों में घर कर गया था और सबकी शुभकामनाएं और सद्भावनाएं उसे बड़ा बल देती थीं।

बस, इसके नशे में धनंजय अलमस्त रहता और उसकी मस्ती का संसर्ग गीता पर भी छा जाता। दाल-भात-रोटी नहीं मिली तो खिचड़ी तो कहीं नहीं गई। सोने के लिए पलंग नहीं मिला तो धरती और चटाई कौन छीन सकता था? कपड़े में पैबंद भले ही लगे हों पर जब घर में दोनों ही चरखा चलाते हैं तब वस्त्र की समस्या का क्या डर है? गीता का ध्यान भी अपनी फटी साड़ी की तरफ न जाता। उसके रिश्तेदार जब उससे मिलने आते तो उनकी छाती फट जाती। पर गीता की समझ में ही नहीं आता कि आखिर उन्हें इतनी परेशानी क्यों होती है। उसके दिल से पूछे तो वह कहता कि उसका सुख-वैभव किसी महारानी से क्या कम है? वह अपने पति के दिल की सम्राज्ञी जो है। पति का अनन्य प्रेम ही नारी का सबसे बड़ा अलंकार है, आभूषण है। उसके अभाव में सोने की थाली में परोसा हुआ पंच पकवानों से युक्त भोजन भी विष के समान है, और रेशम के गद्दे-तकियों की शय्या भी शर-शय्या है। अपना-अपना दृष्टिकोण ही तो ठहरा! कोई काहू में मगन, कोई काहू में मगन!!

पर इतने से ही उसकी तपस्या पूरी नहीं हुई। ब्रिटिश शासन ने प्रेस ऐक्ट के अन्तर्गत युगान्तर के एक अग्रलेख से नाराज़ होकर दो हजार रुपये की ज़मानत मांग

ली। घर में तो बीस रुपये नहीं थे, दो हज़ार कहां से आएं। सरकारी हुक्म था कि दस दिन के भीतर जमानत नहीं दाखिल की तो प्रेस पर ताला लग जाएगा। अखबार भी बन्द हो जाता, और प्रेस के कर्मचारी बेकार हो जाते सो अलग।

यह आघात ज़बर्दस्त था। जाहिर है कि यह वार जान-बूझकर इसी नीयत से किया गया था कि समाचारपत्र की कमर ही तोड़ दी जाए ताकि वह फिर उठ ही न सके। पहली बार धनंजय के पैर लड़खड़ा उठे। जिस पत्र को अपने रक्त की स्याही में लिख-लिखकर चलाया उसे इस निर्मम प्रहार के कारण बन्द करना पड़े इससे बढ़कर मर्मान्तक चोट क्या हो सकती है? धनंजय को लगा जैसे वह अपनी ही आंखों अपना मरण देख रहा है।

दस दिन के भीतर दो हज़ार, कहां से लाए? धनंजय बिस्तर पर धम्म से जा गिरा और तड़प उठा। रात भर उसकी तिलमिलाहट जारी थी। वह व्याकुल था। इस घने अन्धकार में, हे भगवान, कैसे रास्ता सूझे!

गीता ने ढाढ़स दिया, 'मेरे राजा। यह तो अपनी अग्नि-परीक्षा है। जो वीर-बहादुर होते हैं उन्हींकी तो परीक्षा होती है। जिस भगवान ने यह परिस्थिति लाई है वही इसका निर्वाह भी करेगा। हमने किसीका अकल्याण तो किया नहीं, किसीका घर नहीं उजाड़ा, किसीका दिल नहीं दुखाया। भारत माता की भक्ति में कोई खोट नहीं आने दी। भगवान का भी कभी विस्मरण नहीं किया। द्रौपदी की लाज रखने वाला योगेश्वर हमारी लाज क्यों जाने देगा? क्या तुम उसका यह आश्वासन भूल गए?

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

'इसलिए अपना सब भार उस चतुर्भुज चक्रधर पर छोड़कर निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाते? इतनी अश्रद्धा क्यों?'

गीता के शब्दों ने अमृत का काम किया और धनंजय का धीरज लौट आया। दूसरे दिन जब लोगों ने समाचारपत्रों में जमानत की खबर पढ़ी तो 'युगान्तर' के लिए उनके मन में सहानुभूति उमड़ पड़ी। कई लोगों ने स्वयंस्फूर्त होकर जमानत-फण्ड में चंदा देना शुरू किया। पर नौ दिन में एक हज़ार से ज़्यादा इकट्ठा नहीं हुआ। अब बचे हुए एक दिन में एक हज़ार कहां से आएगा? हरएक दाता सोचता कि युगान्तर के प्रेमियों की तो कमी नहीं है। मैंने यदि पांच रुपये की जगह दो

रुपये ही दिए तो क्या बिगड़ जाएगा ? इतने लोग जो हैं।

मसल वही हुई कि एक राजा ने ऐलान किया कि महल के सामने के हौद में रात को हर एक नागरिक एक-एक लोटा दूध छोड़ जाए, क्योंकि कल राजा का दुग्ध-स्नान होगा। प्रत्येक नागरिक ने सोचा, सब लोग तो दूध डालने ही वाले हैं, मैं ही अकेला एक लोटा पानी छोड़ दूं तो क्या होगा ? सुबह उठकर देखा तो हौद में एक बूंद दूध नहीं निकला, सब पानी ही पानी भरा पाया। राजा के शुद्धोदक-स्नान की व्यवस्था हो गई।

'युगान्तर' का हाल उस राजा जैसा बुरा नहीं था। उसके कोष में तो हज़ार रुपये आ चुके थे। पर बाकी के हज़ार नहीं आए तो कल प्रेस का ताला कैसे टलेगा ?

गीता ने कहा, 'विवाह के समय मेरी मां ने कुछ गहने दिए थे। वे आखिर किस दिन काम आएंगे ?'

धनंजय की आंखों में आंसू आ गए। रुंधे हुए कण्ठ से बोला :

'गीता, तुम्हारे लिए नये गहने तो नहीं बना सका, पर तुम्हारे अपने जो गहने थे वे भी जाने को तैयार दीखते हैं। इतना बड़ा शल्य भला मैं किस प्रकार बर्दाश्त कर सकूंगा ?'

'ऐसी पागलपन की बात क्यों करते हो मेरे राजा', गीता उसके समीप आकर बोली। उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर अपने गले में डालते हुए बोली, 'तुम्हारी ये भुजाएं तो मेरा सबसे मूल्यवान आभूषण हैं, जिनके सामने रत्नजटित गलहार की क्या कीमत है ? इन भुजाओं की शक्ति सुरक्षित रहे तो मेरे सौभाग्य और अलंकारों में कभी भी कोई क्षति नहीं हो सकती।'

धनंजय ने गद्‌गद होकर गीता को हृदय से लगाते हुए कहा :

'गीता, तुम नारी नहीं भगवती हो, व्यक्ति नहीं आदिशक्ति हो। गज़ब की तुम्हारी हिम्मत है। सचमुच तुम साथ हो इसीलिए आसमान के तारे तोड़ लाना भी मेरे लिए कठिन नहीं है।'

जमानत समय पर दाखिल कर दी गई, और युगान्तर प्रेस में ताला नहीं लगा और न उसकी कलम पर कोई ज़ंजीर ही लगी। इस अग्नि-परीक्षा के बाद जैसे उसकी लेखनी और भी प्रज्ज्वलित हो उठी हो, और वह पहले की अपेक्षा अधिक आग बरसाने लगी। ब्रिटिश नौकरशाही थर्रा उठी, और जमानत ज़ब्त

करने की साजिश करने लगी ।

पर जिसकी रखवाली करने वाला सुदर्शनधारी हो उसे कौन मार सकता है ? उसने लाज रख ली । पहला कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना और उसने फौरन ज़मानत वापस करने का हुक्म दे दिया ।

धनंजय ने खज़ाने से रुपये उठाए तो जिन लोगों ने ज़मानत के कोष में चन्दा दिया था उनके रुपये वापस करता चला। वे शर्मिन्दा हो गए क्योंकि उनकी धारणा थी कि अखबार के लिए जो पैसा ले जाता है वह वापस नहीं करता, भले ही वह कर्ज़ के रूप में हो। पर यह तो दान था, और वह भी वापस मिल रहा है। एक-दम अनपेक्षित और अभूतपूर्व घटना !

दो-एक आदमियों ने कहा भी कि हमने वापस करने के लिए थोड़े ही पैसा दिया था ?

धनंजय ने नम्रता से जवाब दिया, 'यह तो आपकी महान उदारता है। पर यह पैसा तो मैंने ज़मानत के लिए ही लिया था। सौभाग्य से वह वापस मिल गई, सो आपका रुपया लौटा रहा हूं।'

कई लोगों को पश्चात्ताप हुआ कि दो रुपये की जगह दो सौ दे देते तो रुपये भी वापस आ जाते और सौ गुना यश भी मिलता। दान देने के पहले ज्योतिषियों से पूछ लेते तो अच्छा होता।

गीता के गहने भी वापस आ गए।

कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बनने के बाद 'युगान्तर' के लिए दो-ढाई वर्ष तो कुछ अच्छे गए पर फिर दूसरा महायुद्ध छिड़ गया और एक-एक कर सभी प्रान्तों के मन्त्रिमण्डलों ने युद्ध-कार्य से अपना असहयोग व्यक्त करने के लिए स्तीफा दे दिया। राष्ट्रीय विचारों के व्यक्तियों के लिए फिर दुर्दिन आए। व्यक्तिगत सत्याग्रह हुआ, गिरफ्तारियां हुईं, दमन शुरू हुआ, और गांधी जी ने सन् बयालीस का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ दिया।

इतनी बड़ी आंधी में बेचारा 'युगान्तर' कैसे टिकता ? उसकी उज्ज्वल किंतु क्षीण ज्योति टिमटिमाने लगी। उसका कर्ता-धर्ता संपादक धनंजय गिरफ्तार कर लिया गया और साढ़े तीन वर्ष के लिए जेल में ठूंस दिया गया। गीता अकेली रह गई। वह अब करे तो क्या करे ?

पर इस विराट चुनौती के सामने उसमें जाने कहां से शक्ति आ गई ? वह सोई

हुई शक्ति थी या साक्षात भगवती ने उसे प्रदान की थी यह कौन कह सकता है ? गीता जैसे चण्डी का अवतार बन गई। वह समझ गई कि यह स्वतन्त्रता की अंतिम लड़ाई है, इस पार या उस पार ! इस पार तो रहना नहीं है, उसी पार जाना है, इसके लिए गांधी दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, देश भी दृढ़ प्रतिज्ञ है। फिर भले ही बीच मझधार में रसातल में गोता लगाना पड़े। यह जल-समाधि ही जीवन है, मोक्ष है, और निष्क्रिय होकर परिस्थिति के सामने घुटने टेक देना ही मरण है, बन्धन है। सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी है। बस, उसमें आहुति देकर उसे अधिकाधिक प्रज्ज्व-लित करने के सिवा और कोई काम नहीं है। इस ज्वाला में जलकर मर जाना हो तो भी चिन्ता नहीं। देखने-सम्हालने वाले साक्षात परमेश्वर जो ऊपर बैठे हैं। जो कुछ कर गुज़रना है, इसी क्षण कर गुज़रना है। अपने पति के नाम को यदि बट्टा नहीं लगाना है तो अब कदम वापस नहीं लौट सकते। जो शमशेर म्यान से निकल चुकी है वह वापस म्यान में नहीं जा सकती। बस, अब तो हरहर महादेव कर आगे कूच करने के सिवा और कोई काम नहीं है।

गीता ने कमर कस ली और 'युगान्तर' की सारी बागडोर अपने हाथ में संभाल ली। महिला विद्यापीठ की वह स्नातिका थी, और अपने विवाहित जीवन के सात-आठ वर्षों में, धनंजय के सान्निध्य में, उसकी सहचरी के रूप में वह उसका काम बहुत कुछ जान गई थी। उसने सोचा, दो का काम एक ही को करना होगा न ? घर-बार की चिन्ता छोड़कर अब पूरी ताकत इसी काम में लगाने के सिवा गति नहीं है। और न जाने कहां से उसकी भुजाओं में असंख्य भुजाओं की शक्ति आ गई।

'युगान्तर' बराबर निकलता रहा। अग्रलेख धनंजय के नहीं रहते, गीता के रहते। उसके भाव, भाषा से वह इतना समरस था कि लोगों को कई दिनों तक खास फर्क नहीं मालूम पड़ा। पर एक नारी साहसपूर्वक एक समाचारपत्र चला रही है और ब्रिटिश सरकार की उग्र दमन नीति से डटकर लोहा ले रही है, इसी बात ने उसके लिए सहानुभूति और सहायता के अनेक साधन जुटा दिए। आखिर पराक्रम करने वालों के लिए ही तो वसुन्धरा अपना वरदान देती है। उद्योगशील व्यक्तियों का ही वरण तो लक्ष्मी करती है।

पर इस अविश्रान्त और अखण्ड परिश्रम के सामने गीता का शरीर-बल कम-ज़ोर पड़ने लगा। उसकी हिम्मत तो गज़ब की थी, पर शरीर पिछड़ने लगा। मह-

गाई खूब बढ़ गई थी। आमदनी में उस परिमाण में वृद्ध नहीं थी। जीवन की आवश्यकताएं भी खूब महंगी हो गई थीं, कागज़, छपाई, मज़दूरी सभी बढ़ गई थी। लड़ाई के कारण घी-दूध, अनाज, साग-सब्ज़ी सभी के भाव तेज हो गए थे। बड़े कष्ट की ज़िन्दगी थी। जो लोग लड़ाई के कामों में या उससे संलग्न रोज़गार-धंधों में लगे हुए थे वे तो चांदी कमा रहे थे, मज़े लूट रहे थे; पर जो लोग आदर्शों को छाती से लगाए बैठे थे उनकी तो मौत थी।

गीता नारी थी, पर उसका हृदय कभी-कभी इस्पात की तरह कड़ा हो जाता था। कर्तव्य-दक्ष इतनी कि चाहे जो हो जाए, 'युगान्तर' का झण्डा नीचे न होने देगी। धनंजय ने जेल जाने के पहले उसपर जो ज़िम्मेदारी सौंपी थी वह अवश्य पूरी करेगी। रोज़ बारह या चौदह घण्टे परिश्रम करना पड़ता। जिस दिन साप्ताहिक पत्र का अंक निकलता उसके अगले दिन तो लगातार अठारह घण्टे तक काम करना पड़ता। आर्थिक चिन्ताएं अलग थीं। सरकार की धमकियां अलग। स्वास्थ्य इतना बोझ उठाने से इन्कार करता था। पर वह धुन की पक्की थी। काम में लगी थी सो लगी रही।

पर रात को जब वह बिस्तर पर पड़ती तो थककर चूर हो जाती। कोई सांत्वना देने वाला नहीं, धीरज बंधाने वाला नहीं, स्नेह से पीठ थपथपाने वाला नहीं। धनंजय की याद में वह रो-रो पड़ती। अपनी एकान्त शय्या में वह फिर अपनी भावनाओं को नहीं रोकती। उस समय उसका पुरुषार्थ और संघर्षवृत्ति न जाने कहां चली जाती और एक असहाय एकाकी नारी की तरह आंसू बहाने लगती। धनंजय का वियोग अब उसे अखरने लगा था। जब से विवाह हुआ तब से दस-पांच दिन से ज़्यादा वे कभी अलग नहीं रहे। पर यह वियोग तो दिनों नहीं, हफ्तों नहीं, महीनों नहीं, वर्षों तक चलता रहा। न जाने कब लड़ाई बन्द होगी और कब धनंजय छूटकर आएगा।

पर यह सब नारीत्व का रोदन और विलाप हो जाने के बाद उसका जो हल्का हो जाता और उसका मन धनंजय के लिए, अपने स्वयं के लिए अभिमान से भर जाता। यह भारतीय स्वतन्त्रता की प्रसूति की पर्व-वेला है। उसमें उन दोनों का सक्रिय सहयोग है, उनकी आहुति है, यह क्या कम सौभाग्य की बात थी?

उधर धनंजय भी जेल में पड़ा-पड़ा छटपटाता। पहले पांच-छः महीने तो उसे बाहर पत्र लिखने की इजाज़त नहीं थी। पर बाद में वह लिख सकता था।

वह गीता को भरसक ढाढ़स बंधाने की कोशिश करता, सेन्सर किए गए पत्रों के ज़रिये जितना भी प्रीति का भाव व्यक्त किया जा सकता था उतना दर्शाने की कोशिश करता था ताकि उसके कठोर मरु-प्रवास में कुछ तो हरियाली दिखाई दे। उसके लिखने का आशय यही रहता :

'मैं जेल में तो हूं, पर मेरा सारा चित्त बाहर है, तुममें केन्द्रित है। संस्था की सारी जिम्मेदारी अकेले तुम्हारे कंधों पर आ पड़ी है—तुम्हें क्या-क्या भोगना पड़ता होगा इसकी कुछ-कुछ कल्पना कर सकता हूं। इसीका खेद है कि तुम्हारा भार हल्का करने के लिए मैं तुम्हारे पास नहीं हूं। असल में त्याग और कर्तृत्व तो तुम्हारा है—मेरा तो कुछ भी नहीं है। यहां जेल में तो बहुत आराम है। काम-धंधा कुछ नहीं है, निकम्मी ज़िन्दगी है। कुछ पढ़-लिख लेता हूं, अपने स्वास्थ्य की तरफ ध्यान देता हूं, प्रार्थना-प्रवचन में शरीक हो जाता हूं, कुछ भले लोगों का साथ है, सब ठीक है। एक ही बात ठीक नहीं है, कि जब मुझे तुम्हारे साथ कंधे से कंधा मिलाकर परिस्थितियों से लड़ना चाहिए, और पूरी जिम्मेदारी उठानी चाहिए, वही नहीं कर पाता। लेकिन भरोसा रखो रानी, हमारे ये दिन भी फिरेंगे। हमसे अधिक तकलीफ बर्दाश्त करने वाले लाखों लोग देश में हैं। उनके सामने हमारा कष्ट कुछ भी नहीं है। भगवान ज़रूर इस देश की कोटि-कोटि त्रस्त और संतप्त जनता की पुकार सुनेंगे, हमारी गुलामी की दीर्घ रात्रि समाप्त होगी, और हमारे गौरवमय देश में स्वाधीनता के स्वर्ण प्रभात का उदय होगा, उसका भाग्य जाग उठेगा। मेरी यह दृढ़ धारणा है, श्रद्धा है जिससे मैं क्षण-भर के लिए भी विचलित नहीं होता।'

धनंजय के पत्रों से गीता को राहत मिलती, संतोष होता। वह भी अपने पत्रों से धनंजय का उत्साह बनाए रखने का प्रयत्न करती थी। उनके दिल मज़बूत थे, पर उनकी बाहरी बुलन्दगी के भीतर उनके शरीर क्षीण हो रहे थे। गीता ईश्वर से बड़ी आर्तता से प्रार्थना करती कि उनके छूटने तक बीमार न पड़ूं यही चाहती हूं। बाद में जो हो जाए वह मुझे मंजूर है।

अकस्मात् एक रात को एकाएक 'युगान्तर' प्रेस को आग लग गई और सारा प्रेस जलकर राख हो गया। कैसे लगी, किसने लगाई, यह कहना कठिन था। पहले तो सोचा कि 'युगान्तर' की जानी दुश्मन तो पुलिस है, उसे छोड़कर और किसकी कार्रवाई हो सकती है? पर बात यह नहीं थी। बिजली के करंट फट पड़ने के

कारण यह दुर्घटना हुई थी। गीता की तो मानो कमर ही टूट गई। वह हाय खाकर बिस्तर पर आ पड़ी। दैव के इस आघात ने उसे हताश कर दिया। उसे चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा नजर आने लगा। अब 'युगान्तर' का प्रकाशन कैसे होगा ? और वह बंद हो गया तो फिर मेरे जिन्दा रहने का क्या मतलब है ? मां भगवती ! मेरे किन पापों का यह फल है जो इस भयंकर परीक्षा में मुझे उतारा ? तुम्हीं यदि अपनी करुणा से वंचित कर दोगी तो फिर मेरा कौन-सा सहारा है ? फिर इन अग्नि-ज्वालाओं को मेरी चिता ही क्यों न बना डाला ताकि प्रेस के साथ ही साथ मैं भी भस्म हो जाती।

पर गीता अकेली नहीं थी। 'युगान्तर' ने तो जनता के सहस्र-सहस्र हृदयों में स्थान बना लिया था। पास-पड़ोस के लोग ही नहीं, रास्ते के राही भी लोटा-बाल्टी लिए आग बुझाने दौड़े। जिसके हाथ में जो लगा उसीका उपयोग उसने अग्नि देवता को शांत करने के लिए किया। पर उनके प्रयत्न प्रेस की कोई विशेष सामग्री नहीं बचा सके।

बड़ी रात तक लोग गीता के पास सहानुभूति जताने के लिए आते रहे पर कोई खाली हाथ नहीं आया। स्वयं स्फूर्ति से लोगों ने प्रेस के पुनर्निर्माण के लिए एक फण्ड खोला, और उसमें रुपया जमा होने लगा। आठ दिन के भीतर पांच-छः हजार रुपया जमा हो गया'। धनंजय के साथी बन्दियों ने भी अपनी ओर से एक फण्ड खोला और जेल से भी रुपया भिजवाने की व्यवस्था की। प्रेस के कर्मचारियों ने दिन-रात एक कर दिया और पन्द्रह दिन के भीतर ही प्रेस फिर खड़ा हो गया। लोग दांतों तले उंगली दबाकर यह अद्‌भुत घटना देखते रहे। गीता को अपने मकान और प्रेस के बाहर एक कदम नहीं रखना पड़ा।

मित्रों ने कहा, 'यह अग्नि-परीक्षा अन्तिम परीक्षा होती है। इसमें जो उत्तीर्ण होता है, बाजी उसीके हाथ लगती है। बहिन जी, अब चिन्ता मत करो। कालचक्र के परिवर्तन में अब देर नहीं।'

धनंजय ने जब जेल में नये प्रेस में छपे हुए 'युगान्तर' का पहला अंक देखा तो खुशी के मारे पागल हो उछल पड़ा। पहले अपनी आंखों पर विश्वास नहीं कर सका। फिर गीता के लिए उसकी सारी श्रद्धा और भक्ति उमड़ आई। गीता, सचमुच तुम धन्य हो। भारतीय नारीत्व तुम्हें पाकर गर्व करता है !

उसके जेल के साथियों ने कहा, गीता जी साक्षात भगवती का ही अवतार

हैं। आपके सौभाग्य अजर और अमर हैं जो ऐसी जीवन-संगिनी पाई।

धनंजय ने गीता को बधाई का पत्र भेजा जिसमें उसके जेल के सभी साथियों की बधाइयां भी शामिल थीं और उनका आदर और शुभकामनाएं व्यक्त की गई थीं। गीता उसे पढ़कर अपनी सारी चिन्ताएं भूल गई।

इसी प्रकार संघर्ष के साथ दिन बीतते चले और कांग्रेस के नेताओं की रिहाई हुई। लड़ाई खत्म हुई। धनंजय छूटा। उसके सब साथी भी रिहा हुए। गीता का स्वास्थ्य देखकर धनंजय का दिल ही बैठ गया। पर मिलन के आनन्द ने उसकी चिन्ताओं पर विजय प्राप्त की। दोनों एक दूसरे को देखकर हरे हो गए। गीता ने कहा, 'अब मैं देखते-देखते चंगी हो जाऊंगी।'

और इसके शीघ्र ही बाद देश का राजनीतिक वातावरण बदला, ब्रिटिश सरकार ने भारत से हटने का निश्चय कर लिया, सत्ता के हस्तांतरण की चर्चाएं शुरू हुई और भारत खण्डित तो हुआ पर स्वतंत्र हो गया।

पन्द्रह अगस्त सन् उन्नीस सौ सैंतालीस का ऐतिहासिक दिन आया। सारा देश खुशी में झूम उठा। सारे भारत में जशन मनाया गया। भारत माता की जय। आज़ाद हिन्दुस्तान की जय। इन नारों से आसमान गूंज उठा। ये नारे आसमान में उठे, हिमालय से टकराए और टकराकर वापिस लौटकर देश के कोने-कोने में प्रतिध्वनित हो उठे।

६

डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय के यहां आज उनकी बेबी की बर्थ-डे पार्टी थी। पांच-सात दिनों से तैयारियां हो रही थीं क्योंकि उसमें शरीक होने के लिए उनके विभाग के मन्त्री माननीय श्री मनमोहन बाबू ने स्वीकृति दे दी थी। श्रीमती सहाय के उत्साह का आज क्या पूछना ? जैसे साक्षात भगवान घर चलकर आ रहे हों। वैसे भगवान में तो उनका कोई खास विश्वास नहीं था। सिर्फ एक बार उन्हें याद आता है कि बचपन में उनकी बेबी जब सख्त बीमार पड़ गई थी, और एक रात तो उसके जीने की आशा नहीं रही थी, तब

दफ्तर के किसी क्लर्क के कहने-सुनने से उन्होंने एक पण्डित को बुलाकर कुछ पूजा-पाठ कराया था। वह भी बंगले में नहीं, वरन् उसके पिछवाड़े की नौकर की खोलियों में चुपचाप कि कहीं उनके अंग्रेज़ अधिकारियों को इसका पता न चल जाए और वे उन्हें पुरातनवादी और ढकोसलापन्थी न करार दे दें। किस्मत से बेबी अच्छी हो गई तो उसका श्रेय उन्होंने उस पूजा को नहीं दिया अपितु 'पेनिसिलीन' को दिया जो लड़ाई के दौरान में नई-नई हिन्दुस्तान में आई थी और थोड़ी मात्रा में मिलने लगी थी।

लेकिन अब ज़माना बदल गया है, भारत स्वतंत्र हो गया है, इसलिए मान्यताओं में फर्क होना अवश्यम्भावी है। समय की गति को देखकर जो नहीं बदलते वे प्रगतिवादी नहीं हैं, प्रतिक्रियावादी हैं। इसलिए अब भगवान को भी ज़िन्दगी में स्थान देना लाज़िमी है। और हमारे लिए हमारे महकमे के मिनिस्टर साहब को छोड़कर भला और कौन भगवान हो सकता है? मिस्टर और मिसेज़ सहाय का सीधा सवाल था।

बेबी का नाम उसकी नानी ने बड़े प्यार से दुर्गा रखा था, हालांकि यह बात उसकी मां को एकदम नापसन्द थी। उनकी इच्छा थी कि इसका नाम 'डेज़ी' या 'डॉली' रखा जाए। समझौता यह हुआ कि ज़ाप्ते के लिए नाम तो दुर्गा ही बना रहे पर प्रत्यक्ष व्यवहार में 'डॉली' ही चलेगा। आखिर बड़े-बूढ़ों का कुछ तो ख्याल रखना ज़रूरी है! नानी बेचारी कितने दिन साथ देने वाली है? वे तो हमेशा ठाकुरजी से प्रार्थना करती थीं कि आजकल का यह भ्रष्टाचार, अण्डे-मुर्गी का खान-पान उनसे नहीं देखा जाता था इसलिए वे उन्हें जितनी जल्दी अपने चरणों में बुला लें उतना ही अच्छा। मिसेज़ सहाय की पक्की धारणा थी कि नानी इतनी पूजा-पाठ करती हैं तो ठाकुरजी ज़रूर ही उनकी 'प्रेयर' सुन लेंगे और तब 'डॉली' का नाम ही कायम करने में कोई अड़चन नहीं होगी।

नानी बेचारी अपने समय से प्रभु-पद में लीन हो गई और तारामती देवी ने बाकायदा अपनी बच्ची का नाम कॉन्वेन्ट में 'डॉली' ही दर्ज कराया। आठ वर्ष की आयु में ही 'डॉली' इतनी साफ-सुथरी अंग्रेज़ी बोलती थी जैसे वह उसकी मातृ-भाषा हो। क्या उसका बोलने का लहजा, कैसे उसके स्पष्ट उच्चारण! अंग्रेज़ अफसरों और उनकी मेमों से बोलती तो वे बाग-बाग हो जाते। जब वे प्रसन्न-वदन होकर कहतीं, 'व्हाट ए स्वीट किड!' (कैसी प्यारी बच्ची है!) तो मिस्टर

ग्रौर मिसेज़ सहाय का दिल बांसों उछलने लगता। ग्रौर जब ग्रंग्रेज़ चीफ इन्जीनियर की वन्ध्या पत्नी ने कहा कि मैं तो इसे इंग्लैण्ड ले जाना चाहती हूं, वहीं इसको ट्रेण्ड करूंगी, तब तो 'डॉली' के माता-पिता धन्य हो उठे। बोले, स्वर्ग ग्रब दूर नहीं है।

लेकिन इस कम्बख्त स्वतंत्रता-प्राप्ति ने तो सारा नक्शा ही बदल दिया ग्रौर जिन्दगी भर की तमाम मेहनत बेकार गई। स्वर्ग की सीढ़ी की कोई कीमत ही नहीं रही क्योंकि ग्रब तो इस नये ज़माने में स्वर्ग की मान्यता भी बदल गई। ग्रब तो फिर नये सिरे से ग्रलिफ-बे करनी होगी।

लेकिन सहाय-दम्पति बड़े ग्रनुभवी ग्रौर व्यवहार-कुशल थे। ग्राखिर सीढ़ी पर चढ़ने की तरकीब ग्रौर सिद्धांत तो वही हैं। सिर्फ उनकी दिशा भर बदलने की ज़रूरत है। हमें क्या ? ग्रंग्रेज़ गए तो उनकी जगह सुराजी ग्रा गए। ग्राखिर ये भी तो ग्रादमी ही हैं। यदि हम बुद्धिमान विदेशियों को खुश कर सके तो इन स्वदेशियों को खुश करने में क्या देर लगेगी ? जब खुद ग्रंग्रेज़ों ने ही हथियार डाल दिए ग्रौर भारत छोड़ने की ठान ली तो हमने ही क्या ठेका लिया है कि हमीं उनके लिए रोते-पीटते रहें ? क्या हमारे दिल में देशभक्ति नहीं है ? ग्राखिर हम भी तो हिन्दुस्तानी हैं ? हम इन्हीं मिनिस्टरों की सर्विस में ग्रपना जीवन-ग्रर्पण कर देंगे।

तीन दिन के भीतर ही बंगले की रौनक बदल गई। ग्राखिर वे लोक-कर्म-विभाग (पी० डब्ल्यू० डी) के डिप्टी सेक्रेटरी थे। सफेदी पुताई, लाल मुरूम की सड़क, फाटक-ग्रहाता सब चकमक। ड्राइंग रूम में सोफासेट पर खद्दर चढ़ गया। दीवार पर किंग जॉर्ज ग्रौर क्वीन मेरी के चित्रों की जगह महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल ग्रादि के चित्र ग्रा गए। रेडियो के ऊपर भगवान बुद्ध की प्रस्तर-प्रतिमा ग्रा गई। किताबों की दराज़ में गांधी जी तथा नेहरू जी की ग्रात्मकथाएं, 'डिसकवरी ग्रॉफ इण्डिया,' वैन्डेल विल्की का 'वन वर्ल्ड,' लुई फिशर की किताबें, तथा दो-एक स्वामी रामकृष्ण, विवेकानन्द के ग्रन्थ ग्रा गए। ग्रर्थात् ये सब किताबें कांच की ग्रलमारी में रखी हुई थीं, ग्रौर उनके भीतर के कई पन्ने जुड़े हुए थे—इस प्रतीक्षा में कि कोई महापुरुष ग्राए ग्रौर उन्हें पढ़ने की कोशिश में उन पन्नों को ग्रलग करे। पर ग्रभी उनका भाग्य नहीं जागा था। ग्रौर उनके मालिकों की रुचि देखते हुए उसके जागने की संभावना भी बहुत कम

दिखाई देती थी। लेकिन उन पुस्तकों के नाम उस कांच की अलमारी में से छत पर चढ़कर बोलते थे।

लगभग सात दिन से सहाय-परिवार में मिनिस्टर मनमोहन बाबू को छोड़कर और कोई चर्चा नहीं है। राजभवन के शपथ-विधि समारोह की एक-एक अदा याद की जा रही है। उनकी मोटर यदि बंगले के सामने के रास्ते से झण्डा फरफराती निकल जाती तो तीनों एकटक उसकी ओर तब तक देखते रहते जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो जाती। कहते—शायद मुख्य मंत्री जी के बंगले पर जा रहे हैं। सी० एम० के वे खास कृपापात्र हैं। एक बार मनमोहन बाबू के बंगले का चपरासी आया तो मिसेज़ सहाय ने उसे बड़े प्रेम से चाय-समोसे खिलाए और घण्टे भर तक उससे घुल-घुलकर बातें करके मिनिस्टर साहब की दिनचर्या, आदत, खाने-पीने की रुचि आदि का पता लगाया। शाम को यदि वे लोग 'डॉली' को लेकर घूमने जाते या सदर बाज़ार जाते तो मोटर हर हालत में मिनिस्टर साहब के बंगले के पास से ले जाते हालांकि वह उनके रास्ते से ज़रा अलग था। वहां हर समय दो-चार मोटरें और पांच-सात तांगे-रिक्शे खड़े रहते जिन्हें देखकर वे कहते, हमारे मिनिस्टर साहब बड़े लोकप्रिय हैं। आज तीस साल की उम्र में ही यदि उनका यह हाल है तो आगे चलकर वे अपने प्रदेश के ही क्या भारत सरकार के भी प्रधान मंत्री बन सकते हैं। अभी तो उनके लिए काफी लम्बी ज़िन्दगी पड़ी है।

याने कि सहाय-परिवार की सारी बुद्धि, कर्तृत्व-शक्ति और योजना-कुशलता एकमात्र इसी लक्ष्य पर केन्द्रित थी कि किस तरह मनमोहन बाबू को अपने प्रभाव की परिधि में लाया जाए और उनकी कृपादृष्टि में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया जाए।

पार्टी के लिए रघुनाथ सहाय ने अपने विभाग के प्रायः सभी बड़े-बड़े कर्मचारियों को निमन्त्रित किया था, जिनमें सेक्रेटरी, चीफ इन्जीनियर और उनके कुछ खास ठेकेदार लोग थे। और चूंकि उनके मिनिस्टर साहब स्वयं पधारने वाले थे, वे सब लोग उत्साह से आए। नये मन्त्री महोदय से नज़दीकी सम्पर्क स्थापित करने का मौका मिलने की संभावना थी और फिर कभी कार्यवश उनसे दुबारा मिलने का मौका आता तो यह कहने की गुंजाइश थी कि जी, सहाय साहब की पार्टी में आपके दर्शनों का सौभाग्य मिल चुका था।—बस, इतने में ही आधा

काम बन जाने की आशा थी। इधर रघुनाथ सहाय भी सोचते थे कि यह पार्टी इन लोगों पर अपना 'इंप्रेशन' डालने का और रौब गांठने का सुनहला ज़रिया है। धन्य हैं आप मिनिस्टर साहब ! धन्य हैं मनमोहन बाबू, जो उन्होंने इस कदीम की दावत कुबूल फरमाने की मेहरबानी की !

'मनमोहन बाबू ! माननीय मनमोहन बाबू !! क्या सुन्दर नाम है ! सचमुच कैसे मन को मोह लेता है ? बिलकुल क्रिशन भगवान का ही नाम तो है ! वाकई, डियर, हमारे बुजुर्ग भी कितने अक्लमन्द थे कि बच्चों के नाम भगवान के नाम पर ही रखते थे ताकि नाम का नाम हो जाए और पुण्य का पुण्य। अनायास ही नाम-जाप का श्रेय मिल जाता।'—रघुनाथ सहाय ने एक गंभीर चिन्तन-मुद्रा में अपनी पत्नी से कहा, जैसे किसी अपूर्व तत्व का उन्होंने अन्वेषण किया हो।

पत्नी पार्टी की तैयारी में अपने ओठों पर लिपस्टिक लगाती जाती और अपने पति के अर्थपूर्ण विवेचन से सहमति दर्शाती जाती। आज उनके बनाव-शृंगार का क्या पूछना ? पैंतीस-छत्तीस वर्ष की उम्र थी, पर आज उनका सारा प्रयत्न यही था कि चौबीस-पचीस की कैसे लगें ? जब वे अपने शृंगार-गृह से निकलीं तो उनके पति भी, जिन्होंने उनके इस प्रकार के कई अवतारों को देखा था, आश्चर्य से दंग रह गए। और सहसा उनके मुंह से निकल पड़ा, 'ब्यूटी !'

तारामती देवी ने पति पर एक ऐसा मर्मभेदी कटाक्ष फेंका जैसे वे ही उनके प्रियपात्र हों जिनके रिझाने के लिए उन्होंने इतना अपूर्व लावण्य-शृंगार किया है।

पर उनके अन्तश्चक्षुओं के सामने इस समय मनमोहन बाबू की मूर्ति ही नाच रही थी। मानो उनका समस्त उभरा हुआ यौवन एवं सौन्दर्य-परिष्कार यह चुनौती दे रहा था कि देखें, यह खद्दरधारी सफेदपोश विश्वामित्र मेरी मोहिनी की जादू से कैसे बच निकलता है ?

रघुनाथ सहाय के शरीर में एक मधुर सिहरन कांप उठी। उनकी आंखों में उन्माद छा गया और वे एक क्षुधार्त प्राणी की तरह अपनी पत्नी की ओर बढ़े।

'दूर भी रहो जी। न वक्त देखते हो न प्रसंग ! अपने मेक-अप को मैं थोड़े ही बिगड़ने दूंगी'—कहकर श्रीमती सहाय तपाक से कमरे के बाहर निकल गईं।

रघुनाथ सहाय अपनी पत्नी की फटकार खाकर चुपचाप अपनी अचकन चढ़ाने लगे। उनके लिए यह कोई नई बात नहीं थी।

ठीक समय पर मिनिस्टर साहब की गाड़ी आई—वही शानदार झण्डा, वही चमचमाती मोटर, और उसका बुलन्द भोंपू जो आसपास के वातावरण में गूंज उठे और स्पष्टत: ऐलान करे कि मिनिस्टर साहब की सवारी आ रही है।

रघुनाथ सहाय ने मोटर का फाटक खोला और नमस्कार कर अपनी पत्नी और बच्ची का परिचय कराया। मनमोहन बाबू मुग्ध आंखों से श्रीमती सहाय का नयनाभिराम लावण्य देख रहे थे, देखकर कुछ चकाचौंध अनुभव कर रहे थे। रघुनाथ सहाय जी पर उनका ध्यान ही नहीं गया।

श्रीमती तारामती सहाय के चेहरे पर और विशेषकर नेत्रों में ऐसा आकर्षक, ऐसी लुभावनी स्मिति थी कि उसके प्रभाव की परिधि से बड़े से बड़े तपस्वी का निकल भागना कठिन था। एक बार आंखों से आंखें लड़ने भर की देर थी। फिर तीस वर्ष की आयु वाले तरुण मनमोहन बाबू की बात ही क्या, जो तबीयत से ही जरा रंगीन थे। मिसेज़ सहाय एक क्षण में समझ गई कि जादू चल गया और तीर ठिकाने जा पहुंचा।

उन्होंने बच्ची को आगे बढ़ाते हुए कहा :

'बेबी, मिनिस्टर साहब को नमस्ते करो।'

'नमस्टे ! ' बेबी ने कहा।

'आज इसीका बर्थ-डे है,' श्रीमती सहाय ने उसी आकर्षक स्मिति के साथ कहा जो उनके हुक्मनामे पर जब चाहे तब खिल उठती थी, ऐसी स्मिति जो निमन्त्रण जैसी लगती जिसमें उनकी बड़ी-बड़ी काली-काली आंखें और शुभ्र दन्त-पंक्तियां गजब ढा देतीं।

'अच्छाऽऽ ! ' मिनिस्टर साहब ने बड़े स्नेह से बेबी की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा। 'बधाई है, हार्दिक बधाई।'

'ढन्यवाड' बेबी ने हाथ जोड़कर, जैसा सिखाया था वैसा कह दिया।

'तुम्हारा क्या नाम है, बेबी ?' मिनिस्टर साहब ने 'धन्यवाद' शब्द के खटकने वाले उच्चारण को बिसराते हुए कहा।

'डुर्गा'—बेबी ने तत्परता से जवाब दिया। मां की ओर से उसे सख्त हिदायत थी कि बदले हुए भारतीय वातावरण में उसका 'डॉली' नाम का अवतार अब समाप्त हो गया है।

'क्या यह बच्ची कॉनवेन्ट में पढ़ती है ?' मिनिस्टर साहब ने सस्मित पूछा।

'जी हां, जी हां'—दोनों पति-पत्नी ने साथ ही कहा और फिर एक दूसरे की तरफ इस अभिमान से देखा कि देखो, मन्त्री महोदय कितने बुद्धिमान हैं जो बिना बताए ही बात समझ गए।

इसी बीच नज़र बचाकर, मिसेज़ सहाय ने एक ऐंग्लो-इण्डियन तरुणी की ओर देखकर इशारा किया। वह आगे बढ़ आई।

उसका परिचय कराते हुए मिसेज़ सहाय ने कहा, 'ये हैं दुर्गा की इंग्लिश टीचर, मिस रूबी पैटर्सन। आप कॉन्वेन्ट में पढ़ाती हैं और दुर्गा ने अपनी शिक्षा में जो प्रवीणता प्राप्त की है उसका श्रेय इन्हींको है।'

'हाउ डू यू डू? (आप कैसी हैं?)', मन्त्री महोदय ने अंग्रेजी तहज़ीब के मुताबिक प्रश्न किया।

'हाउ डू यू डू?' मिस पैटर्सन ने कहा, जैसे कोयल बोल रही हो और मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया।

मिनिस्टर साहब ने भी उसकी आंखों से आंखें मिलाते हुए बड़े स्नेह से हाथ मिलाया। इस स्पर्श की मृदुता और भावोत्कटता अजीब थी। मिस पैटर्सन के गौर वर्ण चेहरे पर नीली-नीली आंखें उन्हें बहुत ही मोहक लगीं। मिस पैटर्सन के सारे व्यक्तित्व में एक प्रकार की ढिठाई थी, विचित्र-सी क्रीड़ा-वृत्ति थी और मन्त्री महोदय उसकी ओर देखते ही रहे। उसके हस्त-स्पर्श के कारण उनके शरीर में बिजली की-सी जो उर्मियां बह निकली थीं वे उनके शरीर को किंचित पुलकित किए हुए थीं। उस वातावरण में अधिक ठहरना उचित न जानकर मिनिस्टर साहब अन्य अतिथियों के पास आगे बढ़े।

कहना न होगा कि पार्टी एकदम सफल रही और जब रात्रि को वे अकेले रह गए तब रघुनाथ सहाय जी ने अपनी पत्नी से कहा :

'आज तुमने कमाल कर दिया डियर। मिनिस्टर साहब पर ऐसा जाल फेंका कि अब वे बाहर नहीं निकल सकते। तुम पुरुषों का स्वभाव तो खूब जानती हो। पर मन की बात कहूं तो तुम मिनिस्टर साहब से जिस तरह व्यवहार कर रही थीं उससे तो मुझे डाह होने लगा था। कम से कम तुम्हें वह फोटो तो नहीं खिंचवाना चाहिए था, जो पार्टी के अन्त में तुमने निकलवाया…'

'इसमें क्या बड़ी बात हो गई डार्लिंग।' तारामती देवी ने बड़े प्यार से कहा। 'मैं होस्टेस (मेज़बान) थी, और मिनिस्टर साहब चीफ गेस्ट (प्रधान अतिथि) थे,

ग्रौर वेबी का था बर्थ-डे। इसलिए हमने तीनों का एक फोटो खिचवा लिया तो इसमें क्या एतराज़ हो गया ? तुम देखना तो, इसका आगे चलकर कितना फायदा होगा।'

'पर उससे मालूम पड़ता है कि जैसे मेरी कोई हस्ती ही नहीं है।'—उन्होंने शिकायतभरे स्वर में कहा।

'तुम्हारी हस्ती कैसे नहीं है, माई स्वीट डार्लिंग (मेरे प्रियतम) ! तुम तो मेरे दिल के राजा हो यह तो तमाम दुनिया जानती है। तुम्हारे प्रेम के बिना मैं भला एक क्षण भी जी सकती हूं ?'

ग्रौर फिर मिसेज़ सहाय ने अपने प्रेम का जो इजहार किया उसमें उनके पति महाशय सारी ईर्ष्या ग्रौर सारी शिकायत भूल गए। वे जानती थीं कि इस तरह की ईर्ष्या ग्रौर इस तरह की शिकायत तो ज़िंदगी में पचीसों बार हुई है। पर उसकी परवाह यदि की जाती तो क्या सहाय साहब की आज जो तरक्की हुई है वह हो पाती ? इस कठोर सत्य को जितना वह जानती थी उतना उनके पति भी जानते थे। इसलिए वे शांत भाव से अपनी कर्तृत्ववान पत्नी का प्रश्रय पाकर घोर निद्रा में सो गए, जैसा कि वे हमेशा ही करते आए थे।

७

प्रदेश के मुख्यमन्त्री पण्डित पूरणचन्द्र जोशी कुशल राजनीतिज्ञ तो थे ही, सत्तात्मक राजनीति की अखाड़ेबाज़ी के सिद्धहस्त पहलवान भी थे, ग्रौर साथ ही साथ विधायक वृत्ति के व्यक्ति भी थे। नई-नई संस्थाग्रों के निर्माण करने में उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। फिर वे शिक्षण संस्थाएं हों, समाज-सेवा की संस्थाएं हों, महिलाग्रों की हों, या साहित्य तथा अन्य कला विषयक संस्थाएं हों। इसमें लोक-संग्रह होता है, ग्रौर समाज में सत्प्रवृत्तियों का प्रचार होता है। उनका यह कई दिनों का स्वप्न था कि इस प्रदेश में एक राष्ट्रीय वृत्ति का जोरदार समाचार-पत्र रहे जिसकी धाक प्रदेश के सार्वजनिक जीवन पर तो रहे ही, पर जो उनके मन्त्रिमण्डल का कट्टर समर्थक हो। प्रजातन्त्र में समाचारपत्र का महत्व सर्वोपरि

है। जनमत को बनाने-बिगाड़ने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहता है। ऐसे समाचार-पत्र के संस्थापक के रूप में दुनिया उन्हें जाने यह उनकी हविस थी। इस स्वप्न के पीछे उन्होंने काफी रुपया बर्बाद किया था। जेल जाने के पहले उन्होंने इस क्षेत्र में काफी प्रयोग किए थे पर वे सब असफल रहे क्योंकि समाचारपत्र के दैनिक संचालन के लिए उन्हें कोई योग्य और कुशल व्यक्ति नहीं मिलता था। यह सब काम उनका भांजा देखता था, पर वह साधारण हाई स्कूल तक ही पढ़ा था, और उसका ज्ञान और अनुभव बहुत सीमित था। वह उनका विश्वासपात्र ज़रूर था, और यही उसका सबसे बड़ा गुण था। उन्हें पूरा भरोसा था कि वह बड़े से बड़े गोप्य को सुरक्षित रख सकता है, और किसी संस्था के संचालक में यह आवश्यक गुण है। पर केवल उसीसे तो काम चलने वाला नहीं है। दैनिक समाचारपत्र के संचालन के लिए तो इससे कहीं अधिक सर्वदर्शी और व्यापक प्रतिभा की आवश्यकता है। इसलिए जोशी जी की मन ही मन धारणा हो गई कि उनके भांजे के हाथ में यदि अखबार रहा तो वह किसी कदर टुटरूं-टूं चलता तो रहेगा, पर मुख्यमन्त्री के व्यक्तित्व के अनुकूल प्रतिष्ठा नहीं पा सकेगा। इसलिए उन्होंने एक दिन अपने भांजे को बुलाकर कहा :

'गिरधारी, यह अखबार का धन्धा तुम छोड़ दो। इसमें तुम्हें कुछ पड़ता नहीं। साढ़े तीन सौ में अपने बाल-बच्चों का पेट कैसे पालोगे? और फिर आगे चलकर लड़कियों के शादी-ब्याह तो हैं ही।'

गिरधारी को तनख्वाह के अलावा अखबार के लाभ में से दस प्रतिशत हिस्सा भी मिलने वाला था, पर चूंकि अब तक लाभ हुआ ही नहीं था तो उसका यह हिस्सा केवल कागज़ पर लिखा धरा था।

गिरधारी को कुछ अच्छा लगा और कुछ बुरा। अच्छा इसलिए कि मामाजी उसके भविष्य की इतनी चिन्ता करते हैं और बुरा इसलिए कि अखबार हाथ से चला जाने का डर है। अखबार के धन्धे में आर्थिक दृष्टि से कोई फायदा भले ही न हो लेकिन जो सामाजिक प्रतिष्ठा है वह तो किसी लखपति की प्रतिष्ठा से भी कहीं अधिक है। और खासकर जब वह मुख्य मन्त्री का अखबार हो।

'तब फिर मैं क्या करूं? पहले कागज़ की एजेन्सी थी। वह आपने छुड़ा दी। आप जेल गए तो मैंने जंगल का ठेका ले लिया और किसी कदर अपना काम चलाता रहा। फिर आपके मन में अखबार चलाने की इच्छा हुई तो वह छुड़वाकर

आपने मुझे यहां बुला लिया। आप जेल चले गए और जमानत न दे सकने के कारण अखबार बन्द हो गया तो मेरे घर में तो फाके पड़ने लगे। अब आप फिर मुख्य मन्त्री बन गए तो मैंने सोचा कि अब तो कम से कम चैन से कटेगी, तो आप कहते हैं कि यह धन्धा छोड़ दो। फिर मैं करूं तो क्या करूं ? या जिन्दगी भर फुटबाल की तरह यहां से वहां ठोकरें खाता ही फिरता रहूं···' गिरधारी ने कुड़-मुड़ाकर कहा।

गिरधारी पर जोशी जी का प्यार था, और जो बात वह कह रहा था उसमें तथ्य का अभाव भी तो नहीं था इसलिए वे थोड़े सहम गए। ज़रा नरम आवाज से बोले :

'नहीं, मेरा भांजा ठोकरें खाता क्यों फिरेगा ? आखिर मैं यहां किसलिए बैठा हूं ? मैं तुम्हें किसी और अच्छे रोज़गार में लगा दूंगा। तुम चाहो तो खदानों का काम कर लो, या कोई मोटर-सर्विस चला लो, या फिर वापस जंगल के ठेके पर चले जाओ। अपनी दुनिया अलग-अलग बसा लेना। स्वतंत्र हो जाओगे, अपना मकान बना लोगे, बाल-बच्चों के भविष्य की और अपने बुढ़ापे की चिन्ता नहीं रहेगी। ठीक से ध्यान देकर अपना रोज़गार चलाओगे तो मालामाल हो जाओगे। कोई तकलीफ होगी तो मैं तो हूं ही।' जोशी जी ने ढाढ़स दिया।

गिरधारी की आंखों के सामने उसका यह नया भविष्य चौंध गया। खदानों के मालिक, गिरधारी मोटर-सर्विस के मैनेजिंग डायरेक्टर, इमारती लकड़ी के ठेकेदार, स्वतंत्र बंगला, मोटर, धन और वैभव की जगमगाहट। भीतर ही भीतर ललचा गया पर ऊपर से रुआंसा होकर बोला :

'इस अखबार के लिए मैंने अपना खून दिया है। जब आप जेल में थे तब मैंने आधी तनख्वाह पर भूखा रहकर इसे चलाने की कोशिश की है। और उन सेवाओं का आज यह प्रसाद मिला।'

जोशी जी समझ गए कि बात अब गले तो उतर गई है पर मान-मनुहार पर आ गई है। मनुष्य स्वभाव को खूब जानते थे। बोले :

'नहीं, मैं कोई जबर्दस्ती थोड़े ही करता हूं ? तुम समझते हो कि यहीं अच्छे हो तो बने रहो। मैं तो तुम्हारे ही भले की बात कर रहा था।'

गिरधारी हड़बड़ा उठा। एक ही क्षण में मोटर बंगले का धन-वैभव शेख-चिल्ली के साम्राज्य की तरह काफूर होने को देख रहा है। फौरन बोला :

'मैंने कब आपकी इच्छा के खिलाफ काम किया है? पिताजी के मरने के बाद तो आप ही ने मेरा पालन-पोषण किया। आपकी अवज्ञा कैसे कर सकता हूं? आप जो कहते हैं, मुझे मंजूर है।'

मनुष्य-स्वभाव भी बड़ा विचित्र है। जो उसके हाथ में रहता है उसकी उसे कद्र नहीं होती। और जो हाथ से चला जाता है उसके लिए बड़ा आकर्षण रहता है। जो है उससे संतोष नहीं होता, जो नहीं है उसकी हाय-हाय में मन तरसता रहता है। अपना सुख कोई नहीं गुनता, दूसरे का सब गुनते हैं। दूसरे का दुख कोई नहीं देखता, अपना दुख सब देखते हैं। और इसी चक्र में जीवन की शांति नष्ट हो जाती है, और एक शाश्वत अतृप्ति, एक चिर असंतोष मन में घर कर लेता है। वही सारे असुख का कारण बन जाता है। जो मन की शांति और संतोष पा लेता है वही असल में जीता है, वही जीवन-संग्राम का विजेता है। फिर उसके पास बंगला, मोटर या धन-सम्पदा हो या न हो। और यह मन की शांति न रही तो सारे सुख-वैभव के बाद भी वह आदमी एक शापित व्यक्ति की तरह संतप्त है, सुख-हीन है। जीवन का समस्त धर्म, आत्मज्ञान, और नीतिशास्त्र इसी एकमात्र हेतु के लिए, मन की शान्ति की कुंजी खोज निकालने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वह जिसे मिल गई वही आत्मज्ञानी है, वही साधक है।

गिरधारी को जोशी जी की सलाह मानने के सिवा गति नहीं थी, इसलिए उसने वह मान तो ली पर उसके मन में एक गांठ बंध गई। मुख्य मन्त्री के दैनिक समाचारपत्र की मैनेजरी में जो शान और इज़्ज़त थी वह इमारती लकड़ी के ठेकेदार को कैसे नसीब होगी? मुख्य मन्त्री से हज़ार लोगों के काम पड़ते हैं—नौकरी की तलाश, तरक्की-तबादला, स्कूल-कॉलिज की भर्तियां, संस्थाओं के अनुदान, रोज़-गार-धन्धों में सरकार का आश्रय। इन कामों की कोई गिनती नहीं। और इन कामों में किसीको कोई ज़रिया न मिलता तो वह पहले गिरधारी को ही टटोलता। गिरधारी की शक्ति इन्हीं तरह के कामों में ज्यादा खर्च होती, अखबार की मैनेजरी में कम। और जब वह किसी बड़े सरकारी अधिकारी की तरक्की या तबादला करा देने के बाद उसके घर जाता तो उसकी कितनी आवभगत होती, कितनी खातिरदारी! मानो साक्षात् मुख्य मंत्री ही पधारे हों। वह अधिकारी और उसका सारा का सारा परिवार गिरधारी बाबू को सर-आंखों लिए नाचता फिरता। मैट्रिक की परीक्षा में तीन बार बैठकर उसे लात मारकर बाहर निकल आने वाले

गिरधारी के लिए इतना मान-सम्मान मिलना कोई छोटी बात थी ? उसके स्कूल के सड़ियल मास्टरों ने उसकी इज़्ज़त नहीं की तो क्या हुआ, आज ये बड़े-बड़े अधिकारी, राजनीतिज्ञ, प्रतिष्ठित नागरिक तो कर रहे हैं !

पर जोशी जी ने पांच मिनट के भीतर ही उसकी यह सारी शान-शौकत खतम कर दी । उसको नये जीवन में ज्यादा आराम मिलेगा, रेडियो, रेफ्रिजरेटर रहेगा, पत्नी और लड़कियों के शरीर पर सोने के आभूषण रहेंगे, बच्चों के वदन पर सिल्क और नायलॉन के कपड़े रहेंगे । पर यह मान-प्रतिष्ठा नहीं रहेगी ।

और इसी मान-प्रतिष्ठा की वंचितता से उसके हृदय में एक गांठ बंध गई । लेकिन क्या करता ? इस समय तो कोई उपाय था ही नहीं । उसकी सारी उछल-कूद ही मामाजी के वल पर थी । उनको नाराज़ करे तो वह तो कहीं का नहीं रहेगा । यह वह भली भांति जानता था । व्यवहार-कुशल था, अपना भला-बुरा खूब समझता था, इसलिए वह जानता था कि केवल अपनी योग्यता के वल पर ही यदि दुनिया में खड़ा होना हो तो साइकिल सुधारने की दुकान को छोड़कर और कोई रोजगार नहीं कर सकेगा । पर मामाजी के कारण तो वह खदान-मालिक, मोटर-सर्विस का मालिक, जंगल ठेकों का मालिक बन सकता है। इसपर पानी फेरने से बढ़कर कोई मूर्खता नहीं होगी, यह वह जानता था । और गिरधारी मूर्ख नहीं था। हवा के रुख को पहचानता था, सो उसने ऊपरी मन से ही क्यों न सही, चलती बयार के सामने अपना सिर झुका दिया ।

गिरधारी को विदा करते ही जोशी जी ने धनंजय को टेलीफोन किया और वताया कि वे उसके घर गीता जी से मिलने आना चाहते हैं ।

जोशी जी और धनंजय जेल के साथी थे । जेल में आदमी की जो पहचान होती है वह बाहर नहीं हो पाती । वहां तो चौवीसों घण्टों का साथ रहता है । इतना तो पति-पत्नी भी साथ नहीं रहते क्योंकि पति को वाहर रोजी कमाने के लिए जाना पड़ता है । पर जेल में न घर है, न वाहर है, और न रोजी कमाने का सवाल है । मानव का अंतरंग और वहिरंग दोनों ही साफ-साफ दिखाई देने लगते हैं । मानव-स्वभाव की अच्छाई और बुराई दोनों ही वहां नहीं छिपती है । जो स्वाभाविक रंग है वही उभरकर सामने आ जाता है । राजनीतिक जीवन की क्षुद्रताएं, मनुष्य का स्वार्थ, आदर्शों का उथलापन, चरित्र की कमज़ोरियां यह सब वहां निखरकर सामने आ जाता है। धनंजय का जेलयात्रा का यह पहला ही मौका था। और

उसकी मियाद तीन-साढ़े तीन साल तक लम्बी हो गई। उसमें तो उसे न जाने राजनीतिक कैदियों के कितने भांति-भांति के रागरंग देखने को मिले। कई वार तो ऐसा लगा कि इनसे वह दूर रहता तो बड़ा अच्छा होता। कम से कम उसकी श्रद्धा तो वनी रहती। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं, पर पास से देखो तो पोल ही दिखाई देती है।

फिर भी, वे घर-वार छोड़कर आए हैं, अपने रोजगार-पेशे को खतरे में डालकर जेल में सड़ रहे हैं, यह छोटी वात नहीं है। प्रियजनों से विरह है, खाने-कमाने का जरिया ठप है, घर में वीमारी-मृत्यु का चक्र चलता ही रहता है, उत्सव-समारोह उदास हो जाते हैं, शादी-ब्याह आदि मंगल-कार्य टलते जाते हैं, घर का मालिक वापस आ जाए तभी वे संपन्न हो सकेंगे। यह न्यूनता, यह अकुलाहट, जिन्होंने भोगी नहीं है वे उसकी व्यथा नहीं जानते। वाद में कोई मन्त्री वन गया, विधानसभा का सदस्य वन गया या और कोई पद पा गया इसलिए उसके कारावास का कष्ट या महत्व कम नहीं हो जाता। जव कष्ट भोगा था तव कल्पना भी नहीं होगी कि उसका कोई मुआवजा भी मिलेगा। सन् वयालीस की क्रान्ति की जेल तो थी भी भयंकर। कव छूटेंगे इसका कोई भरोसा नहीं, क्योंकि रिहाई लड़ाई के साथ लगी हुई है। विश्व महायुद्ध जव खतम होगा तभी तो उसमें विघ्न उपस्थित करने वाले लोग छोड़े जा सकेंगे। इसके पहले उम्मीद करना भी वेकार है।

धनंजय का प्रत्यक्ष राजनीति से कोई सम्वन्ध नहीं था, इसलिए वह किसी भी दलवन्दी में शामिल नहीं था। वह तो पत्रकार था, और राजनीति से उसका सम्वन्ध केवल अप्रत्यक्ष था। पत्रकार के नाते सभी दल के लोग उसकी मित्रता और सद्भावना पाने को इच्छुक थे। और स्वभाव से वह छिद्रान्वेषी नहीं था, दूसरे के दुर्गुणों की वजाय सद्गुणों की ओर देखने का प्रयत्न करता था, इसलिए वह सर्वप्रिय था।

जोशी जी उसकी प्रखर देशभक्ति और निर्भीकता से बड़े खुश थे। वे स्वयं सच्ची राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थे, और निर्भीक तो थे ही। दोनों ही समानशील थे, हालांकि उन दोनों में एक पीढ़ी का अन्तर था। धनंजय जोशी जी का आदर एक बुजुर्ग के नाते करता था। और जोशी जी उसे एक होनहार युवक के रूप में देखते थे। और जव उन्हें पता चला कि उसकी गिरफ्तारी के वाद उसकी पत्नी गीता साप्ताहिक चला रही है तो उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ। 'आप लोग बहुत वहादुर हैं। आप ही जैसे लोग हमारे संग्राम में हैं इसीलिए हमें स्वतंत्रता-प्राप्ति की

आशा है···' उन्होंने एक बार सच्चे अन्तःकरण से कहा था।

पर एक विशेष कारण और था, जिसने जोशी जी और धनंजय को और भी निकट ला दिया। जोशी जी उम्र में सबसे बड़े थे, और बाकी सब राजनीतिक बंदी उनसे छोटे थे। और इधर जेल में उनका स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया था। एकाध ऑपरेशन भी हुआ। वे अपने स्वास्थ्य को सम्हालकर बाहर निकल भी सकेंगे या नहीं इसका शक था। ऐसी अवस्था में सब राजबंदी उन्हें टाला करते थे। कुछ तो इसलिए टालते थे कि बूढ़ा अलग दल का नेता था, जिसके नेतृत्व को हथियाने के लिए वे प्रयत्नशील थे। और बाकी इस ख्याल से टालते थे कि अब इस बूढ़े की खुशामद में क्या धरा है क्योंकि यह जिंदा बचकर बाहर निकलेगा या नहीं इसका क्या विश्वास ? और निकला भी तो उसका स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ होगा कि वह राजनीतिक जीवन की झंझा और कोलाहल को बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। उगते हुए सूरज को सब प्रणाम करते हैं, डूबते हुए से पीठ फेर लेते हैं। वही बात जोशी जी के बारे में भी हुई।

केवल धनंजय ही ऐसा व्यक्ति था जो इन कारणों से बिलकुल अछूता था। एक बुजुर्ग के नाते वह उनकी इज्जत करता था, उनके त्याग और निडरता के लिए उसे आदर था, इसलिए वह उनकी ओर से कभी उदासीन और बेपरवाह नहीं हुआ। राजनीतिक राग-द्वेष से वह मुक्त था। इसलिए केवल मानवीय गुणों और प्रेरणाओं के कारण ही वह जोशी जी का जितना भी बने साथ देता था।

एक बार जोशी जी बहुत बीमार पड़ गए। उन्हें हटाकर एक अलग सेल में रख दिया गया। डॉक्टर तो बराबर सेवा-परिचर्या करते ही रहते थे क्योंकि जोशी जी के प्रान्तव्यापी प्रभाव और व्यक्तित्व के कारण उस ओर से उपेक्षा करना कठिन था पर रुग्णावस्था में केवल परिचर्या और औषधियों से ही आराम नहीं होता, ममता की भी आवश्यकता होती है। और इसका अभाव तो वही पूरा कर सकता है जिसके हृदय में निःस्वार्थ ममता हो।

उस रात धनंजय रातभर उनके बिस्तर के पास बैठा जागता रहा। बुखार तेज़ था, १०५ डिग्री से थोड़ा अधिक था, और उन्हें बहुत परेशानी थी। बदन में बड़ा दर्द था। धनंजय ने उनके हाथ-पैर दबा दिए। एक बार कै हो उठी, तो बर्तन लेकर सामने कर दिया और उसे फेंक आया। दो-एक बार बेड-पैन लगाने की ज़रूरत पड़ी तो वह भी किया। मदद के लिए डॉक्टर ने एक सफैया (जुर्म में सज़ायाफ्ता

लम्बी मियादवाला कैदी जो राजनीतिक बन्दियों की सेवा-टहल के लिए तैनात किया जाता है) रख छोड़ा था, पर वह बेचारा थर्मामीटर लगाना या बेड़-पैन देना क्या जाने ? सुबह बुखार कम हो गया और फिर धीरे-धीरे उन्हें आराम होने लगा। घटना केवल एक रात की थी पर जोशी जी का हृदय धनंजय के लिए कृतज्ञता और स्नेह से भर गया।

धनंजय की समझ में भी नहीं आया कि इस छोटी-सी स्वाभाविक मानवीय भावना के लिए इतनी कृतज्ञता मानने की क्या जरूरत थी ? यह तो किसी भी साधारण मानव का साधारण कर्तव्य है।

पर मानव आजकल गिरावट के मार्ग पर है, और साधारण सतह से नीचे जा रहा है। इसलिए उसका साधारण कर्तव्य भी असाधारण लगने लगता है।

समय ने पलटा खाया, जोशी जी न केवल स्वस्थ होकर जेल से बाहर ही छूटे बल्कि राजनीतिक काल-चक्र के परिवर्तन के कारण स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रादेशिक मन्त्रिमण्डल के नेता भी हो गए। और यह अद्भुत गौरव पाने के बाद उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो गया। सत्ता के कारण सब समय मन में एक अपूर्व उल्लास और उत्साह बना रहता। फूलमालाएं, जयजयकार, तालियां, फोटो, समाचारपत्रों की पब्लिसिटी, सब कुछ मानो उनके लिए एक ज़बर्दस्त टॉनिक का काम करते थे। दिन-ब-दिन बूढ़े होने की बजाय जवान होने लगे। उनके राजनीतिक प्रतिस्पर्धी यह सब देखकर दंग रह गए, निराश भी हो गए।

धनंजय खुश था क्योंकि उसकी धारणा थी कि प्रान्त का नेतृत्व सम्हालने के लिए उनके जैसा व्यक्तित्व नहीं है। यदि देश का पुनर्निर्माण करना है, उसके स्वर्णिम स्वप्नों को साकार करना है, उसे धन-धान्य-समृद्धि से पूरित करना है तो उसके लिए जोशी जी जैसे कर्मठ और कुशल नेता के नेतृत्व की आवश्यकता है। उनके हाथ मज़बूत करना यही अब प्रत्येक राष्ट्रवादी व्यक्ति का कर्तव्य है। और जो बात कर्तव्य के रूप में सामने आती है उसमें तन-मन-धन अर्पण करना यह धनंजय का स्वभाव है। और वह जोशी-मन्त्रिमण्डल का सबसे बड़ा समर्थक बन गया। लेने-देने की कोई बात नहीं थी। वही नीति ठीक है ऐसी उसकी अन्तःकरण की श्रद्धा थी। और श्रद्धा को कर्तृत्व में परिवर्तित करना ही पुरुषार्थ का लक्षण है।

इसलिए जब उस दिन सुबह जोशी जी का टेलीफोन आया कि वे गीता जी

से मिलने के लिए उसके घर आना चाहते हैं तो वह तुरन्त बोल उठा :

'आइए, हार्दिक स्वागत है।'

८

जोशी जी ने देखा, 'युगान्तर' कार्यालय क्या था, एक टीन के कच्चे किन्तु लम्बे झोंपडे में प्रेस था। बस उसीसे लगे एक कमरे में उसका दफ्तर था। वहीं सम्पादक की मेज़-कुर्सी थी, और उसीपर उसका टेलीफोन लगा था। उसीके अहाते में बीस कदम पर एक मकान के हिस्से के तीन कमरे उसने अपने रहने के लिए ले लिए थे। वहीं उसका निवासस्थान था, और वहीं उसकी तथा गीता की अलमस्त दुनिया बसती थी। घर दफ्तर लगे हुए थे इसलिए धनंजय बाबू के काम के घण्टों की कोई गिनती नहीं थी। खुद ही लेख लिखता, संपादन करता, प्रूफ पढ़ता, छपाई की देख-रेख करता, डिस्पैच तथा विज्ञापन विभाग पर नज़र रखता। गीता तो इन सब कामों में उसे मदद करती ही, इसके अलावा एक-दो कर्मचारी और थे। पांच-छः कम्पोज़ीटर थे, एक मशीनमैन था, और एक ऐसा ही ऊपरी मदद करने वाला सहायक था, जो मशीन में स्याही लगाना, प्रूफ निकालना, टाइप लाना आदि मुतफर्रकात काम कर देता था। एक चपरासी भी था जो डाक लाने-ले जाने का काम करता था। पर सब बड़ी निष्ठा से काम करते थे। धनंजय को वे बाबूजी कहते और गीता को माताजी। उन दोनों को परिश्रम करते देखते तो फिर किसीको आलस करने की इच्छा नहीं होती। जो कर्मचारी बीमारी या अन्य किसी करण से गैरहाज़िर रहता, उसकी जगह धनंजय स्वयं जा बैठता। कभी 'युगान्तर' की प्रतियां फोल्डिंग करने बैठ जाता, तो कभी उनपर डाक के टिकट चिपकाता। एकाध बार उसे मशीन पर भी बैठना पड़ता। उसका और उसके कर्मचारियों का सम्बन्ध पारिवारिक जैसा था। कहीं डांट-फटकार की या मालिक-मज़दूर के रिश्ते की बात ही नहीं थी।

जोशी जी ने पहले तो युगान्तर प्रेस पर एक नज़र दौड़ाई। देखने को विशेष कुछ नहीं था क्योंकि 'युगान्तर' की प्रतिभा और शक्ति उसकी पुरानी मशीन या

कच्चे झोंपड़े या कर्मचारियों की परिमित संख्या पर निर्भर नहीं थी। जब उसका अंक प्रकाशित होता तो शहर में दिन भर बड़ी सनसनी बनी रहती। धनंजय की लेखनी में जादू था, उसकी भाषा में प्रसाद गुण था, तेजस्विता थी, लोक-मांगल्य की भावना थी, निर्भीकता थी, स्पष्टवादिता थी। प्रान्त के बड़े-बड़े दैनिकों का जो प्रभाव नहीं था वह इस छोटे-से साप्ताहिक का था, क्योंकि यह पत्र एक खरे साधक एवं तपस्वी पत्रकार की आत्मा का आविष्कार था। बाकी थे धन्धे-पानी वाले समाचारपत्र, जिनमें व्यावसायिकता की दृष्टि और मात्रा ही प्रमुख रहा करती थीं। वे राष्ट्रीय नीति के समर्थक तो कहलाते थे; पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद यह नीति नफे में पड़ती थी इसलिए उसके समर्थक थे, आंतरिक निष्ठा उनमें नहीं थी। जब अंग्रेजों से मुठभेड़ का सवाल था तब जमानत के डर से और प्रेस में ताला पड़ जाने की आशंका से इनकी राष्ट्रीय नीति में शक्कर की मधुरता और अर्ज़ीनबीसों की नम्रता आ जाती थी। उनके सम्पादक अंग्रेज गवर्नरों की कोठियों में तथा सरकारी अफसरों के बंगलों में भी जाते और उनके आधुनिक ढंग से सजे हुए ड्राइंग रूम के एकान्त में अपनी विधायक और वैधानिक प्रवृत्तियों का इज़हार करते। और बाहर निकलकर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं से मिलकर उन्हें भी बताने की कोशिश करते कि विदेशी सरकार की क्रूर दमननीति के वातावरण में उनकी जैसी तार की कसरत करने वाला और कोई नहीं। उनके अखबार यदि बन्द हो जाएं तो राष्ट्रीय आन्दोलनों को कितना भयंकर धक्का लगेगा? फिर तो नौकरशाही बेताब हो जाएगी। उसे लगाम लगाने का काम हमीं करते हैं। शायद अकबर के लीडरों की तरह वे हुक्कामों के साथ डिनर भी खाते थे, और देश की हालत पर रंज भी करते थे पर उनका रंज ज़रा आराम के साथ होता था।

'युगान्तर' की यह बात नहीं थी। उसकी कलम को बांधने की अंग्रेज़ी हुकूमत ने हज़ार कोशिशें कीं। पहले तो ज़ंजीर से बांधने की, और जब वह असफल रही तो रेशम की डोर से। पर 'युगान्तर' की कलम नहीं बंधी, उसकी वाणी क्षीण नहीं हुई। प्रान्त के पत्र-जगत् में 'युगान्तर' सूर्य की तरह चमकता था। बाकी सब नक्षत्र थे, जो सूर्य के प्रकाश के सामने फीके और निस्तेज दीखने लगते थे। इसी कारण वे भीतर ही भीतर 'युगान्तर' और उसके कर्मनिष्ठ सम्पादक धनंजय से ईर्ष्या ही करते। मूर्खों की मण्डली में मूर्खहीनता ही सबसे बड़ा दूषण है, और भ्रष्टाचार से भरे हुए वातावरण में चरित्रसंपन्न व्यक्ति का चरित्र ही सबसे बड़ा

दुश्मनी का कारण होता है।

प्रेस देखने के बाद जोशी जी धनंजय के मकान में आए। वही तीन कमरे-वाला पुराना मकान, जहां गीता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। गीता शुभ्र खद्दर की साड़ी पहने हुए थी। अपने सादे और सौम्य व्यक्तित्व के कारण वह चारों तरफ एक सात्विक प्रकाश-सा फैलाती थी, जिसके प्रभाव से बचना मुश्किल था। गीता ने सस्मित जोशी जी को नम्रतापूर्वक झुककर नमस्कार किया जैसा कि संभ्रान्त परिवार की नारियां अपने बुजुर्गों को किया करती हैं। जोशी जी समझ गए कि इस अभिवादन का उनके मुख्य मन्त्रित्व से रत्तीभर भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो भारत की अतिथि-सत्कार की तथा गुरुजनों के प्रति स्वाभाविक आदर व्यक्त करने की परम्परा का निर्वाह मात्र था।

जोशी जी सहृदय व्यक्ति थे, गीता के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। धनंजय की सारी शक्ति और कर्तृत्व का स्रोत कहां है यह उनकी समझ में तत्काल आ गया। वे बुद्धिमान तो थे ही, आदमी के स्वभाव को पढ़ने-समझने में अक्सर गलती नहीं करते थे।

'आपसे मिलने की कई दिनों से इच्छा थी, पर मौका ही नहीं आया। आज सहसा प्रेरणा हो गई इसलिए तुरन्त चला आया। रात की गाड़ी से लम्बे दौरे पर जाना है, आज न आ पाता तो कई दिनों के लिए बात टल जाती।' जोशी जी ने चटाई पर बैठते हुए कहा। उसीके एक कोने पर धनंजय बैठ गया, और गीता सामने ज़रा दूर ज़मीन पर ही बैठ गई।

ज़मीन बहुत साफ थी, सारा कमरा ही स्वच्छ था, एक मन्दिर की तरह पवित्र लग रहा था। कमरे में कोई फर्नीचर नहीं था। एक कोने में छोटी-सी डेस्क रखी थी जिसपर ज़मीन पर बैठकर ही लिखना होता था। पुस्तकों की दो अलमारियां थीं, जिनपर पत्रकारिता की तथा राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र आदि की पुस्तकें, शब्दकोष, महापुरुषों के जीवन-चरित्र आदि ग्रन्थ रखे हुए थे। दीवाल पर गांधीजी का चित्र था, एक कृष्ण भगवान का था, एक स्वामी रामकृष्ण का था, और एक किसी औलिया संत महाराज का था जिसे जोशी जी पहचान न सके। वे पूछना तो चाहते थे कि वह चित्र किसका है, पर संकोचवश पूछ न सके। पर एक ही क्षण में वे समझ गए कि यह दुनिया ही कुछ न्यारी है।

'धनंजय बाबू की गैरहाजिरी में आपने जिस कौशल और निडरता से 'युगान्तर' चलाया उसके लिए मैं आपका अभिनन्दन करने आया हूं। आप जैसी स्त्रियों से ही तो हमारा समाज समृद्धि और गौरव प्राप्त करता है,' जोशी जी ने सच्चे मन से कहा।

'यह तो आपकी बड़ी दया है। जो कुछ भी मैं कर सकी उसका श्रेय तो आप जैसे गुरुजनों के आशीर्वाद को ही है।' गीता ने शालीनता से उत्तर दिया।

'अरे हमारे आशीर्वाद से क्या होता-जाता है? वह तो आपका अपना कर्तृत्व है। आशीर्वाद तो हम सबको देते हैं, पर वह सबको कहां फलता है?' जोशी जी बोले।

अपनी प्रशंसा से गीता सकुचा गई और बोली, 'मैं अभी चाय बनाकर लाती हूं।'

एकान्त पाकर जोशी जी ने कहा, 'धनंजय बाबू, 'युगान्तर' ने तो राष्ट्रीय-संग्राम में बहुत बड़ा योग दिया है। उसकी सेवाएं चिरस्मरणीय हैं, इसमें कोई शक नहीं। पर क्या आप यह नहीं मानते कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के इस नवीन पर्व में उसका कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक होना ज़रूरी है?'

'सो कैसे?' धनंजय ने पूछा।

'हमें स्वतन्त्रता मिल गई। हमारा इतिहास बदल गया। अब हमें अपने देश को दृढ़ और मजबूत बनाना है। इसमें हमें ऐसी परम्पराएं और मान्यताएं स्थिर करनी हैं जिससे आनेवाली पीढ़ियों का सही-सही मार्ग-दर्शन हो सके और उन्हें ऐसी बनी-बनाई चीज़ मिल जाए, जिसका वे सरलता से उपयोग कर सकें।'

'सो तो ठीक है, पर इसमें मैं क्या कर सकता हूं?'

'आप बहुत कुछ कर सकते हैं। आप एक विधायक-वृत्ति के राष्ट्रसेवी व्यक्ति हैं, निर्माण के कार्यों में आपकी स्वाभाविक दिलचस्पी है। आज शासन अपने हाथ में है। प्रजा का बहुमत हमें प्राप्त है। हमारा मन्त्रिमंडल स्थिर और मज़बूत है। मणिलालभाई का जो दल है वह गत चुनावों में परास्त हो गया है। देश के नेताओं ने प्रान्त की बागडोर मेरे ही हाथों सौंपी है। इस प्रान्त का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल हो सकता है। यह प्रदेश धन-धान्य से पूर्ण है, नदियों और वन-प्रदेशों से समृद्ध है। यहां खनिज द्रव्य भी विपुल मात्रा में हैं। इसका औद्योगीकरण बहुत बड़े पैमाने पर हो सकता है। यहां की जनता शान्तिप्रिय और खुशहाल है। हम सब

मिलकर काम करें तो इस प्रदेश को हम आदर्श बना सकते हैं। भारत का नन्दनवन बना सकते हैं।'

धनंजय पर जोशी जी की बातों का अच्छा प्रभाव पड़ा। स्वयं आदर्शवादी तो था ही, आदर्शों की बातों से उसे हमेशा बड़ी दिलचस्पी रहती थी।

'बात तो आप ठीक कहते हैं। आप यह सब अवश्य करें, मेरी इससे पूरी सहानुभूति है।' उसने कहा।

'केवल सहानुभूति से क्या होगा ? वह काम तो अकेले का है नहीं। आपको इसमें सक्रिय सहायता करनी होगी।' जोशी जी बोले।

'आपका मतलब ?'

'मैं चाहता हूं कि आप असेम्बली में आ जाएं और उसके बाद पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी के रूप में मेरी मदद करें। थोड़े दिनों के बाद ही मन्त्रिमण्डल में भी आने का मौका मिल सकता है।'

'मन्त्रिमण्डल में ?' धनंजय ने चौंककर पूछा, जैसे उसके सामने कोई भूत आकर कूद पड़ा हो। 'मैं भला मन्त्रिमण्डल में आकर क्या करूंगा ? वह तो मेरा काम नहीं है।'

'क्यों ? आपकी लेखनी मज़बूत है, वाणी में ज़ोर है, आपमें वक्तृत्व-शक्ति है, व्यक्तित्व है, त्याग है, राष्ट्रीयता की भावना है, योग्यता है। मन्त्रिमण्डल के लायक आप नहीं होंगे तो कौन होगा ?'

'नहीं जोशी जी, वह मेरा 'स्वधर्म' नहीं है।' धनंजय ने घबड़ाकर अपना पल्ला झाड़ते हुए कहा, 'जिस गांव हमें नहीं जाना है उसका नाम भी नहीं पूछते। भला मन्त्रिपद से मुझे क्या लेना-देना ?'

जोशी जी धनंजय की प्रतिक्रिया देखकर हक्का-बक्का रह गए। उसके स्वभाव को थोड़ा-बहुत जानते तो थे, क्योंकि जेल में ज़रा नज़दीक से उसे देखा था। वे सच्चे दिल से उसकी सद्भावना का ऋण चुकाना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि उसके परिवार ने बड़े कष्ट भोगे हैं, इसलिए उसे कुछ अच्छे दिन देखने को मिलें। पर उन्होंने यह कल्पना नहीं की थी कि वह इस तरह अपना दामन झटककर अलग जा खड़ा होगा। वे तत्काल हार मानने वाले व्यक्ति नहीं थे। बोले :

'आप यदि नहीं आना चाहते तो फिर गीता जी को मुझे दे दीजिए। हमें

महिला कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, उन्हें हमें मौका देना चाहिए, ऐसी 'हाई कमान्ड' की हिदायतें भी हैं। मैं उन्हें ही असेम्बली में ले सकता हूं।'

'सो आप स्वयं गीता से ही पूछ लीजिए। वह आ रही है।'

गीता हाथ में चाय-नाश्ते की तश्तरियों का ट्रे लेकर भीतर से आ रही थी।

'क्या बात है?' अपना नाम सुनकर उसने पूछा।

'बताइए जोशी जी। आप स्वयं गीता से कहिए।' धनंजय बोला।

'नहीं, आप ही बता दीजिए' जोशीजी बोले। 'मैंने तो आपको अपना विचार सुना ही दिया है।'

'गीता, जोशी जी तुम्हें असेम्बली में भेजना चाहते हैं। जाओगी?'

'असेम्बली में?' गीता अकचकाकर बोली, जैसे उसे कोई कुमार्ग पर जाने की बात कह रहा हो। उसका पैर लड़खड़ा गया और कप-तश्तरियां मुश्किल से गिरते-गिरते बचीं। उसने ट्रे नीचे रखकर कहा:

'यह बात कैसे उठ खड़ी हुई?'

धनंजय ने कहा, 'मैंने इनकार कर दिया, क्योंकि वह मेरा 'स्वधर्म' नहीं है, इसलिए इन्होंने तुम्हारे बारे में पूछा। मैंने कहा, उसीसे पूछ लीजिए, उसकी इच्छा हो तो मैं उसे नहीं रोकूंगा।'

'वह आपका 'स्वधर्म' नहीं है और मेरा है? वाह, यह भी खूब रही। ना बाबा। असेम्बली-वसेम्बली से मुझे बहुत डर लगता है। मैं उस झमेले में नहीं पड़ना चाहती। मैं जैसी हूं वैसी ही मजे में हूं। मैं भला असेम्बली जाकर क्या करूंगी?' गीता ने ज़ोर देकर कहा।

जोशी जी समझ गए कि ये लोग कुछ दूसरे ही किस्म के हैं। उनके प्रति आदर तो हुआ पर मन ही मन कुछ झुंझलाहट भी हुई कि उनका एक भी प्रस्ताव नहीं माना गया। आखिर बातचीत को कहीं न कहीं तो टिकाना ही था। बोले:

'खैर, जिस कार्य में आपकी रुचि नहीं है उसे करने का मैं आग्रह नहीं करता। पर पत्रकारिता तो आपका स्वधर्म है न? उसी क्षेत्र में आप काम क्यों नहीं करते?'

'सो तो कर ही रहा हूं।' धनंजय ने जवाब दिया।

'एक साप्ताहिक के ज़रिए प्रान्त के पुनर्निर्माण का इतना व्यापक कार्य भला हो सकेगा, आप ही बताइए?'—जोशी जी ने पूछा।

'एक साप्ताहिक का प्रभाव तो सीमित है' धनंजय को मानना पड़ा। 'वह तो केवल वैचारिक क्षेत्र में असर डाल सकता है, पर प्रत्यक्ष दैनिक जीवन में, शासन पर प्रभाव डालकर उसे कार्यप्रवण करने में तथा राजनीति में मनोवांछित परिवर्तन लाने के लिए तो दैनिक पत्र ही कारगर हो सकता है।'

'यही मेरी भी धारणा है। जब स्वतंत्रता-संग्राम की बात थी तब वैचारिक क्रान्ति का महत्व था, पर अब चूंकि विधायक कार्य करने का प्रसंग है इसलिए हमें अपनी पत्रकारिता के माध्यम का भी परिवर्तन करना होगा। प्रजातान्त्रिक युग में तो दैनिक अखबार ही सबसे बड़ी शक्ति है, कार्य करने का सबसे प्रभावशाली साधन है। वह सुयोग्य हाथों में होना आवश्यक है, क्या आप ऐसा नहीं मानते ?' जोशी जी ने पूछा।

'मानता क्यों नहीं हूं।'

'तो फिर आपसे मैं यही कहता हूं कि आप मेरा दैनिक अखबार सम्भाल लीजिए।' जोशी जी ने धनंजय की बात काटते हुए कहा। वे जानते थे कि इस आदमी से यदि काम लेना है तो लोभ या धाक से नहीं लिया जा सकता, इसपर जिम्मेदारी डालकर, इसकी सज्जनता को स्पर्श करके ही लिया जा सकता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो प्रेम के ही गुलाम होते हैं, और प्रेम के सौजन्य में बिना भाव के बिक जाते हैं, पर उनसे लाठी से बात करो तो लाठी पहले टूटेगी, उनका सिर बाद में अकड़ गए कि ऐसे अकड़ते हैं जैसे अड़ियल टट्टू। एक इंच आगे बढ़ने को तैयार नहीं। चुचकारो-पुचकारो तभी काम चलेगा। पदों का प्रलोभन और चांदी की जगमगाहट भी इनके लिए काम नहीं करती। ये तो बस अपने आदर्शों के कायल हैं, अपने स्वप्नों की अलमस्त दुनिया में ही खोए रहते हैं। पर कर्तृत्व में सबसे श्रेष्ठ यही लोग होते हैं।

जोशी जी धनंजय की कार्यशक्ति जानते थे। उसकी टक्कर का पत्रकार आज इस प्रदेश में एक नहीं था। उसे साधन मिल जाएं तो वह एक जबर्दस्त दैनिक पत्र का संचालन बड़ी कुशलता और सफलता के साथ कर सकेगा। जिसमें प्रान्त का कल्याण तो होगा ही पर विशेषतः जोशी जी के राजनीतिक दल को भी ताकत मिलेगी। उनका राजनीतिक प्रतिस्पर्धी मणिलालभाई, धनिकों की जमात का प्रतिनिधि है, पूंजी उसके हाथ में सरिता के पानी की तरह बहती है, और वह समूचे प्रदेश में अपने अखबारों का जाल फैला रहा है। अगले चुनाव में उसीसे ठनकर

रहेगी। चुनाव अभी दूर थे, पर दूरदर्शिता यही सिखाती थी कि अभी से उसकी तैयारियां करने में ही बुद्धिमानी है। और फिर जोशी जी यह चाहते थे कि कम से कम धनंजय तो मणिलालभाई के प्रभाव की परिधि से बाहर रहे। अतः वे उसे अपने पक्ष में ही करना चाहते थे। धनंजय को यदि मालूम पड़ता कि जोशी जी के मन में यह आशंका काम कर रही है तो वह बड़ा अपमानित अनुभव करता। मणिलालभाई के राजनीतिक हथकण्डे उसे सख्त नापसन्द थे। उससे तो राजनीति गन्दी होने का और भ्रष्टाचार के तत्वों को प्रोत्साहन मिलने का खतरा था। धनंजय तो उस गली में हर्गिज नहीं जाता। पर जोशी जी को भरोसा हो तब न ? राजनीतिक पुरुष तो हमेशा शक-शुबहे पर चलता है और हर संभावना के खिलाफ पहले से ही पेशबन्दी करना चाहता है। इसलिए वे धनंजय के हाथ में अपने पक्ष की पत्रकारिता सौंपने के लिए उत्सुक थे। गिरधारी तो बिल्कुल निकम्मा निकला। यदि धनंजय बागडोर सम्हाल ले तो काम बन सकता है।

लेकिन धनंजय नौकर बनकर काम नहीं कर सकता, यह वे समझते थे। रुपये-पैसे के या पद के प्रलोभन से भी नहीं। हां, प्रान्त के नव निर्माण के आदर्श के नाम पर उसपर ज़िम्मेदारी डाल दो तो फिर वह सम्हाल लेगा। उसके जैसे व्यक्तियों से बात करने की भाषा ध्येयों और स्वप्नों की है, नोन-तेल-लकड़ी की दुनियादारी वाली भाषा नहीं।

धनंजय कुछ सोच में पड़ गया। एकदम उसने नाहीं नहीं की, इसीमें जोशी जी ने आशा की बड़ी किरण देखी। बात वहीं छोड़कर वे जाने को उठ खड़े हुए। बोले :

'जल्दी कोई नहीं है, आप विचार कर लीजिए। मेरा अखबार गिरधारी चलाता था। पर उससे वह नहीं सम्हला। मैं खुद संपादक की कुर्सी पर बैठूं तो उसे जमा लूं। पर मेरे कंधों पर तो अब यह शासन की बागडोर आ पड़ी है। मुझे तो अब आपको छोड़कर और कोई आदमी इसे सम्हालने के लिए नहीं दिखता। आप यदि तैयार नहीं होंगे तो फिर मैं अपना अखबार बन्द कर दूंगा। अच्छा नमस्कार। कभी गीता जी को भी मेरे यहां लाइएगा।'

धनंजय और गीता उन्हें मोटर तक पहुंचाने गए तो देखा कि काफी भीड़ जम गई है। आसपास मुहल्ले के लोग अपने दरवाजे-खिड़कियों से झांक-झांककर देख रहे हैं कि आखिर मुख्य मन्त्री जी ने धनंजय के यहां एक घण्टा बैठकर घुल-

घुलकर क्या बातें कीं ?

जोशी जी को पहुंचाकर जब वह वापस अपने कमरे में घुस रहा था तो उसके मकान-मालिक बाज़ू के कमरे से निकले और उन्होंने बड़े प्रेम से उससे 'नमस्ते' की। उनके व्यवहार की यह आकस्मिक आत्मीयता देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ।

मकान-मालिक से उसका एक हल्का-सा वाद-विवाद चल रहा था। लड़ाई के बाद मकानों के किराये बढ़ गए थे। वह फटियल अखबार वाला किरायेदार मकान छोड़ दे तो दूसरे किरायेदार से मैं डबल रकम वसूल कर लूं। इसको नोटिस भी देते नहीं बनता है, क्योंकि देर-सबेर वह किराया तो दे ही देता है। तारीख भले ही चूक जाए, महीना नहीं चूकता। और फिर वह लोगों में इतना प्रिय है कि उसके खिलाफ कोई कार्रवाई करूं तो सारी सहानुभूति उसके साथ, और सारी बदनामी मेरे हाथ लगेगी। कुछ कर नहीं पाता था, इसीलिए भीतर ही भीतर बड़ा कुड़मुड़ाया करता। पर आज जब उसने स्वयं अपनी आंखों से मुख्य मन्त्री को धनंजय और उसकी पत्नी से इतनी आत्मीयता से मिलते-जुलते देखा तो उसकी निगाह ही बदल गई। क्या धनंजय को इसका श्रेय नहीं है कि उसीके कारण मुख्य-मन्त्री के चरण उसके मकान को लगे ? असल में मुख्य मन्त्री के चरणों की उसे उतनी परवाह नहीं थी जितनी इस बात की आशा थी कि धनंजय के कारण कम से कम उसके चरण तो मुख्य मन्त्री के बंगले में घुस सकेंगे। अब तो धनंजय का मकान-मालिक बनना भी एक गुण हो गया और उसके कारण यदि मुख्य मन्त्री के पास तक पहुंच हो गई तो संभव है उसकी ज़मीन का मामला, जो नज़ूल में अटका पड़ा है, वह भी सुलझ जाए। इसलिए उसने अपने आप ही धनंजय से कहा :

'किराये की कोई जल्दी नहीं है। इस महीने न हुआ तो अगले में दे दीजिए। कहीं भागा थोड़े ही जाता है ?'

'आपकी बड़ी कृपा है। ज़रूरत पड़ी तो आपको अवश्य कष्ट दूंगा।' उसने उसका मन रखने को कह दिया।

९

धनंजय निश्चय नहीं कर सका कि क्या करना उचित है। बोला, 'बताओ गीता, जोशी जी को क्या जवाब दूं ?'

'तुम्हारा मन जो कहता है वही करो। ऐसे मामले में तो हमें अन्तःकरण की आवाज ही सुननी चाहिए। जिसमें तुम्हें सुख है, उसीमें मुझे भी है।'

'ऐसी दुविधा पहले कभी नहीं आई थी,' धनंजय बोला, 'पहले तो अंग्रेज़ों से सीधी लड़ाई थी, सोचने-विचारने की कोई बात ही नहीं थी। खूब लड़ो, और जो दुष्परिणाम होंगे उन्हें भोगने की तैयारी रखो—बस इतना ही करना था। और दुष्परिणाम क्या थे—यही गरीबी, संघर्ष, दुश्चिन्ता। सिर्फ एक बार मेरी हिम्मत टूटने पर आई थी जब दो हज़ार को ज़मानत मांगी गई थी और यह अन्देशा पैदा हो गया था कि पत्र बन्द हो जाएगा। उस समय तो पत्र के बन्द होने की संभावना का दुःख ही मरणतुल्य था। पर तुम्हारी हिम्मत ने मुझे भी हिम्मत दे दी और हम बच गए। हां, जेल में भी तुम्हारे स्वास्थ्य की चिन्ता ने मुझे डांवाडोल कर दिया था। पर इस सबमें ईश्वर का सहारा ही हमारा सबसे बड़ा बल रहा और ईश्वर ने तो हमें कभी नहीं बिसारा। पर आज की यह समस्या इन सबसे कठिन है। कष्ट और त्याग में विवेक ठिकाने पर रखना आसान है, पर आराम और सुख-वैभव के ज़माने में उसकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन है। इसलिए मन ही मन घबड़ाता हूं।'

'घबड़ाहट किस बात से होती है ?' गीता ने प्रश्न को अधिक उघाड़ने की नीयत से पूछा। वह घबड़ाई तो न थी, पर हां कुछ बुद्धि-भ्रम में अवश्य पड़ गई थी।

'घबड़ाहट इसी बात की कि यह सब कैसे निभेगी।'

'यानी दैनिक पत्र-संचालन की योजना कैसे सफल होगी, यह ?'

'नहीं, उसका तो डर नहीं है। पत्र-संचालन के प्रति मुझे आत्मविश्वास है। निष्ठा और परिश्रम से किया जानेवाला कोई भी कार्य असफल नहीं होता। पर जोशी जी के साथ कैसे निभेगी ? वे राजनीतिक पुरुष हैं, पर राजनीति परिवर्तन-शील है। आज हमारे सम्बन्ध बड़े मीठे हैं, बहुत अच्छे हैं। जेल में तो हम लोग इतने निकट थे जैसे पिता और पुत्र। पर जब राजनीति बदल जाएगी, और भिन्न-

भिन्न तनाव पैदा होने लगेंगे तब क्या होगा ? उस समय यदि संघर्ष उठ खड़ा हुआ तो हम लोग कहां रहेंगे ?'

'यह तो भविष्य की बात है। आज तो तुम्हें यही सोचना है कि इस योजना में शामिल होना है या नहीं। इसमें तुम्हारे स्वधर्म में बाधा तो नहीं पड़ती। आज तुमपर कोई जबर्दस्ती नहीं कर सकता। पर एक बार तुम उसमें शामिल हो गए तो फिर उससे मुंह मोड़ना नहीं होगा, फिर चाहे जो हो जाए।'

'स्वधर्म के विपरीत तो वह जाती नहीं। पत्रकारिता मेरा स्वधर्म है। उसीके माध्यम से जन-जागृति करना और इस देश की सभ्यता और विचारधारा का प्रचार करना जिससे भारत का नव निर्माण शुद्ध और मज़बूत पाये पर हो; वह उज्ज्वल और गौरवयुक्त परम्पराओं का निर्माण करे ताकि आने वाली पीढ़ियों को हम एक अच्छी विरासत छोड़ जाएं—यह सब तो हमें करना ही है। और उसके लिए दैनिक पत्र एक साप्ताहिक पत्र की अपेक्षा अधिक कारगर साधन हो सकता है, ऐसा मैं मानता हूं।'

'तुम अपने स्वतंत्र विचार निर्भीकता के साथ रख सकोगे ? जोशी जी से बात-चीत हुई थी ?'

'हां, वे तो कहते हैं कि तुम उसके सर्वेसर्वा रहोगे। तुम्हें जो करना है करो।' धनंजय ने कहा।

'वे इसलिए कहते हैं कि शर्तें और बंधन तुम कभी स्वीकार नहीं करोगे। बात वहीं टूट जाएगी। और बात वे टूटने नहीं देना चाहते, इसलिए आज तो तुम जो कहोगे वही होगा। बाद में परिस्थितियां बदलें और आदमी भी बदल जाएं तो कह नहीं सकती। हम भी छाती ठोककर दम नहीं भर सकते कि हर परिस्थिति में हम भी अपना सत्व इसी प्रकार टिकाए रहेंगे।'

'सो तो ठीक कहती हो गीता। कल रात जोशी जी से देर तक बातें होती रहीं। बोले, मैं अपना अखबार तुम्हें सौंप देता हूं। फिर तुम जो योजना बनाना चाहो, बना लो।'

''पूंजी का क्या होगा ?' मैंने पूछा।

''एक कम्पनी बना लो। शेयर्स बिकवाने का ज़िम्मा मेरा।' वे बोले।

''दैनिक सचालन की ज़िम्मेदारी किसकी ?' मैंने पूछा।

''आपकी, और किसकी ? मैं मन्त्रिपद सम्हालूंगा या समाचारपत्र के काम से

माथापच्ची करूंगा ?'

"आपका इसमें क्या 'इंटरेस्ट' रहेगा ?'

"जो आप कहें।'

"पत्र की नीति क्या रहेगी ?'

"आप तो उसके संपादक रहेंगे। नीति वही रहेगी जो संपादक निर्धारित करेगा।'

"जहां तक पत्र का सम्बन्ध है, आपका-मेरा अधिकार और दर्जा बराबरी का रहेगा। आपका दर्जा अधिक रहे और मेरा न्यून रहे तो मैं काम नहीं कर सकूंगा क्योंकि वह नौकरी जैसी बात हो जाएगी, और स्वभाव से मैं नौकरी कर नहीं सकता। मेरा दर्जा अधिक रहे यह आपके प्रति अन्याय होगा। इसीलिए जहां तक समाचारपत्र का सम्बन्ध है, हम बराबरी से रहें, यही उचित है।'

"मैंने तो आपसे पहले ही कहा न कि आप जो व्यवस्था चाहें वह करने के लिए मैं तैयार हूं। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि एक मज़बूत और प्रभावशाली पत्र यहां स्थापित हो जिससे प्रान्त की ठोस सेवा हो, और नवनिर्माण का कार्य उत्साह और प्रगति से चले।"

सारी चर्चा की रिपोर्ट जब धनंजय ने गीता को दी तब ऐसा नहीं मालूम हुआ कि कहीं भी कोई खोट हो या खटकनेवाली बात हो। फिर इस प्रस्ताव से असहयोग किया जाए तो किस कारण से ? अगर वह इनकार कर दे तो वह कर्तृत्वहीन और निकम्मा है, ज़िम्मेदारियों से मुंह मोड़ता है, ऐसा साबित न होगा ?

जोशी जी कुशल व्यवहारवादी थे। इतना तो वह जानते थे कि धनंजय को राजनीति से कौड़ी भर दिलचस्पी नहीं है। इसलिए वह कभी किसी राजनीतिक क्षेत्र या दल में प्रवेश कर उनके मार्ग में अड़चन नहीं डालेगा। पत्रकारिता का क्षेत्र वे स्वयं सम्हाल नहीं सकते, और अच्छे जमे हुए समाचारपत्र के समर्थन के बिना उनकी राजनीति टिक नहीं सकेगी। इसलिए यह क्षेत्र धनंजय के हाथ में सौंप देने में ही बुद्धिमानी है।

और फिर धनंजय का स्वभाव कुछ ऐसा है कि शर्तें डालो या लिखा-पढ़ी करो तो वह कुछ माननेवाला नहीं है, और बात तब टूट जाएगी। इसमें फायदा किसीका नहीं, और नुकसान प्रान्त का है। इसलिए पूरी ढील छोड़ देने में ही सार है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो निर्बन्ध होकर ही अधिक उपयोगी हो सकते हैं। बन्धन लगाया

कि वे गए। धनंजय ऐसी ही श्रेणी का आदमी था। बात उसीपर छोड़ दीजिए, वह कभी अन्याय या अनौचित्य की बात नहीं करेगा।

फिर भी गीता ने कहा कि और दो दिन सोच लो, तभी जवाब दो।

पर दो दिन सोचने के बाद भी ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी, जिसके कारण प्रस्ताव अस्वीकृत करने की बात हो। जोशी जी ने जिस तरह बात उठाई थी, उसमें मीन-मेख निकालने की गुंजाइश ही नहीं थी।

गिरधारी ने मामाजी से कई बार कहा कि कुछ लिखा-पढ़ी तो कर लीजिए, अपने हितों की कानूनी रक्षा तो कर लीजिए—आखिर यह समाचारपत्र का पौधा मैंने अपने खून से सींचा है, वह एकदम पराये हाथ में सौंप देने के पहले फिर एक बार तो सोच लीजिए, पर जोशी जी ने एक न मानी। उलटे उसे फटकार लगा दी कि तुम्हें धन्धे-पानी से लगा दिया है तो तुम उसीकी बात सोचो। मेरे राजनीतिक कामों में दखल देने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं।

गिरधारी इस घुड़की से तिलमिला उठा और उसके मन की गांठ और भी पक्की हो गई।

दो दिन के बाद ही धनंजय ने जोशी जी के बंगले पर जाकर स्वीकृति दे दी और उस क्षण से घटनाएं इतनी तेज़ी से बदलने लगीं कि स्वयं धनंजय आश्चर्य-चकित हो गया।

एक कम्पनी बनी, लाखों की पूंजी इकट्ठी हो गई। जोशी जी के निजी समाचार-पत्र का सौदा हुआ और उसी पूंजी में से उनकी रकम अदा की गई। धनंजय के 'युगान्तर' का भी सौदा हुआ क्योंकि उसका भी उस नई कम्पनी में विलीनीकरण हुआ। उसके उसे पन्द्रह हजार मिले और दोनों के मिले-जुले प्रयत्नों से दैनिक निकला उसका नाम भी 'युगान्तर' ही रखा गया।

धनंजय को रुपये मिले तो सीधे उठकर गया और एक दिवंगत शहीद नेता के स्मारक-फण्ड में वह रकम दे आया जिसकी प्रेरणा से उसने 'युगान्तर' की स्थापना की थी।

उसके मित्रों ने पूछा, 'ऐसा क्यों किया?'

'युगान्तर साप्ताहिक तो जनता की सहायता से ही चलता था। उसका घाटा भरने में, ज़मानत देने में तथा आग लगने के बाद उसका जो पुनर्निर्माण हुआ उसमें तो जनता का पैसा ही दान के रूप में मिला था। उसे अपने पास रखने का मुझे

क्या हक है ? वह जनता-जनार्दन की वस्तु है, उसीके पास जानी चाहिए :

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्।'

'पर इसमें तुम्हारा भी तो पैसा लगा था, गीता भाभी का भी।'

'वह भी जनार्दन को ही समर्पित है। जो अर्घ्य देश की सेवा में चढ़ गया उसे वापस लेना कौन-सा धर्म है ?'

धनंजय के मित्र निरुत्तर हो गए। स्मारक-फण्ड के लोगों ने कहा, ऐसा उज्ज्वल चरित्र हमने अब तक नहीं देखा। शहर में जनता की मदद से कई अखबार निकले पर उनके बारे में इतनी स्वच्छ और निर्मल वृत्ति और कहीं देखने को नहीं मिली। चूंकि उसके दान की रकम सबसे बड़ी थी, फण्ड के संयोजकों ने कहा कि हमारे ट्रस्टी बन जाइए। उसने दूर से ही नमस्कार करके क्षमा मांग ली कि जो काम निःस्वार्थ और अहेतुक है उसके मुआवज़े में कोई पद ले लेना बड़ा दोष है। इसलिए वह पद तो आप ही सम्हालिए।

१०

युगान्तर प्रकाशन कंपनी का कारोबार देखते-देखते विराट रूप में चल निकला। धनंजय का जीवन-क्रम ही बदल गया। बड़ा कार्यालय, उसका बड़ा भवन, बड़ी ज़िम्मेदारियां, उसके लम्बे दौरे, नया कर्मचारी वर्ग, नई एजेंसियां, सभी कुछ नूतन। युगान्तर की काया ही पलट गई। छपाई-सफाई और संपादन में आमूल परिवर्तन हो गया। नई मशीनें, अच्छा कागज, उत्तम स्याही, फिर प्रदेश में यदि युगान्तर का स्टैण्डर्ड सब समाचारपत्रों में सर्वश्रेष्ठ माना गया तो उसमें क्या आश्चर्य ?

हालांकि मुख्य मन्त्री जोशी जी तथा धनंजय के बीच में कोई लिखा-पढ़ी या दस्तावेज़ नहीं था, फिर भी सारा प्रदेश जान गया कि यह अखबार मुख्य मन्त्री का ही है। सर्वोच्च सत्ता और सर्वोच्च पत्रकारिता के कारण प्रदेश में एक ज़बर्दस्त शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसके सामने और सब आवाजें क्षीण पड़ गईं। शासकीय दल का हौसला खूब बढ़ा। प्रदेश के दूसरे समाचारपत्रों में ईर्ष्या की भावना फैल

गई। धनंजय के त्याग और कष्ट सहन के कारण उसके व्यक्तित्व की जो धाक थी वह ज़रा कम होने लगी। सत्ता के सम्पर्क का प्रभाव ही कुछ ऐसा विचित्र पड़ता है। उसने जिस किसीको स्पर्श कर दिया उसका तेज क्षीण हुआ ही समझिए। तेज सत्वगुणी वस्तु है, सत्ता रजोगुणी। दोनों के सम्पर्क में सत्व का ह्रास अवश्यम्भावी है।

धनंजय के ध्यान में यह परिवर्तन आए बिना कैसे रह सकता था ? पर वह जानता था कि इसका कोई उपाय नहीं है। आखिर सत्ता के स्थान पर भी किसी न किसीको बैठना तो पड़ेगा ही। सत्ता तेजोभंग करती है इसलिए उससे मुंह मोड़ना पलायनवादिता है, कायरता है, कर्तव्य-विमुखता है। हां, सत्ता का उपयोग स्वार्थ के लिए नहीं होना चाहिए, जनता के परमार्थ के लिए होना चाहिए, सत्ता उपयोग के लिए नहीं है, सेवा के लिए है, और उसकी रक्षा एक थाती की तरह करनी चाहिए, निजी मिल्कियत की तरह नहीं, इतना विवेक प्रत्येक सत्ताधारी को पालना चाहिए, ऐसी उसकी धारणा थी। इस जाग्रत कर्तव्यबुद्धि से जो लोग सत्ता का संचालन करते हैं वही सच्चे राष्ट्र के सेवक हैं, और इस प्रकार के सत्ता-संचालन में यदि तेज की हानि या लोकप्रियता की क्षति होती है तब भी वह स्वागत योग्य है, ऐसी उसकी स्पष्ट राय थी। यह हानि या क्षति उठाना भी राष्ट्रीय सेवा और कर्तव्य है, ठीक उसी तरह जैसे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले अंग्रेज़ी सरकार से लड़ना था। परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार कर्तव्यों के मूल्य और स्वरूप भी बदलते हैं।

अपने विचारों की इस स्पष्ट पृष्ठभूमि पर धनंजय अपने नवीन कर्तव्य-क्षेत्र में संपूर्ण शक्ति और उत्साह के साथ कूद पड़ा। उसकी कार्यक्षमता अद्भुत थी। सालभर के भीतर ही समूचे प्रान्त में उसका दबदबा फैल गया। मुख्य मन्त्री का वह दाहिना हाथ था यह ख्याल आमतौर पर लोगों के दिल में घर कर गया। कई लोग तो उसे जोशी जी का 'कॉन्शस कीपर (सचेत प्रहरी) मानते थे। वह उनका सबसे घनिष्ठ मित्र, सबसे बड़ा सलाहकार, उनकी नीति का सबसे प्रमुख विवेचक माना जाता था। और उसकी सलाह के बिना जोशी जी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ते थे।

नतीजा यह हुआ कि जिस किसीको मुख्य मन्त्री से कोई काम कराना होता वह अब धनंजय का दरवाज़ा खटखटाने लगा। काम उसी प्रकार के होते जो अक्सर

शासकों के साथ होते हैं—नौकरी का तबादला, तरक्कियां, कॉलेजों में प्रवेश, सरकारी ठेके, राजनीतिक पदों की नियुक्तियां, कई तरह की सिफारिशें इत्यादि। धनंजय इन सब कामों में कोई खास दिलचस्पी न लेता बशर्ते कोई साफ अन्याय की बात अपनी नज़र में न आ जाए। बाकी लोगों को वह सीधा मुख्य मन्त्री के बंगले का दरवाज़ा बतला देता।

लेकिन काम करनेवाले लोग भी अजहद होशियार होते हैं। वे किसी न किसी तरह अपने 'केस' को इस कौशल के साथ प्रस्तुत करते थे कि मानो सचमुच वे दूध के धुले हों और उनपर घोर अन्याय हुआ है। इस अन्याय के कारण जाति-भेद, धर्म-भेद, ईर्ष्या, रिश्तेदारी आदि-आदि बताए जाते। धनंजय पहले-पहले तो उनपर विश्वास करता था पर बाद में शीघ्र ही समझ गया, कि इनमें से अधिकांश लोग बदमाश हैं, जिनके पास कोरे स्वार्थ को छोड़कर और कोई भावना नहीं। अंग्रेज़ी शासन में जो भारतीयों से कट्टर द्वेष करने वाले थे वे भी अब राष्ट्रीयता की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश करने लगे। लोगों ने अपनी पगड़ियां बदल लीं, पोशाकें बदल लीं, सफेद टोपी और खादी को प्रश्रय दिया, जैसे बने वैसे अपनी पैंठ की कोशिश की।

पर धनंजय के ध्यान में इन लोगों का तौर-तरीका पूरा-पूरा समझ में आ गया। किसीने उसके अग्रलेख की तारीफ की तो समझ लेता कि बाद में कोई न कोई काम की बात अवश्य निकलने वाली है। उसके पुराने रिश्तेदार जो पहले उसे फूटी आंखों नहीं देखते थे, अब अपना रिश्ता कायम करके उसके प्रति अपने गर्व और गौरव की गवाही देने लगे। कहते कि हम तो पहले ही से जानते थे कि वह बड़ा होनहार युवक है, एक न एक दिन नाम निकाले बगैर रहेगा नहीं। देखो, हमारी भविष्यवाणी कैसे सच निकली? कोई जोशी जी के गुणगान से बातचीत शुरू करता, तो कोई स्वयं धनंजय को सातवें आसमान में चढ़ाने की कोशिश करता। उसके नये-नये गुणों का आविष्कार होने लगा, उसकी प्रशंसा में नये-नये विशेषणों की रेलगाड़ियां तैयार होने लगीं। कुछ लोग तो पहले गीता जी को गांठने की कोशिश करते और उसके ज़रिये मुख्य मन्त्री तक अपना तीर साधने का स्वप्न देखते। उसके यहां मिलने वालों का तांता लगा रहता। दैनिक अखबार के सिल-सिले में तो मिलने-जुलने वाले आते ही—लेख या समाचार छपवाने, विज्ञापन देने या नई-नई एजेन्सियों की चर्चा करने, पर उसके अलावा अवांतर कामों के लिए

अधिक लोग आते जिनका प्रत्यक्ष पत्रकारिता से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

धनंजय को इन कामों में कोई उत्साह नहीं था। पर इनमें कुछ मामले जरूर ऐसे निकलते कि जिनमें सरासर धांधली और ज्यादती नज़र आती। ऐसे मामले लेकर वह मुख्य मन्त्री या अन्य मन्त्रियों के पास जरूर जाता, और उनकी सफलता के लिए जी-जान से कोशिश करता। जो शिकायतें उसके समाचारपत्र में प्रकाशनार्थ आतीं उनके निवारणार्थ भी वह भरसक कोशिश करता। उसकी दौड़-धूप खूब बढ़ गई थी।

पर केवल इतने ही से खैरियत नहीं थी। कई बार तो स्वयं जोशी जी के यहां से ही टेलीफोन आता या लेने के लिए मोटर आ जाती। यों 'युगान्तर' के लिए भी एक छोटी-सी मोटर ले ली गई थी। पर काम जरूरी पड़ जाता तो जोशी जी अपनी मोटर ही भेज देते। किसी महत्वपूर्ण सरकारी फाइल पर उसकी सलाह लेनी पड़ती, या किसी राजनीतिक नेता के विचारों को अप्रत्यक्ष रीति से टटोलने का काम आ पड़ता, या सरकार या जनता के बीच के किसी संघर्ष में जैसे शिक्षकों या मज़दूरों की हड़ताल आदि में, बीच-बचाव की बात आ जाती। कभी-कभी तो उसे मुख्य मन्त्री के लिए पॉलिसी स्टेटमेन्ट या नीति निर्धारित करने वाला भाषण भी लिखकर देना पड़ता। कुल मिलाकर उसके समय और शक्ति पर इतना तनाव पड़ने लगा और उसकी दौड़-धूप इतनी बढ़ गई कि खाना खाने की फुर्सत मिलना भी कठिन हो गया। चौबीस घण्टों में से सोलह से अठारह घण्टे वह घर से बाहर ही रहता। थका-मांदा घर आता तो कोई न कोई खाना खाने के लिए साथ रहता। और चर्चा वही राजनीति की, प्रान्त के नवनिर्माण की, नई-नई योजनाओं की।

गीता तो परेशान हो गई। उससे शांति से बैठकर बातचीत करने की भी उसे फुर्सत नहीं थी। जब देखो तब ऐसी भागदौड़ जैसे पागल कुत्ता ही पीछे लगा हो। एक दिन वह बोली :

'यह युगान्तर दैनिक क्या बन गया, आफत हो गई। मुख्य मन्त्री से दोस्ती क्या हो गई मेरी कम्बख्ती आ गई। न बैठकर सलाह-मशविरा करते हो, न हंसी-विनोद। ऐसा क्यों मानकर चलते हो कि सारे सूबे की ज़िम्मेदारी तुम्हारे ही कन्धों पर है ? शहर के अन्देशे में काजीजी को इतना दुबला होना ज़रूरी नहीं है। और फिर यह सब शक्ति जो खर्च हो रही है उसमें से कितनी ठिकाने से लगती है, और कितनी अकारथ जाती है, इसका भी कोई भरोसा नहीं। सुबह से शाम तक यह

जो उठा-पटक चलती है आखिर वह किस खातिर ?'

'क्या करूं गीता, मुख्य मन्त्री मुझपर इतना विश्वास करते हैं, इतनी ज़िम्मेदारी डालते हैं, कि मुझे उनका लिहाज़ करना ही होता है। और यह हमारे प्रजातन्त्र की प्रारंभिक अवस्था है। हमें नई और स्वस्थ परम्पराओं का निर्माण करना है। इसके लिए पहले-पहले तो परिश्रम करना ही होगा।' धनंजय ने जवाब दिया।

'पता नहीं इसमें से आवश्यक काम कितना है, और बेकार काम कितना। कहीं ऐसा तो नहीं है कि जोशी जी की यह धारणा बन गई हो कि उन्हें बोझ ढोने के लिए एक अच्छा गदहा मिल गया है, इसलिए उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। मैं तुम्हारी नीयत के बारे में कुछ नहीं कहती, क्योंकि तुम जो कुछ करते हो बड़ी निष्ठा और प्रामाणिकता से करते हो, यह मैं जानती हूं। पर इन राजनीतिज्ञ लोगों का कुछ ठिकाना नहीं होता। किसका कैसे उपयोग करेंगे कहा नहीं जा सकता।'

जिस रात्रि को गीता ने इस तरह टोका उस रात्रि को धनंजय को नींद नहीं आई। सचमुच उसकी ज़िन्दगी कितनी बदल गई है। पहले का शान्त और संतोषपूर्ण जीवन कहां और यह दिन-रात की भागदौड़ कहां? इतने आदमी डिप्टी कमिश्नर बन गए। इतने पुलिस-कप्तान हो गए। इतनों को नौकरियां मिलीं, अमुक आदमी को अन्याय से बचाया, दूसरे के ज़ुल्म की जांच करवाई, प्रान्तीय उद्योगों के विकास के कार्यक्रम में फलाने को कागज़ की मिल का परवाना दिलाया या कपड़े की मिल चालू करवाई, अमुक आदमी को असेम्बली का टिकट दिलाया, अमुक को मिनिस्ट्री में स्थान दिलवा दिया, अमुक साहित्यकार की सहायता करा दी, अमुक लेखक की पाण्डुलिपि के प्रकाशन के लिए सरकार से मदद दिलवाई इत्यादि-इत्यादि अनेक काम उसकी आंखों के सामने चित्रपट के दृश्यों की तरह घूमने लगे।

पर कुल मिलाकर इसका नतीजा क्या निकला? राष्ट्र-निर्माण की विशाल पृष्ठभूमि में, या जीवन के मूलभूत आदर्शों की दृष्टि से इनका क्या मूल्य है? हां, जिनका लाभ हुआ वे शायद अपना गुण गाते हों, या फिर संभव है कि वे भी कहते हों कि इसे कैसा बुद्धू बनाकर इसका उपयोग किया। जोशी जी के भाषण मैं नहीं लिखता तो और कोई लिख देता—उनका इतना बड़ा प्रकाशन विभाग जो पड़ा

है। फाइलों पर सलाह देने की जिम्मेदारी उसपर कैसे आती है? सचमुच वह कहां से कहां आकर फंस गया। क्या यह सब उसके स्वधर्म में आता है?

और इस चक्कर में वह इस तरह कूदा और इस तेजी के साथ इसमें उलझ गया कि सोचने-विचारने की भी फुर्सत नहीं मिली कि वह कहां जा रहा है। गीता इस नवीन प्रकार के जीवन से खुश नहीं है, यह वह जानता था, और यह बात उसे थोड़ी-बहुत खटकती भी थी। पर उसने यही सोचा कि गीता के साथ वह अधिक समय नहीं बिता पाता इसकी उसे शिकायत होना अत्यन्त स्वाभाविक है। कौन-सी पत्नी अपने पति से इस प्रकार का दुराव सहन कर सकती है? उसका असंतोष उसके प्रेम का निदर्शक है, और उसकी कर्तव्यपरायणता का द्योतक है।

पर गीता की बातचीत ने उसे ज़ोर से झकझोर दिया, मानो उसे सोते से जगाया हो या नशेबाज़ आदमी को उसके नशे में ललकारा हो। उसके सामने यह प्रश्न मुंह बाकर खड़ा हो गया कि वह अपने स्वधर्म से कहीं भटक तो नहीं गया है?

गीता उसके प्राण का अंश थी, कलेजे का टुकड़ा थी। उसकी बात को टालना उसके लिए असंभव था। उसे धोखा देना अपने आपको धोखा देना था। जान-बूझकर धोखा देने की बात तो स्वप्न में भी नहीं उठ सकती थी। पर यह आत्म-वंचना, जिसकी ओर उसने उंगली उठाई थी? वह कहीं अपने आपको झूठे और कृत्रिम आदर्शों के नाम पर भुलावा तो नहीं दे रहा है?

माना कि दुनिया शायद उसके कार्य के बारे में उसकी सफाई मान लेगी। दुनिया जिसे सिर पर चढ़ाती है उसे बाद में उतारकर सूली पर भी चढ़ा देती है। सत्ता से प्रभावित लोग उसकी सेवाओं की स्तुति करते, पर उसके विरोधी लोग, जो खासकर समाचारपत्रों के जगत् से सम्बन्ध रखते थे, ऐसा मानते थे। कि धनंजय सत्ता के हाथ बिक गया। वैसे विरोध का प्रत्यक्ष कारण कोई नहीं था क्योंकि धनंजय ने जाने-बूझे किसी एक भी व्यक्ति का अकल्याण नहीं किया था; पर मनुष्य का यह स्वभाव है कि एक आदमी यदि आगे बढ़ता है तो बाकी सब बिना किसी कारण उसकी टांग पकड़कर उसे पीछे खींचने का प्रयत्न करते हैं। उसका दोष? उसका दोष सिर्फ यही कि निकम्मों और फिसड्डियों की कतार छोड़कर वह आगे बढ़ रहा है। उस वर्ग में एक तो उसके प्रतिस्पर्धी दैनिक का संपादक था जिसके प्रभाव और

व्यवसाय पर दैनिक युगान्तर के कारण धक्का लगा था । और दूसरा था एक साप्ताहिक पत्र का संपादक छदामीलाल जो मुख्य मंत्री की खुशामद में अपना सारा करतब और कौशल खर्च करता था, फिर भी उनके विश्वास का पात्र नहीं बन पाया था। उसे शिकायत थी कि उसके साप्ताहिक 'जागरण' को ही मुख्य मंत्री ने क्यों नहीं अपनाया ? उन्होंने 'युगान्तर' के साथ गठबन्धन क्यों किया ?

छदामीलाल अंग्रेजी की पांच-सात क्लासें पढ़ा था पर हिन्दी अच्छी लिख लेता था। विशारद की परीक्षा में बैठा था पर फेल हो गया। जब परीक्षा-फल में उसका नाम नहीं निकला तो उसने कह दिया कि वह बैठा ही नहीं। उसके बाप का पान-बरेजे का व्योपार था, अच्छी कमाई थी। एक बार छदामीलाल ने 'सिगरेट पीने से नुकसान' इस विषय पर लेख लिखा और स्थानीय समाचारपत्र के रविवारीय संस्करण में छपाने के लिए ले गया। उस लेख के बारे में उसे बड़ा आत्म-विश्वास था क्योंकि वह उसके प्रत्यक्ष अनुभव की प्रेरणा से निकला था। बात असल में यह थी कि उसके मकान के ही पास गजाधर तमोली का पान-ठेला था जिसके साथ उसकी दोस्ती हो गई थी। उसका बाप जब पानों की टोकरियां लाने के लिए बरेजे पर जाता और पांच-पांच या सात-सात दिन बाहर रहता तो छदामी चोरी-छिपे गजाधर को सौ-दो सौ पान दे आया करता। छदामी पढ़-लिखकर बड़ा हो रहा है इसलिए बाप सोचता कि पुश्तैनी रोज़गार वह सीख लेगा तो पेट भरने के लिए किसीका मुंह नहीं ताकना पड़ेगा। इसलिए पानों की गिनती में वह छदामी की मदद लेता। छदामी की तथा बाप की गिनती में दो-चार सौ पानों का फर्क ज़रूर पड़ जाता पर हजारों का मामला था इसलिए बाप भी परवाह नहीं करता था। देखा-सुना छोड़ देता था। गजाधर तमोली की दुकान में उसी रात में उतने पान पहुंच जाते। बदले में वह छदामी को सिगरेट पिलाता और कभी होटल में चाय-पकौड़ी खाने के लिए या सिनेमा के लिए कुछ पैसे दे देता। उस समय छदामी की उम्र चौदह-पन्द्रह साल की थी। घर में खाना तो मिलता ही था, बाहर सिगरेट, पान, होटल और सिनेमा की जुगत लग जाती। छदामी को इससे अधिक और क्या चाहिए था ? बस, बादशाह बना घूमा फिरता और फिर स्कूल के लौंडों का सरदार भी तो था !

लेकिन हिन्दी से उसे प्रेम था इसलिए उसने बहुत-से उपन्यास पढ़ डाले। तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों से उसे विशेष प्रेम था। 'पेरिस की रातें', 'लन्दन

की सुन्दरियों के रहस्य' आदि पुस्तकों के तो उसने कितने पारायण किए इसकी सीमा नहीं। सिनेमा साप्ताहिकों से उसे विशेष दिलचस्पी थी। अभिनेत्रियों के चित्रों का उसने बड़ी मेहनत से अपना निजी एलबम बनाया था। और धीरे-धीरे वह काम-विज्ञान और दम्पति-रहस्य आदि शास्त्रों के अध्ययन की ओर बढ़ रहा था। इतनी पुस्तकों के पढ़ने के बाद उसकी भाषा में कुछ न कुछ निखार आ जाना स्वाभाविक था। सो उसके मन में लेखक बनने की महत्वाकांक्षा जाग्रत हो गई। उसने अपना पहला लेख बड़ी मेहनत से तैयार कर लिया, 'सिगरेट पीने से नुकसान।'

लेख लिखने में उसे पांच दिन लग गए और जब प्रेरणा कुण्ठित हो जाती तो उसे चलाने के लिए वह गजाधर की दुकान में जाकर एक सिगरेट पी आता। अपने अनुभव से उसने जान लिया कि सिगरेट पीने से क्या बुराई होती है, और वह मानता था कि इतने अनुभव के बाद उसे लेख लिखने का अधिकार प्राप्त हो गया है। उसके लिखने और छपाने में लोक-मंगल की जो भी भावना रही हो, सबसे बड़ी भावना तो यही थी कि किसी तरह उसका नाम अखबार में तो छप ही जाए। अखबार में नाम छपाने की कमज़ोरी मानव की, आज के युग की, सबसे बड़ी कम-ज़ोरी है—शायद नई खोजों का यही विषय रहेगा और इसके अनुसन्धान में लोगों को डॉक्टरेट भी मिलने लगेगी।

लेकिन वह कम्बख्त सम्पादक इतना बेमुरव्वत निकला कि उसने छदामी का लेख ही वापस कर दिया। वापस कर दिया उसका गुस्सा तो उसे था ही, पर उससे भी अधिक गुस्सा इस बात का था कि सम्पादक ने कम से कम उसके सोलह सिगरेट पिए और उससे दूने पान खाए, और बीसों चक्कर लगवाए। छदामी छटपटा उठा और बोला कि ये सम्पादक बेटे अपने आपको क्या समझते हैं, मैं खुद सम्पादक बनकर बताऊंगा! दुनिया की सभी क्रान्तियां व्यथा और अपमान में जन्म लेती हैं, उसी तरह इस सिगरेट वाले लेख न छपने की घटना ने 'जागरण' नाम के नये साप्ताहिक को जन्म दिया और देश को छदामीलाल के रूप में एक नया सम्पादक मिला। छदामी ने बाप की मदद से कहीं से एक पुरानी ट्रेडल मशीन उठा ली, कुछ टाइप और कागज़ का प्रबन्ध कर लिया, और देखते-देखते छदामी छदामी-लाल बन गया। बाप को बड़ा अभिमान हुआ। उसे भरोसा हो गया कि पुश्तैनी रोज़गार से भी बड़ा इज़्ज़तदार पेशा उसके बेटे ने अख्तियार किया है, और वह

कुल-वंश की मर्यादा में वृद्धि किए बिना रहेगा नहीं। गर्व से उसकी छाती फूल जाती थी।

इतने में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। गांधीजी ने अंग्रेज़ों से लड़ाई छेड़ दी। कुछ लोगों की तो इसमें तबाही हो गई पर और कई लोगों की बन आई। ऐसी बन आई कि मानो चांदी छत फाड़कर बरसने लगी। लड़ाई का सामान जुटाने में करोड़ों रुपया खर्च होता था। रुपयों की तो जैसे गंगा बह निकली। पर यह गंगा पतित-पावनी और पाप-विमोचिनी नहीं थी, शोणित की गंगा थी, जिसमें देशभक्तों का, आदर्शवादियों का, स्वप्नद्रष्टाओं का रक्त समाया हुआ था। इस गंगा में स्वार्थ को धर्म मानकर और चांदी को परमेश्वर मानकर जीवन की धन्यता मानने वालों का ही पर्वकाल था। इन महाभागों में 'जागरण' साप्ताहिक के सम्पादक बाबू छदामीलाल भी थे। केवल बाबू शब्द से पूरी प्रतिष्ठा नहीं मिलती है, इसलिए छदामीलाल ने कलकत्ते के किसी होमियोपैथिक कालेज से छः महीने में ही डाकखाने के ज़रिए एक सर्टिफिकेट प्राप्त कर लिया, जिसके बल पर अपने आपको डॉक्टर छदामीलाल कहलाने लगे। अब वाकई ज़रा प्रतिष्ठा आ गई।

गांधीजी के आन्दोलन के कारण अंग्रेज़ सरकार दोस्तों की तलाश में थी, दोस्तों में आदमियों की भी ज़रूरत थी, अखबारों की भी ज़रूरत थी, इसलिए डॉ० छदामीलाल तथा उनके साप्ताहिक पत्र 'जागरण' दोनों की ही इज़्ज़त होने लगी। सरकारी क्षेत्रों में डॉ० छदामीलाल का आना-जाना बढ़ गया। युद्ध के समाचारों तथा चित्रों को उनके समाचारपत्रों में प्रधानता मिलने लगी। कभी-कभी सन्तुलन कायम रखने के लिए गांधीजी के फोटो भी छप जाते, पर चूंकि गांधीजी जेल में थे, ऐसे मौके कम आते। चीफ सेक्रेटरी तथा डिप्टी कमिश्नरों के बंगलों पर उनके चक्कर कटने लगे, टेलीफोन मिल गया, एक टूटी-फूटी मोटर भी खरीद ली गई। उन दिनों लाइसेन्स परमिट की भरमार थी, जो उन्हें दिला देता, उसकी पांचों उंगलियां घी में और सिर कढ़ाई में टिक जाता। इस काम में डॉ० छदामीलाल सिद्धहस्त थे। फौजों को घी, गल्ला, कपड़ा आदि सप्लाई करने वाले व्यापारियों के साथ अपनी अन्नी-दुअन्नी की पाती रखकर वे उनके काम मिनटों में करा दिया करते थे। उन्हें ठेके दिलवाने में तथा माल पहुंचाने के बाद जल्दी से जल्दी बिल वसूल करने में उनकी मदद कारगर होती। जिस व्यापारी के साथ उनकी साझेदारी थी उसके प्रतिस्पर्धी की टांग वे अपने साप्ताहिक पत्र के कालमों

में खींचते। मार्केट में उनकी साख नहीं है, वे कालाबाज़ारी करते हैं, पुलिस की उनपर कड़ी नज़र है, आदि प्रकार के समाचार वे अपने दफ्तर में बैठकर ही गढ़ लिया करते थे और उन्हें बड़ी कुशलता से प्रकाशित किया करते थे। यहां तक कि उस प्रतिस्पर्धी की विधवा पुत्र-वधू को गर्भ रह गया तो उसका पर्दाफाश करने के लिए भी वे समाज और राष्ट्र के हित में उत्सुक हो जाते। एक अंक में तो उन्होंने केवल इतना ही समाचार एक बॉक्स में प्रकाशित किया :

'नगर के एक प्रतिष्ठित माने जानेवाले व्यवसायी के घर में अनैतिक प्रेम की जो अधम लीलाएं चल रही हैं उसके समाचार हमारे पास विश्वस्त सूत्र से प्राप्त हुए हैं। हमें अपने सूत्रों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है फिर भी उच्च पत्रकारिता के आदर्शों के पालन की दृष्टि से हम स्वयं उसकी जांच-पड़ताल कर रहे हैं और पूरी सामग्री हाथ में आने के बाद हम इस नारकीय काण्ड का भण्डा-फोड़ करेंगे ताकि समाज में दुराचार फैलाने वाले नर-राक्षसों को नसीहत मिले और समाज के चरित्र का विकास हो। यह काम हमें केवल कर्तव्य-बुद्धि से अत्यन्त दुःख और संकोच के साथ करना पड़ेगा क्योंकि समाज के नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा और सुरक्षा आदर्श पत्रकारिता का प्रथम एवं सर्वोच्च कर्तव्य है। हम आशा करते हैं कि हमें यह अप्रिय कार्य करने का अवसर प्राप्त नहीं होगा।'

इस प्रकार के समाचार में नाम-गाम कुछ नहीं रहता, पर उसकी लाल पेंसिल से रेखांकित प्रति सम्बन्धित व्यक्ति के पास भेज दी जाती। वह बेचारा घबड़ा उठता। अखबार की बिक्री भले ही सौ-दो सौ प्रतियों की हो, पर पढ़नेवाले को तो लगता कि न जाने कितने हज़ार लोग इस अखबार को पढ़ते होंगे, और केवल इस नगर में ही नहीं प्रदेश भर में घर-घर में यह पढ़ा जाता होगा। उनके सामने यदि मेरा नाम आ गया तो मेरी इज़्ज़त तो खाक में मिल जाएगी। आखिर उसमें कुछ न कुछ सत्यांश तो है ही। मानवीय कमजोरियां तो घर-घर में फैली हैं, किसीके यहां किसी स्वरूप में तो किसीके यहां और दूसरे रूप में। और कमजोरियां ही देखने का शौक है तो पहले अपने ही भीतर क्यों न देख लिया जाए जहां पाप, स्वार्थ, क्षुद्रता और वासनाओं का अनन्त खजाना भरा है। बाहर देखने को फुर्सत भी नहीं मिलेगी।

पर डॉ० छदामीलाल को इन सब बातों को सोचने की फुर्सत नहीं थी, ज़रूरत भी नहीं मालूम पड़ती थी। उनका व्यावसायिक प्रतिस्पर्धी इस समय चंगुल

में फंस गया है, उसे रगड़कर पीस डालने में ही कल्याण है। उसके सिवा घर की तिजोरी नहीं भरेगी। साथ ही साथ समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा भी हो जाए तो क्या बुरा है? समाचार के छापते ही उसी रात समझौते की बातचीत शुरू हो जाती और ले-देकर मामला इस बात पर तय हो जाता कि प्रतिस्पर्धी अपना टेंडर वापस ले ले और संपादक जी की पुरानी मोटर बदलकर नई मोटर का इन्तज़ाम कर दे।

इसी चमचमाती मोटर में बैठकर डॉ० छदामीलाल दूसरे दिन चीफ सेक्रेटरी के बंगले पर जाते तो उनका रौब और भी बढ़ जाता। पुलिस की खुफिया रिपोर्टों से तो उनके व्यक्तित्व और हलचलों की खबरें सरकार के पास पहुंच ही जाया करतीं पर इस समय तो अंग्रेज़ी सरकार दोस्तों की तलाश में थी और उन्हें डॉ० छदामीलाल से बढ़कर वफादार दोस्त और कौन मिल सकता था? इसलिए उन्होंने पुलिस की रिपोर्टों की तरफ केवल दुर्लक्ष्य ही नहीं किया वरन् उन्हें मध्यपूर्व, इटली और दक्षिणी फ्रांस के युद्धक्षेत्र का निरीक्षण करने के लिए एक पत्रकार दल के साथ भेज दिया। हवाई जहाज़ की यात्रा, इसके अलावा एक ऐंग्लो इण्डियन युवती का गाइड के रूप में साथ, विलास की सामग्री से सुसज्जित शानदार होटलों का निवास और सुरा-सुन्दरी के सान्निध्य। पांच सप्ताहों की विदेश-यात्रा में डॉ० छदामीलाल को साक्षात् स्वर्ग की झांकी देखने को मिली। इस समय वे भूल गए कि उन्हींके देशवासी इस समय अपने अभागे देश की मुक्ति के लिए ब्रिटिश जेलखानों में सड़-सड़कर और गल-गलकर ज़िन्दा कबर में दफना दिए गए हैं, और उन्हींके तथाकथित व्यवसाय का बन्धु, 'युगान्तर' साप्ताहिक का संपादक धनंजय राष्ट्रीयता की अग्नि में अपनी आहुति देनेवाली पत्नी के स्वास्थ्य की चिन्ता में कारागार छटपटा रहा है और उसकी पत्नी प्रेस को आग लग जाने के कारण हताश और हतभाग्य-सी बनकर रक्त के आंसू बहा रही है कि मां अम्बिकेश्वरी, अपनी इस असहाय और निराश्रिता कन्या की लाज कैसे रहेगी, तुम्हीं जानो।

और उसी 'युगांतर' के सम्पादक के साथ जब प्रदेश के मुख्य मन्त्री पण्डित पूरणचन्द्र जी जोशी ने पत्रकारिता का एक बड़ा और व्यापक प्रयोग शुरू किया तो डॉ० छदामीलाल को लगा कि मुख्य मन्त्री ने ऐसी मूर्खता कैसे कर डाली? असल में उन्हें तो डॉ० छदामीलाल के साथ पहले बातचीत करनी चाहिए थी

क्योंकि पत्रकारिता का व्यवसाय-पक्ष जितना अच्छा वह जानते उतना तो वह कोरा आदर्शवादी बुद्ध संपादक थोड़े ही जान सकता है ? सात साल के भीतर मेरी तीन बिल्डिंगें खड़ी हो गई, सौ-दो सौ एकड़ ज़मीन हो गई, बड़ा छापाखाना हो गया, विदेश-यात्रा भी हो गई, मोटर, रेडियो की तो खैर गिनती ही क्या है—इतने बड़े प्रमाण के बाद भी पत्रकारिता की सफलता की तरफ उनकी नज़र नहीं जाती तो भला जोशी जी से बढ़कर महामूर्ख और कौन हो सकता है ? और ऐसे निपट मूढ़ व्यक्ति के हाथ में शासन की बागडोर आई है तो इस प्रदेश और देश के दुर्दिनों की कोई सीमा नहीं है। कहां अंग्रेज़ों का राज्य और कहां स्वराज्य ? वे लोग तो आदमी की कदर करना जानते थे, और यहां तो अन्धेरगर्दी है, अन्धेरगर्दी। डॉ० छदामीलाल 'युगान्तर' और उसके सम्पादक का उत्कर्ष देखकर दांत पीसने लगे, जलने लगे, जैसे भीतर ही भीतर उनका शरीर किसीने चिता पर रख दिया हो।

११

एक बार धनंजय जोशी जी के बंगले पर गया तो जमादार ने बताया कि वे भीतर बैठे हैं, काशी के पण्डित आए हैं, उनसे वार्तालाप कर रहे हैं। धनंजय वापस जाने को निकला तो जमादार ने आग्रह किया कि नहीं, में महाराज को खबर दिए बगैर आपको वापस नहीं जाने दूंगा। आप आएं और उन्हें किसी भी हालत में खबर न मिले तो वे नाराज़ हो जाते हैं। जोशी जी को सब चपरासी और कर्मचारीगण उनकी बुजुर्गी के कारण 'महाराज' कहते थे, यह वह जानता था। उसके बारे में उनकी हिदायतें इसी तरह की थीं यह उसे भी मालूम था। फिर भी पण्डितों के साथ कुछ घरेलू बातों की, परिवार के विवाह संस्कारादि कार्यों की चर्चा हो रही होगी उसमें वह क्यों दखल दे, ऐसा सोचकर वह लौटना चाहता था। पर जमादार ने पांच मिनट के भीतर ही लौटकर बताया कि महाराज भीतर ही बुलाते हैं।

भीतर जाकर धनंजय ने देखा कि जोशी जी अपने परिवार सहित नीचे ज़मीन पर अपनी चादर पसार कर बैठे हैं और काशी के पांच विद्वान पण्डित उच्चासन

पर बैठकर वेद-मन्त्रयुक्त ग्राशीर्वाद दे रहे हैं। पण्डितों की मन्त्रध्वनि अत्यन्त स्पष्ट और प्रभावशाली थी, एक-एक ऋचा अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से स्वरों के आरोह-अवरोहों के साथ उच्चारित की जा रही थी। पांचों पण्डितों की सम्मिलित वाणी का उच्च नाद एक अत्यन्त शुद्ध और पवित्र वातावरण निर्माण कर रहा था। कपूर और उदबत्तियों के जलने के कारण मांगलिक सुगन्ध फैली हुई थी। धनंजय को यह सब वातावरण देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। स्वस्ति-पाठ समाप्त हुआ, आशीर्वाद दे दिया गया, फिर शान्ति-पाठ हुआ। ब्राह्मणों को चांदी की थालियों में मधुर मिठाइयां दी गईं और उसके साथ ही परिवार वालों को तथा धनंजय को भी। पास ही एक बीकानेरी पगड़ी पहने हुए वृद्ध सज्जन बैठे हुए थे, जिनका जोशी जी ने धनंजय से परिचय कराया—राजापुर के प्रसिद्ध पटसन के व्यापारी दानशूर सेठ लादूराम जी। वे उस पारिवारिक वातावरण में इतनी निस्संकोचता और आत्मीयता से बैठे थे जैसे उन्हींमें से एक हों।

ब्राह्मणों को दक्षिणा देने का समय आया तो जोशी जी ने प्रत्येक को इक्कावन-इक्कावन रुपये भेंट किए। पण्डितों के अगुआ आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री बोले :

'आप यह क्या कर रहे हैं महाराज! चक्रवर्ती युधिष्ठिर की पत्रिका लेकर जिसका अवतार हुआ है उसकी ओर से यह दक्षिणा? लेने को तो हम एक रुपया भी प्रेम से दो तो ले लेते हैं पर दक्षिणा तो दाता की पात्रता और प्रतिष्ठा के अनुकूल ही होनी चाहिए।'

'शास्त्री जी ठीक कहते हैं महाराज' दूसरे पण्डित जी ने दांत निपोड़ते हुए कहा। 'सम्राट अशोक को भी जो वैभव नहीं प्राप्त हुआ वह आपके प्रारब्ध में लिखा है, यह हम अपनी अन्तर्दृष्टि से देखकर कह सकते हैं। आपकी कीर्ति केवल इसी देश में ही नहीं किन्तु दिगदिगन्त में फैलने वाली है। छत्रपति शिवाजी और महाराजा छत्रसाल का अंश आप में अवतरित हुआ है ऐसी हमारी भावना है। ऐसे ऐतिहासिक पुरुष के हाथों हम इतनी स्वल्प दक्षिणा कैसे ले सकते हैं?'

जोशी जी ब्राह्मणों के शब्दों से गद्‌गद हो गए। उनकी प्रशंसा उनके चेहरे पर खिल उठी। पर बोले, 'यह सब तो ठीक है। पर हम राष्ट्रीय मन्त्रियों को बहुत ही सीमित वेतन मिलता है। हम तो जनता के सेवक हैं।'

'आपको किस बात की कमी है? आज इस प्रदेश में ही क्या, सारे देश में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आपके शब्द को टाल सके। चक्रवर्ती सम्राट का शब्द!

आप ब्रह्म वृन्द की वाणी को पत्थर की लकीर समझिए, आपका वैभव अन्त तक अखण्ड रहेगा और जब कभी अपने इच्छानुसार आप अपना शरीर छोड़ने का विचार करेंगे तब सार्वभौम सम्राट का संस्कार ही आपको प्राप्त होगा।'

जोशी जी निरुत्तर हो गए। अपने नाती को बुलाकर पचीस-पचीस रुपये और देने के लिए कहा।

चौथे ब्राह्मण तुरन्त बोले, 'महाराज! आज हमने अन्तःकरण से आपको अपने हृदयस्थ करके 'जीवेम शरदः शतम्' यह आशीर्वाद दिया है। अतः आपको अपनी ओर से एक मिलाकर कम से कम शतमुद्रा की दक्षिणा तो देनी ही चाहिए।'

जोशी जी ने गर्दन हिलाई। उनका नाती उठकर बगल के कमरे में गया, उसके पीछे-पीछे सेठ लादूराम जी भी गए। दो मिनट में ही वे वापस आ गए और जोशी जी ने काशी के ब्राह्मणों का उनकी मुंहमांगी दक्षिणा से सत्कार किया। साथ ही साथ उनमें से प्रत्येक को एक-एक रेशमी शाल भी समर्पित की गई। इत्र और गुलाबजल तो खैर था ही।

धनंजय ने मन ही मन कहा, पुराने राजा-महाराजाओं के वैभव और दरबारों की कहानियां उसने पुस्तकों में पढ़ी थीं पर आज इस प्रकार का वैभव वह स्वयं अपनी आंखों से देख रहा है। जोशी जी के चेहरे पर परम आनन्द और समाधान के लक्षण दिखाई देते थे। वे उठे और चलने लगे तो सचमुच ऐसा लगा कि जैसे कोई चक्रवर्ती सम्राट ही चल रहा हो। उस कमरे की सजावट, फर्श के कालीन और गालीचे, फर्नीचर, दीवाल पर की तस्वीरें, दरवाजे और खिड़कियों के पर्दे, चांदी और सुवर्ण के पालिश से युक्त गिलास, थालियां, कटोरियां तथा अन्य उपकरण यह सब देखकर उसे एक क्षण के लिए लगा कि इतिहास के कई वर्ष उलट गए, और मध्ययुगीन सामन्तशाही का नक्शा उसकी आंखों के सामने नाच उठा, मानो वह किसी मुगल सम्राट के दरबार में बैठा हुआ है। एक क्षण के लिए तो उसे आश्चर्य का धक्का लगा, और उस दृश्य की चकाचौंध से वह अभिभूत हो गया।

और दूसरे ही क्षण उसका मन एक सूक्ष्म अरुचि से भर गया। ऐसा लगा कि इस वातावरण में उसका दम घुट रहा है। उसने जोशी जी को प्रणाम करके कहा कि मैं जाता हूं।

जोशी जी के कानों में काशी के विद्वान ब्राह्मणों के प्रशस्ति-शब्द ही गूंज रहे थे और युधिष्ठिर, अशोक, शिवाजी और छत्रसाल के वैभव की स्मृतियां उनके

मस्तिष्क पर छाई हुई थीं, इसलिए वे उससे पूछना भी भूल गए कि कैसे आए थे और कैसे चले ? स्तुति तो देवताओं को भी पागल बना देती है, मानवों की तो बात ही क्या ? और जब जोशी जी स्वयं अपने मानवत्व में देवता का अंश ही देखते थे तब फिर उनके मन की स्थिति का क्या पूछना ! अपने भाग्य की सराहना करने के लिए उन्हें ढूंढे भी शब्द नहीं मिलते थे। ऐसा अपूर्व उल्लास, ऐसी अद्भुत प्रफुल्लता और परितृप्ति उन्होंने कभी अनुभव नहीं की थी।

१२

धनंजय अपने दफ्तर में चिट्ठी-पत्रियों में अपना दिमाग खपा रहा था कि चपरासी ने आकर बताया कि बाहर कोई भोलानाथ एडवोकेट आए हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।

भोलानाथ ? उसे नाम तो कुछ परिचित मालूम पड़ा। कहीं वह उसके स्कूल में पढ़ने वाला पुराना साथी तो नहीं है ?

उसने तुरन्त उसे बुलवाया तो देखा, हां, बिलकुल ठीक वही है।

धनंजय तुरन्त उसके स्वागत के लिए उठ खड़ा हुआ और बोला, 'अरे आओ भोला ! इतने दिन कहां रहे ? कैसे हो ? इधर कैसे टपक पड़े ?'

भोलानाथ को धनंजय का स्नेह और आत्मीयता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह तो ठिठककर, कुछ झिझकते आया था। धनंजय मुख्य मन्त्री का दोस्त है और सारे सूबे में उसका बोलबाला है। वह पहचान तो लेगा पर कहीं उसका व्यवहार रूखा और औपचारिक हुआ तो ?

पर भोलानाथ का डर निराधार निकला। धनंजय ने घण्टी बजाई और चपरासी को फौरन दो चाय लाने को कहा।

भोलानाथ ज़रा आश्वस्त होकर बैठ गया। धनंजय के प्रश्नों का उसने उत्तर तो नहीं दिया पर पहले उसके दफ्तर को ऊपर-नीचे, चारों ओर देखा। धनंजय की कुर्सी के पीछे एक रिवॉल्विंग शेल्फ था जिसमें कई रिफरेन्स की किताबें रखी थीं। ऊपर एक दुनिया का बड़ा गोल रखा था। बाईं तरफ एक

ऊंची मेज़ पर गांधीजी का बस्ट (मूर्ति) रखा था जो शायद प्लास्टर ऑफ पेरिस का बना हुआ था। दीवाल पर भारत का नक्शा और प्रदेश का बृहदाकार मानचित्र टंगा हुआ था। प्रत्येक दीवार पर एक सुन्दर कैलेण्डर था। मेज-कुर्सी आदि फर्नीचर भी साफ-सुथरा व्यवस्थित था।

'दफ्तर तो तुम्हारा बड़ा शानदार है।' भोलानाथ ने कहा।

'अरे इसमें कौन-सी बड़ी बात है? पर तुमने यह तो बताया नहीं कि इधर कैसे निकल पड़े? और आज मेरी याद कैसे की?'

'तुम्हारे ऑफिस के पीछे ही डॉक्टर त्रिवेदी रहते हैं, उन्हें छोड़ने आया था। तुम्हारा दफ्तर दिखा तो सोचा कि पांच मिनट के लिए तुमसे क्यों न मिल लूं?'

'डॉक्टर? डॉक्टर को क्यों बुलाया था?'

'क्या बताऊं भाई,' भोलानाथ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा। 'छः महीने से पत्नी बीमार है। अंतड़ियों का टी० बी० हो गया है। आराम ही नहीं हो रहा है। डॉ० त्रिवेदी को बुलाया था, उसने इंजेक्शन दे दिया और उसे घर छोड़ने आया तो अचानक तुमसे मिलने की प्रेरणा हो गई।'

भोलानाथ की व्यथा से धनंजय का मन दुखी हो गया। बोला, 'उसे भुवाली सेनिटोरियम में दाखिल करना हो तो कहो। या फिर मदनापल्ली में। अभी आई० जी० से फोन कराकर एडमिशन हो सकता है। फिर अपनी सुविधा से ले जाना।'

'नहीं, अब यह सब करने की स्टेज नहीं रही है। यह सब कर चुका हूं। पर कहीं आराम नहीं हुआ तो वह बोली कि अब मुझे वापस घर ले चलो। जहां व्याह होकर पहली बार तुम्हारे घर में प्रवेश किया वहीं मरना चाहती हूं।' भोलानाथ ने कहा।

धनंजय ने भी एक दीर्घ उच्छ्वास लिया। भोलानाथ ने फिर बात पलटकर कहा, 'तुमने अपना पुराना साप्ताहिक क्यों बन्द कर दिया धनंजय? उसकी तो बड़ी धाक थी। लोग उसे चाहते थे।'

'उसे तो इस दैनिक में विलीन कर दिया। सोचा कि इससे शायद अधिक सेवा हो सकेगी।'

'सेवा? पता नहीं सो होती होगी या नहीं। पर लोग तो कहते हैं कि तुम तो अब भ्रष्ट लोगों का साथ दे रहे हो। मेरी बात का बुरा मत मानना भैया, हाथ जोड़ता हूं, पर जो सुनता हूं वही बताता हूं। तुम मेरे पुराने साथी हो, इसलिए नहीं रहा

गया।' भोलानाथ ने कहा।

भोलानाथ की स्पष्टवादिता देखकर धनंजय आश्चर्यचकित हो गया। आज तक उससे मिलने के लिए जो आते थे वे तो यही कहते कि आप देश की बड़ी सेवा कर रहे हैं, राष्ट्र के नव निर्माण में ठोस सहयोग दे रहे हैं, आप धन्य हैं। खुशामदों और स्तुति-वचनों की झड़ी लगा देते। और फिर बाद में धीरे से अपने काम की बात बताते जिसमें देश-सेवा, समाज-कल्याण आदि की कोई बात नहीं रहती, निरे स्वार्थ की रहती।

और यह भोलानाथ है जिसने पत्नी के इलाज की मदद लेने से भी नाहीं कर दी और ऊपर से साफ-साफ इशारा दे दिया कि अपने आपको फिर एकबार टटोलो, कहीं गलत रास्ते पर तो नहीं जा रहे हो !

धनंजय को बुरा नहीं लगा, चिढ़ भी नहीं हुई। वह बड़े कौतूहल से भोलानाथ की तरफ देखता रहा।

आज भोलानाथ उसे कम से कम बीस बरस बाद मिला होगा। स्कूल में वह उसका साथी तो नहीं था पर उसके बड़े भाई का सहपाठी था और उससे चार-पांच साल बड़ा था। पर उसे स्पष्ट याद है कि उन दिनों भी भोलानाथ ने उसके परिवार के साथ बड़े ममत्व का व्यवहार किया था। भोलानाथ पढ़-लिखकर बड़ा हुआ, एडवोकेट भी हो गया और यहीं शहर में प्रैक्टिस करने लगा। पर न जाने क्यों वह धनंजय के पास नहीं आया और न धनंजय को कभी उससे मिलने की कोई आवश्यकता हुई। भोलानाथ के चाचा प्रदेश के बड़े सरकारी कर्मचारी थे। वे जानते थे कि धनंजय की मुख्य मंत्री जोशी जी के साथ कैसी छनती है। उन्होंने अपने भतीजे को आगाह कर दिया था कि धनंजय एक बड़ा आदमी बन गया है और अपने पुराने रिश्ते के बूते उससे मेल-जोल बढ़ाने की कोशिश मत करना। वे स्वयं जोशी जी के विश्वासपात्र थे इसलिए उनके सम्बन्धों में भोलानाथ की वजह से कोई उलझन न आ जाए इसके लिए सावधान थे। इसलिए भोलानाथ अलग-थलग रहता और उसने कभी धनंजय के रास्ते में आने की कोशिश नहीं की।

पर आज न जाने क्यों, अचानक उसके मन में धनंजय से मिलने की प्रेरणा जाग उठी। एक तो उसके चाचा अब यहां नहीं थे, बदलकर केन्द्रीय सरकार में चले गए थे, इसलिए उनकी हिदायतों का बन्धन कुछ ढीला पड़ गया था; दूसरे,

अपनी पत्नी की बीमारी से वह कुछ उदास था, कहीं कुछ सहानुभूति पाने को उत्सुक रहा होगा। और अचानक धनंजय का स्नेह और आत्मीयता देखकर उसे भरोसा हो गया कि उसके चाचा ने धनंजय के बारे में जो चित्र खींचा था वह गलत है—वह बड़ा बन गया हो, या मुख्य मन्त्री का प्रमुख सलाहकार हो, पर कम से कम भोलानाथ के लिए उसके मन में कोई अहंकार या ऊंच-नीच की भावना नहीं है। इसलिए तो उसे अपने विचार साफ-साफ रख देने की प्रेरणा हुई।

भोलानाथ की बातचीत सुनकर धनंजय मन ही मन चौंक उठा। बोला, 'लोग ऐसा क्यों कहते हैं।'

'इसीलिए कि जोशी जी के राज्य में भ्रष्टाचार खूब फैल रहा है। नौकरशाही में अपने-पराये का भेद चल रहा है। ग्रूपबाजी और दलबन्दी चल रही है। उनके रिश्तेदारों के यहां तो मोतियों की वर्षा हो रही है। ठेके, खदानें, एजेन्सियां—कोई ऐसा धन्धा नहीं जिसमें उनके रिश्तेदारों का साझा न हो। भले सरकारी अफसर उनसे दबते हैं, और चलते-पुर्ज़े अफसर उन्हींकी खुशामद करके तथा उन्हें अपनी दलाली देकर अपनी तरक्कियां करा लेते हैं। राजनीतिक दृष्टि से कोई भी मजबूत पार्टी विरोध में नहीं है। इसलिए जोशी-दल की चांदी है, किसीका डर नहीं, आतंक नहीं, दोनों हाथ लूट-खसोट जारी है। प्रदेश के सारे अखबार शासन से डरते हैं। तुम्हारा अखबार डरता तो नहीं है पर उनका दोस्त बन बैठा है। कोई शासकीय दल पर उंगली उठाता है तो तुम उसपर इस कदर टूट पड़ते हो कि वह कहीं का नहीं रहता। और मन्त्रिमण्डल का समर्थन करने के लिए सारी ताकत इस कदर लगा देते हो जैसे हनुमान जी गदा लेकर राक्षस-दल पर कूद पड़े हों। पर जिसके लिए तुम अपनी गदा चलाते हो वे असली राम हैं या नहीं यह तो देख लेना चाहिए।' भोलानाथ कहता गया। साफ-साफ, खरी-खरी। क्यों कहता गया, सो वह नहीं जान सका।

धनंजय कुछ देर तक तो सुनता रहा, फिर हंसकर बोला, 'भई भोलानाथ! तुम तो वकील पेशे वाले लोग हो। जिसकी 'ब्रीफ' (कानूनी विवरण) लेते हो उसकी तरफ से 'केस' ऐसे ज़ोरदार तरीके से रखते हो कि एक क्षण के लिए आदमी गड़-बड़ा जाता है। आज तुम विरोधी पक्ष की 'ब्रीफ' लेकर मुझसे बातें कर रहे हो। अब तुम एक बार सत्तारूढ़ पक्ष की बात लेकर भी मुझसे बात करो तब कहीं हम लोग ठीक-ठीक फैसला कर सकेंगे। एकांगी विचार से तो सत्य का निर्णय नहीं हो

सकता न ?'

'नहीं धनंजय, यह मैं वकील की हैसियत से हर्गिज़ नहीं बोल रहा हूं। मेरा तो राजनीति से तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। मैं तो स्वयं राष्ट्रीय वृत्ति का आदमी हूं। गांधीजी के आश्रम में भी महीने-दो महीने रहा था, सन् तीस में कॉलेज छोड़-कर सत्याग्रह-संग्राम में कूद पड़ा। पूना में पढ़ता था तो वहां यरवदा जेल में बन्द कर दिया गया। 'सी' क्लास में रखा गया तो वहां की जली भाकरी (ज्वार की रोटी) ने पेट की ऐसी मरम्मत की कि उससे आज तक छुट्टी नहीं मिली। नहीं, मेरा राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। मन्त्रिमण्डल ने सब काम बुरा ही बुरा किया है, ऐसा मेरा कहना नहीं है। पर अच्छा काम कम है, बुरा ज्यादा है, और यह बुराई अभी न सम्हाली गई तो अनर्थ कर देगी, ऐसी मेरी धारणा है। तुम्हारा पुराना साप्ताहिक रहता तो वह हर्गिज़ ये बातें बर्दाश्त नहीं करता। आज तुम उनके इतने निकट हो कि दूर से लोग क्या सोचते हैं, इसका तुम्हें कल्पना नहीं है। अच्छा, मैं चलता हूं। पत्नी राह देख रही होगी। मुझे जरा कहीं देर हुई कि वह बेचैन हो जाती है। माफ करना यार, यदि मैंने कुछ कम-ज्यादा कह दिया हो तो--नमस्ते !'

और भोलानाथ जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। धनंजय ने उसे रोकने की बहुत कोशिश की पर वह रुका नहीं। धनंजय ने कहा, मोटर से घर पहुंचवा दूं तो बोला कि मेरे पास भी एक खटारा मोटर है जिससे मज़े से काम चल जाता है। पुरानी फोर्ड गाड़ी है। बिगड़ने का नाम ही नहीं लेती। बस, अपने लिए वही ठीक है।

और वह चला गया। कैसे, कहां से अकस्मात आ टपका, और कैसे एकाएक चला गया, पता नहीं, जैसे पवन के झोंके से बहता हुआ वर्षा का बादल अचानक पांच मिनट के लिए आता है और जल बरसाकर चला जाता है। धनंजय का मन भोलानाथ से मिलकर प्रसन्न तो हुआ, पर उसके जाने के बाद अशान्त हो गया। यह सब कैसे क्या हो गया ? उसकी बात में कितना तथ्य है, क्या मर्म है ? वह गहरे विचार में डूब गया और सामने की उस कुर्सी की तरफ एकटक देखता रहा जिसपर भोलानाथ बैठा था।

चपरासी ने आकर खबर दी कि सर्कुलेशन इन्स्पेक्टर पाण्डे ज़िलों के दौरे से आए हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।

आध घण्टे तक वह सर्कुलेशन इन्स्पेक्टर की रिपोर्ट सुनता रहा जो अभी हाल

ही नौ ज़िलों का दौरा करके लौटा था। उसका मुख्य काम था दैनिक 'युगान्तर' का प्रचार करना, उसकी एजेन्सियों का निर्माण करना, उसकी ग्राहक-संख्या बढ़ाना। वह समाचारपत्र-विक्रेताओं से भी मिलता तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्र के उन सब लोगों से मिलता जो अक्सर अखबार खरीदने वाले होते हैं, और सर्वसाधारण जनमत के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं।

इन्स्पेक्टर पाण्डे ने दबी और सौम्य ज़बान में यही बताया कि 'युगान्तर' की बिक्री बढ़ाने में बड़ी कठिनाई महसूस हो रही है। लोग कहते हैं कि इसका नाम बदलकर 'जोशी गज़ट' रख देना चाहिए क्योंकि यह जोशी-मन्त्रिमण्डल की ही प्रशंसा छापता रहता है; जनता पर क्या बीत रही है इसकी सुध नहीं लेता। हम सब पुराने 'युगान्तर' के पाठक हैं और उसकी इज़्ज़त करते थे। पर नये 'युगान्तर' की कायापलट से हम दुखी हैं। ऐसा लगता है कि पुराना शेर अब बूढ़ा हो गया है और उसके दांत-नाखून गिर गए हैं। जनता की रखवाली करने वाला अब कोई नहीं है। इतना सब कहकर पाण्डे ने हाथ जोड़े कि यदि कोई कम-बेशी बात कही हो तो क्षमा करें, पर जो बात नज़र आई सो निवेदन कर दी।

धनंजय ने आश्वासन दिया कि नहीं, आपने अपने कर्तव्य का पालन किया है। जो सत्य है उसे जानने और कहने में कोई संकोच-हिचक नहीं होनी चाहिए। मैं आपका कृतज्ञ हूं।

१३

लोक-कर्म विभाग के मन्त्री बाबू मनमोहन जी की ज़िन्दगी बड़े मज़े में कट रही थी। उनका विभाग उन दिनों काफी महत्व रखता था। पक्के रास्तों को बनवाना और बड़ी-बड़ी बिल्डिगें खड़ी करना यह उसका मुख्य काम था। पंच वार्षिक योजनाओं में भवनों को विशेष महत्व दिया जाता था और उसके लिए बड़ी-बड़ी रकमें रखी जाती थीं। नया सेक्रेटरिएट बना, मिनिस्टरों के नये-नये बंगले बने, उनमें लम्बे-चौड़े परिवर्तन हुए, नई-नई सुविधाएं प्रदान की गई, असेम्बली के सदस्यों के लिए नये-नये क्वार्टर्स बने, जहां सपरिवार राजा की तरह

रहा जा सके। भिन्न-भिन्न सरकारी कार्यालयों के भवन बने, स्कूलों और कॉलेजों की नई-नई इमारतें बनीं। लाखों से कम की बात नहीं होती थी, करोड़ों की योजनाएं बनतीं।

रघुनाथ सहाय मामूली इन्जीनियर से बढ़ते-बढ़ते उस विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी तक पहुंच गए। पर उनकी सारी कोशिश यह थी कि सेक्रेटरी कैसे बनें। यदि इतना हो जाए तो वे स्वर्ग पहुंच जाएंगे, ऐसी उनकी धारणा थी। प्रत्येक की स्वर्ग की अपनी-अपनी कल्पनाएं रहती हैं। सेक्रेटरी के पद पर जो सज्जन थे, उनका नाम था लाला किरपाराम, जिनके रिटायर होने में पांच साल की देर थी। भला रघुनाथ सहाय जी को पांच साल ठहरने का धीरज कहां? आदमी तो बस जिस चीज़ पर दिल फेंक बैठा, उसे तुरन्त पाने के लिए छटपटाता है। वे सोचते कि आज इतने बड़े निर्माण के कार्य हो रहे हैं, इस समय सेक्रेटरी-पद पाने का और महत्व है। वे लाला किरपाराम को खिसकाने की कोशिश में लग गए।

लालाजी कुछ धर्मभीरु व्यक्ति थे, यानी जिस हद तक लोक-कर्म विभाग में धर्म निभ सकता है उस हद तक। स्वयं तो पाक-साफ रहने की क़ोशिश करते पर अपने मातहत कर्मचारियों को अपनी धन-संपदा बढ़ाने से रोक नहीं पाते थे। कुछ कमज़ोर प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके रहते हुए रिश्वतखोरों को अड़चन मालूम पड़ती। अपना काम करने के बाद वे पूजा-पाठ में या रामायण-भागवत पढ़ने में लग जाते। क्लब, सिनेमा या डिनर से उन्हें शौक नहीं था। और रघुपति सहाय सिद्धान्ततः यह मानते थे कि सरकारी काम तो क्लब या डिनर की मेज़ पर ज्यादा होता है, दफ्तर की मेज़ पर नहीं। गरज़ यह कि लाला किरपाराम से उनका सैद्धान्तिक मतभेद था, दृष्टिकोण में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। उन्हें पहले पहल यही डर रहा कि ये सुराजी लोग ज़रा रूखे, त्यागी और मितव्ययी टाइप के होते हैं, कहीं उनके आने से लाला किरपाराम का पलड़ा भारी न हो जाए। पर जब उन्होंने मनमोहन बाबू को उनकी लड़की की बर्थ-डे पार्टी में निस्संकोच मिलते-जुलते देखा तो उनका हौसला बढ़ा और उनको तथा उनकी पत्नी तारामती को पूरा भरोसा हो गया कि लालाजी की पतंग कटने में देर नहीं है। इस मामले में तो मिनिस्टर ही सर्वेसर्वा हैं। हालांकि सेक्रेटरी की नियुक्ति का मामला पूरी कैबिनेट के सामने जाता है, पर वे जिस तरह उसे पेश करते हैं उसी नुक्ते-नज़र से अक्सर उसपर विचार किया जाता है। बाकी मिनिस्टर तो अपने-

अपने महकमों के मामलों में इतने उलझे होते हैं कि दूसरे महकमों की तरफ ध्यान देने की उन्हें फुर्सत ही नहीं होती। पुलिस का महकमा रहा तो सुबह से शाम तक पुलिस-विभाग के लोग अपनी चुस्त वर्दी में खड़े होकर जूतों की टापों को खट से मिलाकर, मुस्तैदी के साथ सैल्यूट फटकार जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मिनिस्टर साहब के दिमाग में जो नशा चढ़ने लगता है उससे बचना एक योगी का काम है। पुलिस-परेड में, पुलिस-बैण्ड की पृष्ठभूमि में, उच्च अधिकारियों तथा उनकी साज-शृंगार से अलंकृत सुन्दर या सुन्दरता का अभिनय करने वाली पत्नियों के सामने मिनिस्टर साहब को जो सलामी दी जाती है उसकी शान का क्या पूछना ? मिनिस्टर साहब को वे दिन याद आ जाते जब एक छोटा-सा दरोगा दो कान्स्टेबलों को लेकर उन्हें गिरफ्तार करने आता था, और जिन्हें देखकर थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो, उनकी रूह कांप जाती थी। आज तो दरोगा की श्रेणी के लोगों से बातचीत करना भी उनकी तौहीन है। उनसे कहीं बढ़कर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अफसर उनके सामने अपना सिर झुकाते हैं।

शिक्षा-विभाग हो तो मिनिस्टर साहब के यहां सेक्रेटरियों, डायरेक्टरों, कॉलेज के प्रिंसिपलों तथा महिला प्रोफेसरों, इन्स्पेक्ट्रेसों और अध्यापिकाओं के चक्कर लगने लगते हैं। कॉलेजों में सोशल गैदरिंग्ज़ (सामाजिक सभा) और अन्य उत्सव-समारोहों की कोई कमी तो रहती नहीं। किसी न किसी बहाने मन्त्री महोदय को अपनी संस्था में बुलाने में जैसे होड़ लगने लगती है। और होड़ इसमें भी लगती कि सबसे बड़ी माला किसने पहनाई, सबसे बड़ी पार्टी किसने खिलाई, संगीत-नृत्य का सबसे अच्छा कार्यक्रम किसने उपस्थित किया। जिस कॉलेज में मिनिस्टर साहब पढ़े होते उसकी शान का क्या पूछना ? उसके प्रोफेसर और प्रिंसिपल ऐसी असाधारण प्रतिभा के व्यक्तित्व का निर्माण करने में योग दे सके, इसके लिए धन्यता अनुभव करते हैं। उनके बंगले पर जा-जाकर वे कहते, 'हम तो पहले ही जानते थे कि आप एक न एक दिन बड़ा नाम निकालेंगे। आज आप हमसे आगे बढ़ गए हैं इसीमें हमें आनन्द हैं। गुरू से चेला सवाई निकले इसीमें गुरू का गौरव है।'

जंगल का महकमा होता तो मिनिस्टर साहब के दौरे पर चीफ कन्ज़र्वेटर साहब से लेकर छोटे दफेदार तक तमाम अफसरान खाकी ड्रेस पहने उनके स्वागत के लिए आंखें बिछाए खड़े रहते। सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से भरे हुए स्थानों के दौरे

रखे जाते, फॉरेस्ट के रमणीय से रमणीय डाक बंगलों में ठहरने का इन्तज़ाम किया जाता, आदिवासी रमणियों के स्वाभाविक अर्धनग्न स्थिति में नृत्य कराए जाते, शिकार का इन्तज़ाम होता और जंगल के ठेकेदारों की ओर से बड़ी-बड़ी पार्टियां दी जातीं। मिनिस्टर के लिए दौरा ही सबसे प्यारी वस्तु होती है। वहां अपनी प्रभुता को कहीं से कोई चुनौती नहीं मिलती, दूसरे सीनियर मन्त्री या मुख्य मन्त्री नहीं रहते, अपन ही अपन रहते हैं। जहां नज़र उठाओ अपना ही एकछत्र साम्राज्य दिखाई देता है। आराम का आराम, सफर का सफर, डिनर पार्टियों का लुत्फ, अहं की पूरी-पूरी सुरक्षा और भत्ते का भत्ता। चित भी मेरी, पट भी मेरी, अंटा मेरे बाप का।

प्रत्येक मन्त्री अपने-अपने विभाग का सार्वभौम शासक होता। कैबिनेट में या मुख्य मन्त्री के सामने उन्हें जो कुछ झुकना पड़ता या विवेक रखना पड़ता उतना ही नियन्त्रण समझिए। बाकी वहां से निकले और अपनी राष्ट्रीय झण्डा फरफराने वाली मोटर में बैठे कि अपनी दुनिया के बादशाह हो गए। मानो हरेक महकमा एक-एक मिनिस्टर की जागीर थी जो उसे दे दी गई थी। शासकीय दल मज़बूत था, विरोधी पक्ष कमज़ोर था, सब अखबार खुशामद करते थे, मिनिस्टरों के भाषणों की रिपोर्ट तथा फोटो छापने में स्पर्धा करते थे, फिर किस बात का डर है? मुख्य मन्त्री जोशी जी सर्वेसर्वा हैं। उनके जैसा नेता मिलना दुर्लभ है। यह प्रान्त का परम सौभाग्य है कि वे इस गंभीर संक्रान्ति-काल में शासन की बागडोर सम्हालने के लिए विद्यमान हैं। वरना यह सब राष्ट्र-निर्माण का कार्य भला और किसीसे हो सकता था?

मन्त्रियों ने केवल एक तन्त्र बना लिया था कि मुख्य मन्त्री के मार्ग में आड़े से भी नहीं जाना। वे जो कहते, जिस काम में दिलचस्पी रखते उसे चुपचाप बिना किन्तु-परन्तु किए कर देना। मुख्य मन्त्री की दिलचस्पी बड़ी व्यापक थी; क्योंकि उनकी उम्र सबसे ज्यादा थी, उनका परिचय भी सबसे अधिक था और उनका परिवार भी सबसे बड़ा था।

जोशी जी से कोई उनका पुराना मित्र या साथी कह दे कि जोशी जी, आपके रहते हुए मेरा लड़का बिना नौकरी का कैसे रहे? तो फौरन जोशी जी उसकी मदद करने के लिए तत्पर हो जाते। वह यदि एम० ए० में थर्ड क्लास आया हो तब भी उसे प्रोफेसरी मिल जाएगी और बाकी फर्स्ट क्लास पास या डॉक्टरेट पाए

हुए लोग भी झख मारते बैठे रहेंगे, क्योंकि उनकी कोई पहुंच नहीं है। उनके बचपन के मित्र की विधवा पत्नी ने खबर भिजवा दी कि लड़की की शादी नहीं हो रही थी पर अब किसी तरह हो गई है। लेकिन दामाद अब बेकार बैठा है—बी० ए० पास तो है पर नौकरी नहीं मिलती। लल्ली के पिता होते तो कोई परवाह नहीं थी। जोशी जी उसे पुलिस असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट बनवा देते। पब्लिक सर्विस कमीशन के मेम्बर उन्हींकी नामजदगी से बने व्यक्ति थे। सिर्फ उसके चेयरमैन हाईकोर्ट के सेवा-निवृत्त जज थे, उनसे जोशी जी प्रत्यक्ष कुछ नहीं कहते। पर बाकी दो सदस्य थे वे अगली रात को मीटिंग में जाने के पहले जोशी जी के चरण छूने अवश्य चले आते ताकि उनके लायक कोई काम हो तो उसमें कोई कसर न रह जाए। इसके अलावा पुलिस विभाग के प्रमुख की जगह ऐसे महापुरुष को रख दिया गया था कि उनकी शासकीय दृष्टि से यही एक्सपर्ट राय रहती कि लल्ली के पति जैसा होनहार पुलिस का अफसर मिलना दुश्वार है और वह डिपार्टमेन्ट के लिए 'असेट' (उपयुक्त) रहेगा। उसकी राय ज़ाहिर होते ही वे दो मेम्बर कहते, भई, आखिर महकमे का मुश्किल काम तो आई० जी० साहब को चलाना है, उनका कार्य सुचारु रूप से चले इसमें मदद करना कमीशन का काम है। जो पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी अपनी विवेक-बुद्धि या स्वतंत्र बुद्धि के कारण ऐसी राय देने की क्षमता नहीं रखते थे उन्हें प्रमोशन देकर या तो केन्द्रीय सरकार को दे दिया जाता था, या अन्य किसी रियासतों के संघ को, जहां से अनुभवी अफसरों की मांग अक्सर आ जाया करती।

एक बार सेक्रेटरिएट में पांच सौ हिन्दी के टाइपराइटर खरीदने की बात आ गई। जोशी जी के परिवार का एक व्यक्ति सामने आया, और टाइपराइटर की एजेन्सी ले ली और बोला, 'मामाजी, अमुक टाइपराइटर खरीदने का ऑर्डर मिल जाए तो फिर मेरी रोज़ी चल निकलेगी।'

मामाजी उदार हृदय के व्यक्ति थे, उस आदमी की रोज़ी का काम चला देते। वही बात सरकारी मोटरों के इन्श्योरेन्स के बारे में, राजा-महाराजाओं के बीमे के बारे में, मैंगनीज़ की खदानों के ठेकों के मामले में, शिक्षा-विभाग की या प्रचार-विभाग की मोटर-बसें खरीदने में। स्वतंत्र भारत के एक विशाल और सम्पन्न प्रदेश के कारोबार में ऐसे हज़ार तरह के काम निकलते जिनमें लाखों-करोड़ों की खरीद-फरोख्त होती। मामाजी का प्रभाव सारे शासन-क्षेत्र में था। उनके आश्रित व्यक्ति

ऐसा मानते थे कि इस शासन के प्रभाव में हमारा भी थोड़ा-सा हाथ है, हमारी भी सुनवाई होनी चाहिए। उनके महासागर जैसे विशाल हृदय की जलराशि पर उनके मित्र और परिवार के लोग अपनी-अपनी नौकाएं उतारकर जीवन-क्रीड़ा करने लगे। उनके लिए तो जैसे आसमान से स्वर्ग ही नीचे उतर आया। गिरधारी का बंगला बन गया और दो मोटरें आ गईं। और लोगों के पास भी मोटरें आ गईं। एक से एक बढ़िया और विशालकाय। जोशी जी के अहाते में तीन सरकारी मोटरें खड़ी रहतीं तो पांच निजी मोटरें भी रहतीं जो उनके परिवार के लोगों ने अपनी-अपनी कमाई और पुरुषार्थ से खरीदी थीं। जब ये मोटरें राजधानी के राजमार्गों से गुज़रतीं तो लोग कह उठते, राजपरिवार के लोग जा रहे हैं, स्वराज्य इन्हींके भाग्य को जगाने के लिए आया है। मामाजी अपने परिवार के लोगों को अपने पैरों पर खड़ा हुआ देखकर सुख अनुभव करते। वे कहते कि मैं यदि अपने जीते जी इनका ठीक-ठाक करके नहीं जाऊंगा तो और कौन करेगा? जान-बूझकर उन्होंने किसीका नुकसान नहीं किया। हां, जो उनके राजनीतिक प्रतिस्पर्धी थे उनको खतम करने में वे दया-मुरव्वत नहीं बरतते। राज्ययन्त्र की उपादेयता इसीमें है कि वह निष्कण्टक और निर्विरोध हो, उसमें शत्रुओं के लिए कोई स्थान नहीं है। जोशी जी की यह ख्याति थी कि वे मित्रों के सबसे बड़े मित्र थे, और शत्रुओं के सबसे भयंकर शत्रु। इसलिए कोई उनके रास्ते में आने की हिम्मत नहीं करता था। सब उनकी कृपा पाने के लिए लालायित रहते थे। उनके हाथ में कितनी सत्ता थी! हाईकोर्ट के जजों की नियुक्तियों में उनकी सिफारिश काम करती। केन्द्रीय सरकार पर उनकी बड़ी धाक थी, क्योंकि उन्होंने एक विशाल सूबे के कारोबार को दृढ़ता से सम्हाला था। उनके यहां कानून और व्यवस्था की कोई उलझन नहीं थी, शासकीय दल का विशाल बहुमत था, विरोधी पार्टियां तहस-नहस हो गई थीं। दिल्ली से प्रधान मन्त्री या और कोई नेता दौरे पर आते तो उनका इन्तज़ाम इतना दुरुस्त रहता कि वे खुश होकर जाते। इस प्रदेश ने केन्द्र के लिए कभी कोई समस्या या उलझन पैदा नहीं की, न कोई प्रश्नचिह्न कभी प्रस्तुत किया। इसलिए जोशी जी की शान-शौकत में क्या कमी थी? और यदि नियति ने काशी के पंच-पंडितों के मुंह से यह कहलवा दिया कि जोशी जी अपने भाग्य में धर्मराज युधिष्ठिर, सम्राट अशोक, गो-ब्राह्मण प्रतिपालक शिवाजी और महाराजा छत्रसाल का अंश लेकर इस भूखण्ड पर अवतरित हुए हैं तो फिर स्वयं

पूरणचन्द्र जी जोशी वेचारे इस सत्य को मानने से इनकार कैसे कर सकते हैं ? जय हो ! जय हो ! जय जय हो ! बस, यही दुन्दुभि उनके कानों में चारों तरफ सुनाई देती थी।

१४

रघुनाथ सहाय ने इशारा किया और उनके कृपापात्र, नगर के मशहूर पी० डब्ल्यू० डी० ठेकेदार हातिमभाई ने मनमोहन बाबू के लिए एक बड़ी शानदार डिनर पार्टी तय कर डाली। यों हातिमभाई का एक पैंतीस लाख का टेंडर भी सरकार के सामने पड़ा था। न भी होता तो उनका काम तो हमेशा सरकार से पड़ता ही रहता था; फिर वह सरकार अंग्रेज़ों की हो या भारतीयों की। अंग्रेज़ी हुकूमत के ज़माने में भी उनका बहुत बोलबाला था। उनके वालिद अब्बासभाई को उन दिनों खान-बहादुर का खिताब बख्शा गया था और गवर्नर की कोठी में उनका बड़ा मान था। युद्ध के फण्ड में भी उन्होंने लाखों रुपये दिए थे। यह और बात थी कि लोहे और इस्पात की एजेन्सी में उससे तिगुने कमा लिए थे। उनकी मृत्यु के बाद उनकी परम्परा हातिमभाई ने चलाई थी। वे नौजवान थे, और जहां उनके वालिद दो-चार फिकरे ही अंग्रेज़ी में बोला करते थे वहां हातिमभाई मैट्रिक होने के कारण उनसे ज़्यादा अंग्रेज़ी बोल लिया करते थे। गोश्त-कबाब से उन्हें मुहब्बत थी और हालांकि कुरान शरीफ में शराब पीने की सख्त मुमानियत थी, उन्होंने उस बन्दिश को इसलिए नहीं माना कि उन्होंने कुरान शरीफ एक बार भी पढ़ा नहीं था। पढ़ने के बाद उसपर अमल लाज़िमी हो जाता है ऐसा उनका ख्याल था। इस मामले में उनके वालिद साहब ने जो कमाया उसकी विरासत में आखिर उनका भी हिस्सा तो था ही। नाच-गाने का भी शौक था। गोया उनकी तबीयत रंगीन थी। रघुनाथ सहाय ने सोचा कि मनमोहन बाबू का मिजाज़ खुलाने और खिल उठाने में हातिमभाई बड़ा काम करेंगे। शहर से चालीस मील दूर खारी बावली के एक पहाड़ी डाक बंगले में पार्टी का इन्तज़ाम हुआ। चूंकि पार्टी गैर सरकारी ढंग की थी, उसकी दावत देने के लिए हातिमभाई और श्रीमती तारामती सहाय गईं। मिसेज़ सहाय

ने मिसेज़ मनमोहन से मिलकर खुद निमन्त्रण देने की बात उठाई तो मिनिस्टर साहब बोले, वे खुद यह निमन्त्रण उनके पास पहुंचा देंगे। लेकिन उन्हें शक था कि अपने स्वास्थ्य की नाजुक हालत में वे आ सकेंगी या नहीं। श्रीमती सहाय ने फौरन कहा कि ऐसी हालत में उनका तकलीफ उठाना गोया उनपर बोझ डालने जैसा है। फिर धीरे से हातिमभाई ने पूछा कि हुज़ूर को गाने का शौक हो तो उसका इन्तजाम भी किया जाए। सभ्य समाज में यह कहना कि गाने का शौक नहीं है एक ऐब समझा जाता है, इसलिए मिनिस्टर साहब ने यह तो कहा कि हां, गाने का शौक तो है पर इतनी तकलीफ आप काहे को करते हैं? हातिमभाई उड़ती चिड़िया पहचानते थे, फौरन एक पेशेवर गानेवाली हसरत अदा जान को लाने का इरादा कर लिया। सरकारी अफसरों में और किसीको दावत नहीं दी गई, इस बिना पर कि पार्टी प्राइवेट है, अनौपचारिक है। हातिमभाई ने पूछा, 'क्या वक्त सात बजे शाम का रखा जाए?'

'नहीं, साढ़े आठ बजे का रखिए क्योंकि मुझे उस दिन शाम को साढ़े छः बजे शायद कोई और एंगेजमेन्ट है।' ऐसा कहकर उन्होंने घण्टी बजाई। चपरासी आया तो पी० ए० को बुलवाकर पूछा, 'क्यों बाबू, शनिवार की शाम को साढ़े छः बजे कहां का 'फंक्शन' है?'

'सरकारी कॉलेज में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्मतिथि का समारोह है, और भारन्दु साहित्य-समिति का उद्घाटन है।'

'हरिश्चन्द्र की जन्मतिथि?' मिनिस्टर साहब ने कुछ सोचते हुए कहा। फिर पी० ए० से पूछा, 'शिक्षामन्त्री वहां चले जाते तो अच्छा होता।'

'वही जानेवाले थे, पर एकाएक उन्हें कार्यवश दिल्ली जाना पड़ा, जहां से शिक्षामन्त्रियों के सम्मेलन में शामिल होने के लिए कश्मीर जाना पड़ेगा। जाते समय कह गए हैं कि आपसे उस काम को निपटा लेने के लिए रिक्वेस्ट की जाए—उनके पी० ए० का फोन आया था।'

'अब आप ही देखिए, हम लोगों का काम किस तरह बढ़ जाता है। एक शाम भी फ्री नहीं मिल पाती। अपने डिपार्टमेण्ट का काम तो करना ही पड़ता है और फिर इस तरह दूसरे डिपार्टमेन्ट का भी काम आ जाता है। खैर, वे हमारे 'कुलीग' (साथी) हैं तो हमें तो उनका काम निबाहना ही होता है।' तारामती की तरफ मुखातिब होकर मन्त्री महोदय ने कहा।

तारामती और हातिमभाई दोनों ने बड़ी-बड़ी आंखें निकालकर 'जी हां, जी हां' कहकर बड़े ज़ोर से गर्दन हिलाई और देर तक हिलाते रहे, मानो कोई यौगिक एक्सरसाइज कर रहे हों।

फिर मिनिस्टर साहब ने पी० ए० से कहा, 'बाबू, ज़रा प्रिंसिपल साहब को फोन करके ताकीद कर देना कि कार्य-क्रम ठीक साढ़े सात बजे बन्द कर दें क्योंकि हमें फिर दौरे पर जाना है।'

हातिमभाई और मिसेज़ सहाय के जाने के बाद उन्होंने पी० ए० से कहा,'उस तहसील के रोड कन्स्ट्रक्शन वाले एस० डी० ओ० को हमें मिलने के लिए खबर दे दो कि वह जो नया रोड बन रहा है वह हमें दिखा दे।'

'उस इलाके में तो कोई रोड नहीं बन रहा है साहब।' पी० ए० ने कहा।

'पर कोई न कोई सरकारी काम तो होगा ही ? हम वहां सिर्फ डिनर के लिए थोड़े ही जाएंगे ?'

'साहब, वह डाक बंगला अपने ही महकमे में आता है। उसका मुलाहिज़ा तो आप हमेशा ही कर सकते हैं।'

'हां, यह ठीक है। एस० डी० ओ० को खबर कर दो कि हम डाक बंगले का इन्स्पेक्शन करेंगे।'

'साहब, मुझे भी साथ आना होगा ?' पी० ए० ने धीरे से पूछा। हातिमभाई की पार्टियां कैसी होती हैं इसका उसे कुछ अन्दाज़ था और उसकी जीभ थोड़ी लपलपा रही थी।

'नहीं, तुम्हारे आने की ज़रूरत नहीं। तुम उस दिन 'ऑफ' ले लेना।'

१५

गवर्नमेन्ट कालेज में भारतेन्दु साहित्य-समिति के उद्घाटन के अवसर पर प्रिंसिपल साहब, हिन्दी विभाग के प्रोफेसर तथा समिति के पदाधिकारी-गण, जिनमें दो छात्राएं भी थीं, उपस्थित थे। श्री रघुपति सहाय और मिसेज़ सहाय नहीं थे, क्योंकि वे पहले ही इन्तज़ाम की देखरेख करने के लिए खारी बावली

पहुंच गए थे। कॉलेज में मनमोहन बाबू का हार्दिक स्वागत किया गया। फूल-मालाएं पहनाई गईं, फोटो खींचा गया। मनमोहन बाबू मंच पर बैठे तो उन्होंने देखा कि नगर के कुछ प्रमुख साहित्यकार भी सामने बैठे हैं। उन्हें देखकर उन्हें कुछ अटपटा ज़रूर लगा कि इस साहित्यिक विद्वन्मण्डली में किस तरह का भाषण दिया जाए। पर उनकी धारणा थी कि सार्वजनिक जीवन का अनुभवी खिलाड़ी होने के कारण मन्त्री किसी भी विषय पर बोल सकता है, और प्रसंग की शोभा निभा सकता है। स्वागत में भारतेन्दु साहित्य-समिति के विद्यार्थी-अध्यक्ष ने जो लिखित भाषण पढ़ा उसमें मनमोहन बाबू के हिन्दी-प्रेम और साहित्य-सेवाओं का बड़ा विस्तृत उल्लेख था। वे हिन्दी साहित्य के उद्भट विद्वान हैं, स्वयं साहित्य-निर्माण में उनकी अत्यंत रुचि है, और यह उनकी कर्तृत्वशक्ति और मिशनरी स्पिरिट का ही परिणाम है कि जिस विशिष्ट जाति से वे आए हैं उसमें हिन्दी का इतना प्रचार हो रहा है। ऐसे विद्वान हिन्दी-प्रेमी से बढ़कर भला हमारी भारतेन्दु-साहित्य-परिषद् का उद्घाटन करने के लिए और कौन योग्य व्यक्ति मिल सकता था? और सभापति चूंकि साहित्य-गगन में संचार करने का स्वप्न देखा करता था, उसने अन्त में अपनी प्रतिभा का आविष्कार इस तरह किया कि हमारी समिति का नाम भारतेन्दु है तो हमारे उद्घाटनकर्ता, मान्य अतिथि कमलेन्दु हैं, क्योंकि उनकी सुयोग्य विदुषी पत्नी का नाम कमला है; और आज मुझे इस मंच पर से घोषित करते हुए हर्ष होता है कि मनमोहन बाबू हमारे प्रथम राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल के सबसे युवक मन्त्री हैं, इसलिए आज वे हमारे लिए 'युवकेन्दु' भी हो गए हैं, अर्थात् युवकों में चन्द्रमा हैं। अतिथिगण खिलखिलाकर हंस पड़े और छात्रों ने तालियां बजाईं।

जब मन्त्री महोदय भाषण देने के लिए उठे तो सभा स्तब्ध थी। सामने लाउड-स्पीकर लगा था जिसकी आवाज़ बाहर सड़क पर भी पहुंच रही थी। उनके मुखार-विंद से साहित्य-सुमनों की वृष्टि होने लगी। वे बोले, 'आज का यह अत्यन्त पवित्र दिवस, बड़ा पुण्य दिन हमारे देश के इतिहास में पर्व की बेला है, इस दिन का स्वर्णाक्षरों में उल्लेख किया जाएगा, क्योंकि आज हमारे देश के प्रसिद्ध सम्राट भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ; आज नहीं, वर्षों पहले, शताब्दियों पहले, सहस्रा-ब्दियों पहले, हमारे पुरातन गौरवशाली अतीत काल में।'

लोग सतर्क होकर सुनने लगे। सामने की पंक्ति में बैठे साहित्यकार अपनी

कुर्सियों में जरा हिले। मन्त्री महोदय बोले, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भला इस देश में कौन नहीं जानता? और इस देश में ही क्या, दुनिया के कोने-कोने में ऐसा कौन-सा देश है, जो उनकी कीर्ति से परिचित नहीं है। जिसने सत्य के लिए अपना राज्य त्याग दिया, और स्वयं चाण्डाल के हाथ में बिका उस सत्यवादी भारतेन्दु राजा हरिश्चन्द्र का नाम कौन नहीं जानता?'

इतना भर कहने की देर थी कि लोगों ने कहकहा लगाना शुरू किया, विद्यार्थियों ने तालियां पीटीं और फर्श पर जूते रगड़ने शुरू किए। मन्त्री जी को पहले तो लगा कि उनका भाषण पसन्द किया जा रहा है पर बाद में पास बैठे हुए हिन्दी के प्रोफेसर साहब के चेहरे का विचित्र भाव देखकर उन्हें कुछ खटका जरूर हुआ। सभा में शोर तो हो ही रहा था, इसलिए प्रोफेसर साहब ने हिम्मत की और खड़े होकर धीरे से उनके कान में कहा, 'सर, आप सत्यवादी हरिश्चन्द्र की बात कह रहे हैं, पर यह समारोह साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बारे में है।'

'ऐसा?' मिनिस्टर साहब ने कहा, जो लाउड स्पीकर के जरिये लोगों तक स्पष्ट ध्वनि में पहुंच गया। 'कोई बात नहीं,' कहकर उन्होंने हाथ उठाकर सभा को शान्त रहने का आदेश दिया और अपना भाषण जारी किया, 'पर आज मैं सत्यवादी हरिश्चन्द्र की बात करने के लिए नहीं आया हूं, हालांकि वे भी भारत के इन्दु थे, भारतेन्दु थे। जो व्यक्ति सत्य के लिए अपने सर्वस्व का होम कर दे वह चन्द्रमा नहीं कहलाएगा तो कौन कहलाएगा? पर आज हम तो साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की जन्मतिथि मनाने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। मैं आपसे आग्रहपूर्वक निवेदन करूंगा कि इन दो भारतीय महापुरुषों के बीच आप कोई गलतफहमी न आने दें। एक पौराणिक युग के धर्मात्मा हैं तो एक ऐतिहासिक युग के साहित्यात्मा हैं...'

लोगों को आशा बंधने लगी। मन्त्री महोदय का भाषण बढ़ता चला, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सेवाओं को कौन नहीं जानता? हिन्दी साहित्य के लिए उन्होंने क्या-क्या नहीं किया? मैं आपसे इस मंच पर से पूछना चाहता हूं कि साहित्य का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है, विशेषतः हिन्दी साहित्य का, जिसे संपन्न और समुन्नत बनाने में उन्होंने योगदान नहीं दिया? उस हिन्दी साहित्य को, जिसमें बाद में चलकर तुलसीदास जी जैसे महाकवि पैदा हुए...'

विद्यार्थियों ने फिर तालियां बजाईं, पर इस बार चूंकि मन्त्री महोदय को

भरोसा था कि तुलसीदास हिन्दी के ही कवि थे, इसलिए वे जो कह रहे हैं वह बिलकुल ठीक कह रहे हैं, वे बोलते गए, 'अहा-हा ! क्या हमारी प्यारी हिन्दी भाषा है, और कैसे श्रेष्ठ कवि हैं हमारे संत तुलसीदास ! कैसी उज्ज्वल है उनकी रचना !'

और चूंकि स्कूल के कोर्स में उन्हें 'अरण्यकाण्ड' पढ़ाया गया था, वे तुलसीदास जी के काव्य से अपरिचित नहीं थे, बोले, 'कैसा सुन्दर उनका काव्य है—अहा-हा !

'जिमि पिपीलिका सागर थाहा।
महा मन्दमति पावन चाहा।'

और इस तरह उन्होंने भारतेन्दु की जन्मतिथि पर तुलसीदास जी पर जो कुछ भी मालूम था वह कह डाला और भारतेन्दु साहित्य-समिति के उद्घाटन की घोषणा कर डाली।

और जब वे भाषण समाप्त करके तथा चाय-बिस्कुट खाने के बाद मोटर में बैठे तो अपने सामने फड़फड़ाते हुए राष्ट्रीय झण्डे की तरफ देखकर गर्व से बोले कि हम लोग तो किसी भी प्रसंग को निभाने की शक्ति रखते हैं। इन साहित्य-वालों को बेवकूफ बनाने में भला हमें क्या देर लगती है ? ड्राइवर को उन्होंने खारी बावली के पहाड़ी डाक बंगले में चलने के लिए हुक्म दिया और उनके सामने मिसेज तारामती सहाय की मदभरी आंखें चौंधिया उठीं। देखें, आज की पार्टी कैसी खुलती है !

१६

हसरत अदा जान का गाना सुनकर मनमोहन बाबू की तबियत फड़क उठी। गाना वे बहुत कम जानते थे, पर जिस समझदारी के साथ वे गर्दन हिलाते या ताल ठोकते उसे देखकर क्या मजाल कि कोई कह दे कि मनमोहन बाबू पक्के गाने के पारखी नहीं हैं ! यह बात अलग है कि एकाध बार उनकी गर्दन बेसुरी तान पर हिल जाती और ताल अक्सर 'सम' के बाहर ठुक

जाता, पर इस मामले में सुनने वालों का बहुमत उन्हींके साथ था, क्योंकि शास्त्रीय संगीत की समझ बहुत कम लोगों में होती है, और उस महफिल में ता किसीको थी ही नहीं। खुद हसरत अदा जान भी, जहां तक संगीत शास्त्र का ताल्लुक था, बिलकुल मामूली थी, यानी तीसरा दर्जा पैसेंजर गाड़ी। लेकिन उसका कण्ठ बड़ा सुरीला था, और उससे बढ़कर उसका चेहरा बहुत ही हसीन था। उसकी चाल और हरकतों में एक अजीब-सी अदा और नजाकत थी जिसको देखकर बरबस आशिकों के दिलों पर छुरियां चल जातीं। ये आशिक वक्त-बे-वक्त बदलते रहते पर इस समय उनमें सबसे पहला नंबर हातिमभाई का था। उसे वे शहर के बाहर एक छोटे-से बंगले में रखे हुए थे और पूरा खाना-कपड़ा देने के बाद तीन सौ रुपया पॉकेट खर्च के लिए देते थे। इस समय तो वह उनके दिल की बेगम तो थी ही, लेकिन ज़िदगी के ताश के खेल में हुकुम का इक्का भी थी। जब उन्हें कोई बड़ा हाथ सर करना होता था तब वे उसकी चाल खेला करते थे और हमेशा फतह पाते थे। उनका पैंतीस लाख का टेण्डर अटका पड़ा था, और खुश किस्मती से उनके महकमे का मिनिस्टर एक तीस साल का नौजवान था जिसके जिस्म पर तो मोटे खद्दर के कपड़े थे पर भीतर ही भीतर एक फड़कने वाला कमज़ोर दिल था। जिन्दगी भर मनमोहन बाबू ने गरीबी और अपमान छोड़कर और कुछ भोगा नहीं था। पर घर में खाने के लाले पड़ते थे। जब जो चाहे दुत्कार देता था। पर किसी तरह वह पढ़ाई में ध्यान देते रहे। इसमें उनके यार-दोस्तों की मदद ज्यादा ज़िम्मेदार थी। उन्होंने चन्दा करके उन्हें बनारस भेजा। एक विशिष्ट जाति में पैदा होने के कारण उन्हें प्रोत्साहन दिया गया और फ्रीशिप मिल गई। वहां के राष्ट्रीय वातावरण का असर पड़ा तो सन् तीस के विद्यार्थी-आन्दोलन में कूद पड़े। गिरफ्तार हुए और छः महीने की जेल काटी सो सिर पर शहादत का सेहरा चढ़ गया। किसी कदर ले-देकर ग्रेजुएट हो गए, तो एकदम युवक नेता का मुकुट पा गए। प्रान्त की राष्ट्रीय दल की कार्यकारिणी-समिति में अपनी जाति के प्रतिनिधि के रूप में ले लिए गए। और सन् ३६—३७ का चुनाव आया तो असेम्बली का टिकट मिल गया। दो साल एम०एल०ए० रहे, फिर ४०—४१ के आन्दोलन आए तो जेल जाना पड़ा। उसमें अपनी मर्ज़ी या इच्छा की खास बात नहीं थी। और जब छूटकर आए तो पक्के नेता बन गए और अब मन्त्रिमण्डल में जगह पा गए। अव्वल तो उनके संस्कार जैसे थे वैसे थे ही, ज़िन्दगी में कोई सुख-विलास भोगने

को नहीं मिला। जवानी का खून गरम था, बगावत करता था। पिता ने बचपन में ही एक निपट गंवार देहाती लड़की से शादी कर दी थी जो देखने में भी बदसूरत थी। उस बेचारी को गंवार इसीलिए कहते थे कि पति उसका कॉलिज में पढ़ता था और वह प्राइमरी शाला की दहलीज़ भी नहीं चढ़ी थी। दोनों में पूरब और पच्छिम का अन्तर था। मनमोहन बाबू ने कॉलेज में लड़के-लड़कियों को साथ पढ़ते देखा था, उनके बीच हलके किस्म के रोमांस खिलते देखे थे, सिनेमा में उनके प्रकट स्वरूप दिखाई देते थे, और जवानी में जो उपन्यास पढ़े जाते थे उनमें तो क्या पूछना है ? मनमोहन बाबू स्वयं रोमांटिक तबीयत के थे और उनका जिगर बार-बार फड़क उठता था और उनके हृदय में एक कसक, एक वितृष्णा, एक उद्दाम अतृप्ति घर कर जाती। जब-तब मन में यही सवाल उभरता कि हमारी ज़िन्दगी तो बेकार हो रही है।

लेकिन जब वे मन्त्रिमण्डल में ले लिए गए तब तो उनके सामने ज़िन्दगी के वे सब दालान खुल गए जिनके स्वप्न उन्होंने फिल्मों और उपन्यासों की दुनिया में देखे थे। आज वे स्वप्न सत्य हो गए, रंगीन स्वप्न—इन्द्रधनुषों से भी अधिक सुहावने, अधिक मधुर, अधिक मादक। विवेक की लगाम कमज़ोर थी, आत्मा की आवाज़ उन्होंने जगाई नहीं थी, इसलिए शरीर का घोड़ा घुड़दौड़ में खुलकर खूंदाखांदी करने पर आमादा हो गया।

एक ही डर था कि मुख्य मन्त्री को ये बातें न मालूम पड़ें, और अखबारों में उनका ज़िक्र न निकले। दिल के गुबारों को निकालने के लिए उस पहाड़ी डाकबंगले जैसी अलग-थलग एकान्त जगह ही बड़ी मुफीद थी। वहां न अखबारों की आंख पहुंच सकती थी, और न मुख्य मन्त्री की निगाह। जो लोग उनके आनन्द-विलास में शामिल थे उनकी दुनिया ही अलग थी। और हातिमभाई को अपने तजुर्बे से मालूम था कि अखबारों का मुंह बन्द करने के लिए चांदी के लड्डू से बढ़कर कोई चीज़ कारगर नहीं होती। डॉ० छदामीलाल के 'जागरण' आफिस में दो बार वे हज़ार रुपये की रकम सहायता के रूप में गिनाकर आए थे। रघुनाथ सहाय ने मनमोहन बाबू को आश्वासन दिया कि हातिमभाई के इन्तजाम और सतर्कता में एक नुक्ते की भी खोट नहीं रह सकती—माननीय मिनिस्टर साहब बिना किसी संकोच या अंदेशे के रहें।

मनमोहन बाबू को अपने दिल को समझाने के लिए और दूसरे पर ज़िम्मेदारी

ठेलने के लिए ऐसे ही आश्वासन की ज़रूरत थी। उसके मिलते ही उनकी बांछें खिल उठीं। उन्होंने अपने आपको उस क्षण के आनन्द-सागर में हिलोरें लेने के लिए पूरी तरह छोड़ दिया, स्वच्छन्द और निर्बन्ध। आज का मोहक और उन्मादक अनुभव ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य है, कल की कल देखी जाएगी।

एक बार उन्हें झिझक हुई, जब 'शैम्पेन' का प्याला उनके सामने खुद श्रीमती तारामती सहाय ने पेश किया। सामने मिस पैटर्सन भी अपने नायलॉन के स्कर्ट में बैठी हुई थी जिसका गला इतना खुला था कि उसके गौरवर्ण उभरे हुए स्तन बाहर झांक रहे थे। उसने गहरे लाल रंग की लिपस्टिक लगाई थी और उसके चेहरे पर भी उन्माद का भाव खिल उठा था। वह भी अपनी चंचल आंखों से मानो मनमोहन बाबू से मनुहार कर रही थी कि ले लीजिए न, थोड़ी-सी शैम्पेन लेने में क्या हर्ज़ है?

और तारामती? आज उसके निर्लज्ज बनाव-शृंगार ने तो हद कर दी थी। उसका चेहरा वासना से आरक्त हो उठा था। उसकी साड़ी भी इतनी पतली थी कि भीतर का पेटीकोट और बॉडिस साफ-साफ दिखाई दे रहे थे। वह भी अपने तारुण्य के समस्त वैभव का प्रदर्शन करने में कोई लज्जा अनुभव नहीं कर रही थी। उसने शैम्पेन का प्याला क्या दिया मानो अपने व्यक्तित्व का सारा सौन्दर्य ही मनमोहन बाबू के सामने उघाड़कर रख दिया कि लीजिए शैम्पेन के साथ यह भी आपकी सेवा में समर्पित है।

एक पर्वतीय डाक बंगले का एकान्त, सामने रूपवती कामिनियों का उन्मादक सौन्दर्य, और कांच के प्याले में छलकती हुई गुलाबी शराब।

इन प्रलोभनों से तो विश्वामित्र जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि नहीं बच पाए, सर्वसाधारण कमज़ोरियों को, अतृप्त आकांक्षाओं और क्षुधाओं को अपने शरीर में समाकर रखने वाले मनमोहन बाबू की भला गिनती ही क्या थी?

उन्होंने केवल पूछा कि यह क्षेत्र ड्राइ एरिया (निषिद्ध क्षेत्र) तो नहीं है।

हातिमभाई ने फौरन उत्तर दिया, 'जी नहीं, जी नहीं। ड्राइ एरिया की सरहद इस डाक बंगले से पांच मील पीछे रह जाती है। यह तो जंगली इलाका है, आदिवासियों की बस्ती है। यहां भला ड्राइ एरिया कैसे रहेगा?'

मनमोहन बाबू की विवेक-बुद्धि शान्त हो गई कि वे कानून भंग नहीं कर रहे हैं। उन्होंने प्याला लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो हातिमभाई वहां से खिसक

गए। रघुनाथ सहाय तो पहले ही वहां से हट गए थे और बावर्चीखाने में डिनर के इन्तज़ाम की देख-रेख में लग गए थे।

उस छोटे-से कमरे में रह गए थे सिर्फ मनमोहन बाबू, मिसेज़ तारामती सहाय और मिस पैटर्सन। बगल के कमरे में हसरत अदा जान और उसके साज़िन्दे तबले और सारंगी की ठोक-पीट कर रहे थे।

मनमोहन बाबू ने तारामती के हाथ से शैम्पेन का प्याला ले लिया। लेते-लेते उनकी उंगलियां मिसेज़ सहाय की उंगलियों को स्पर्श कर गई। मिसेज़ सहाय ने अपनी उंगलियां हटाने की तनिक भी कोशिश नहीं की, बल्कि प्याले को वे तब तक पकड़ी रहीं जब तक मनमोहन बाबू ने उसे पी न लिया। शैम्पेन के स्वाद में उन्होंने अपने होंठों पर जीभ फेर ली।

'इसे शराब कहना इसका अपमान करना है' श्रीमती सहाय ने कहा, 'यह तो एक तरह का अंगूरी शरबत है, जो फ्रांस की रमणियों को विशेष प्रिय है। हमने आपको असली शराब तो दी ही नहीं।'

शरबत का नाम सुनकर मनमोहन बाबू का मन शान्त हुआ। इतने में मिस पैटर्सन ने भी शैम्पेन का एक और प्याला आगे बढ़ाया।

मनमोहन बाबू ने भी अपना हाथ आगे बढ़ाया, पर मिस पैटर्सन कुर्सी से खड़ी होकर बोली, 'ठहरिए, आप तकलीफ न कीजिए। मैं खुद इसे आपको पिला देती हूं।'

वह उठी और अपने बाएं हाथ से हलके से मनमोहन बाबू का सिर थामा, और दाहिने हाथ से प्याला उनके ओठों को लगाने के लिए सामने झुकी, सो इस तरह कि उसकी छाती और शैम्पेन का प्याला दोनों ही मनमोहन बाबू के मुंह के पास आ गए। मिस पैटर्सन की लैवेण्डर और पाउडर की उन्मादक सेण्ट मनमोहन बाबू की नासिका में भर गई और उनका सन्तुलन बिगड़ने लगा। दूसरा प्याला रिक्त करके अपना चेहरा पीछे करने के बहाने उन्होंने मिस पैटर्सन की छाती पर एक क्षण के लिए टिका दिया। उस मांसल स्पर्श के कारण उनके शरीर में एक कंपकंपी भर गई जो शैम्पेन के नशे के कारण विद्युत् की लहरी की तरह सिर से नीचे तक फैल गई।

तारामती ने मिस पैटर्सन की तरफ आंखें मटकाते हुए देखकर कहा, 'कहो, कैसी रही?'

यह कार्यक्रम कितनी देर तक चलता रहा और किस प्रकार चलता रहा, पता नहीं। मनमोहन बाबू धुत होकर इस दुनिया से उठकर परियों और अप्सराओं के स्वर्ग में विचरण करने लगे। उसमें हसरत अदा जान के संगीत ने और उसके नाज़-नखरों ने आग में तेल झोंकने का काम किया।

उधर बावर्चीखाने में रघुनाथ सहाय ने हातिमभाई को मुबारकबाद दिया कि अब तुम्हारा टेण्डर पास होने में कोई शक नहीं है।

और हातिमभाई ने रघुनाथ सहाय को मुबारकबाद दिया कि लाला किरपाराम की पतंग कटने में देर नहीं है।

दोनों अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं के सफल होने की सम्भावना देखकर ठहाका लगाकर हंस पड़े और दोनों ने गिलास से गिलास टकराकर एक दूसरे की 'हेल्थ' के लिए पांचवां जाम चढ़ाया।

इधर मनमोहन बाबू अपना आपा खोकर आनन्द-लोक में विहार कर रहे थे कि चपरासी ने कहा, 'हुज़ूर, एस० डी० ओ० साहब हाज़िर हुए हैं।'

'यहां कौन साला एस० डी० ओ० आया है—बुलाओ उसे।'

दो मिनट में एक वृद्ध व्यक्ति सामने आए जो काली पतलून पर खाकी कोट पहने हुए थे। ये ओवरसियर से बढ़ते-बढ़ते एस० डी० ओ० तक पहुंचे थे और अगले वर्ष ही रिटायर होने वाले थे। घर में तीन लड़कियां शादी को बैठी थीं जिनकी चिन्ता में उनके कन्धे झुके हुए थे, सिर भी झुका हुआ था और उनके बाल पके हुए थे। गले में तुलसी की माला थी।

उनकी वेश-भूषा देखकर ही मनमोहन बाबू तैश में आकर बोले, 'तुम एस० डी० ओ० हो? किस ब्लडी फूल ने तुम्हें एस० डी० ओ० बनाया? और तुम इस बेवक्त यहां क्यों आए हो?'

एस० डी० ओ० साहब ने पहले प्रश्न का उत्तर तो नहीं दिया, पर दूसरे के जवाब में बोले, 'साहब, आप डाक बंगले का इन्स्पेक्शन करने वाले हैं ऐसा ऑर्डर मुझे मिला, इसीलिए आया हूं।'

मनमोहन बाबू नशे में गुर्राकर बोले, 'हमने इन्स्पेक्शन कर लिया है। अब तुम यहां से फौरन के पेश्तर 'गेट आउट' करो—चलो, जल्दी गेट-आउट!'

वह बेचारा एस० डी० ओ० सलाम करके बाहर चला गया, बड़ा दुखी और अपमानित होकर। उसका चेहरा स्याह पड़ गया। हृदय में जैसे सौ छुरियां बिंध

गई। मन ही मन कहता रहा, आज तीस साल की नौकरी होने को आई, बड़े-बड़े अंग्रेज़ों के हाथ के नीचे काम किया, पर ऐसी दुर्गति कभी नहीं हुई। दुःख से, अपमान से, ग्लानि से उसकी आंखों में आंसू आ गए।

रघुनाथ सहाय को जब पीछे बावर्चीखाने में जाकर उनकी पत्नी ने यह घटना सुनाई तो वे फौरन बोले, 'हातिमभाई, यह बात तो अच्छी नहीं हुई। वह चपरासी भी कैसा बेवकूफ निकला कि सीधा मिनिस्टर साहब के पास उन्हें ले गया और हम इधर पिछवाड़े ही बैठे रहे। जाओ-जाओ, हातिमभाई, ज़रा उस एस० डी० ओ० को सम्हालना। मैं यहां हूं, इसका उसे पता न चलने पाए।'

हातिमभाई ने क्या कुछ किया सो वे जानें, पर रघुनाथ सहाय को खटका हुए बिना नहीं रहा। उन्होंने अपने निजी चपरासी से कहा कि कल सुबह ज़ाकर एस० डी० ओ० से कह देना कि वे राजधानी आकर हमसे मिल लें।

पर मनमोहन बाबू अपनी ही धुन में धुत पड़े थे। उन्हें किसी बात का अंदेशा नहीं हुआ। उलटे अपनी हुकूमत और सत्ता का अभिमान ही हुआ। उनके रागरंग में कोई फर्क नहीं पड़ा और जब मध्यरात्रि के बाद वापस लौटने का वक्त आया तो बोले कि हम अब सरकारी गाड़ी से वापस नहीं जाएंगे, मिसेज़ सहाय की गाड़ी से जाएंगे।

मिसेज़ सहाय खुद गाड़ी हांकने के लिए बैठीं और मिनिस्टर साहब को पास बैठा लिया। अपने पति से बोलीं कि आप मिनिस्टर साहब की गाड़ी में आइए। मिस पैटर्सन से भी इशारा किया कि आओ, तुम भी इसी गाड़ी में चलो। वह भी सामने की सीट पर आकर बैठ गई। पीछे की तीनों सीटें खाली थीं, पर मिसेज़ सहाय ने किसीको नहीं बिठाया और गाड़ी स्टार्ट कर दी। अगल-बगल मिसेज़ सहाय और मिस पैटर्सन और बीच में मनमोहन बाबू। गाड़ी हवा से बातें कर रही थी और उसके हिलने के कारण कहिए या धक्कों के कारण इधर से मिस पैटर्सन और उधर से मिसेज़ सहाय उन्हें ठेलती जाती थीं और इन दोनों सेण्टों से ओतप्रोत कोमलांगों के बीच मनमोहन बाबू सैंडविच की तरह दबे जा रहे थे, मीठे-मीठे दबे जा रहे थे। जब उनका बस न चला तब उन्होंने अपने दोनों हाथ ऊपर करके एक हाथ मिसेज़ सहाय के गले में परिवेष्टित किया और दूसरा मिस पैटर्सन के। दोनों महिलाएं आधुनिक सभ्यता के रंग में रंगी थीं, उन्होंने अपने सिर मनमोहन बाबू के कन्धों पर टिका दिए।

मोटर हवा से बातें कर रही थी और मनमोहन बाबू का मन उस हवा के झोंके के साथ उड़कर स्वर्ग-सुख के साम्राज्य में विहार कर रहा था। और मिसेज़ सहाय के चेहरे पर एक मन्द स्मित था, विजय की गर्वीली मुस्कराहट।

१७

पी० डब्ल्यू० डी० के एस० डी० ओ० शर्मा जब रघुनाथ सहाय से मिलने के लिए उनके बंगले पर गए तो अपना स्वागत-सत्कार देखकर अवाक रह गए। सहाय साहब ने अपनी पत्नी से खुद चाय बना लाने के लिए कहा, और गरम पकौड़ियां बनाने का हुक्म दिया। बेचारे शर्मा जी, लिहाज़ और अदब के साथ मिनट-मिनट पर उठ खड़े होते। भला डिप्टी सेक्रेटरी की मेम साहब उनकी इतनी आवभगत करें यह कैसा विचित्र संयोग है! कैसा सौभाग्य!

'आपका रिटायरमेन्ट कब हो रहा है शर्मा साहब?'

'अगली जून में होगा, पर साहब, मैं आज ही रिटायर करने की दरख्वास्त लेकर आया हूं। मुझसे अब यह नौकरी नहीं होती।' शर्माजी ने कहा।

'क्यों, क्यों भला, ऐसी क्या बात हो गई? ऐसा कैसे हो सकता है कि हमारे पुराने अनुभवी अफसरों को हम इतनी जल्दी छुट्टी दे दें। इतने बड़े-बड़े 'कन्स्ट्रक्शन' के काम पड़े हैं, इतनी बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियां हैं, उन्हें निबाहने के लिए आदमी कहां हैं? मैंने तो आपको इसलिए बुलाया था कि मैं आपको एक साल के 'एक्स-टेन्शन' का आर्डर दे दूं जो बाद में चलकर तीन साल तक खींचा जा सकता है। और आप यह उल्टी बात कर रहे हैं कि आज ही रिटायर कर दो। वाह, यह भी खूब रही! मेरे विश्वासपात्र आदमियों के बिना इतना बड़ा डिपार्टमेण्ट भला मैं क्या चलाऊंगा? देखो तो डियर, ये शर्मा जी क्या कह रहे हैं? मैंने ही तुमसे कितनी बार कहा था कि शर्मा जैसा ज़िम्मेदार और वफादार अफसर इस महकमे में मुश्किल से मिलेगा। क्या मैं इन्हें आसानी से छोड़ सकता हूं?'

शर्मा जी बेचारे इस शहदभरे स्नेह-प्रदर्शन के सामने भौंचक्के रह गए। पर चूंकि डाक बंगले के अपमान की चोट उनके जैसे ईश्वर-भीरु आदमी के लिए बड़ी

गहरी थी, वे बोले, 'आप जो कहते हैं उसके लिए मैं आपका शुक्रगुज़ार हूं साहब। पर परसों रात मिनिस्टर साहब ने मेरा जो अपमान कर दिया वह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। रातभर मर्माहत-सा तड़पता रहा। आखिर मेरा क्या कुसूर था? मेरे इलाके में उनका दौरा था, वे खारी बावली के डाक बंगले का इन्स्पेक्शन करने वाले थे, ऐसी सरकारी इत्तला थी, इसीलिए वहां जाने की मेरी ड्यूटी थी। वरना मैं उस मयखाने में क्यों जाता? वहां उन्होंने मुझे जैसा झिड़का वैसा तो इस तीस साल की सर्विस में किसीने नहीं किया। ये सुराजी क्या आ गए, आफत आ गई। इतने बरसों से इनके लिए मुल्क ने मानताएं-मिन्नते कीं, और ये ऐसे निकले! ना साहब, अब इस ज़माने में भले आदमी की कोई गुज़र नहीं है—आप मुझे छुट्टी ही दे दीजिए। मैं आपका बड़ा अहसान मानूंगा। मैं पूजा-पाठ वाला आदमी ठहरा, ऐसी इज़्ज़त-उतारू नौकरी अब मुझसे नहीं होगी।'

रघुनाथ सहाय भीतर ही भीतर थोड़े सकपकाए। उन्हें यह ताज्जुब भी हुआ कि दुनिया में ऐसा भी कोई मातहत कर्मचारी हो सकता है जो उनके कृपा-प्रसाद को अस्वीकार कर दे! फिर भी मामले की संगीनी जानते थे, अपना धीरज रखकर बोले, 'हां शर्मा, मुझे कुछ पता चला कि ऐसी कोई वारदात हो गई थी, पर मिनिस्टर साहब ने खुद मुझसे कहा कि उन्हें इसका रंज है, उनसे गलतफहमी हो गई। वे तुम्हें ज़ुल्फिकार अली एस० डी० ओ० समझ बैठे जिसके खिलाफ रिश्वतखोरी की जबर्दस्त शिकायत थी। तुम तो जानते हो कि वह कितना बदनाम मुलाज़िम है, और अब तक मैं उसे इसी 'रहम' पर बचाता रहा कि बाल-बच्चे वाला आदमी है, सस्पेंड (मुअत्तिल) कर दूंगा तो मासूम बच्चों की बद्दुआएं मुझे लगेंगी। पर जब मिनिस्टर साहब के पास बात पहुंची तो ऐसे खार खाकर बैठे कि सामने दिखे तो कच्चा चबा जाएं। अपने मिनिस्टर साहब बड़े ऊंचे किस्म के आदमी हैं—कॉरप्शन (भ्रष्टाचार) तो उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाता।'

मिनिस्टर मनमोहन बाबू ने तो ज़ुल्फिकार अली का नाम तक नहीं सुना था और डाक बंगले के डिनर के बाद उनकी रघुनाथ सहाय से मुलाकात नहीं हुई थी। वहां से लौटते ही वे इतने थक गए कि तबीयत नरम हो गई और आराम में सारा दिन बिताया। पर रघुनाथ सहाय पुराने तपे हुए अफसर थे जिन्होंने कई घाट का पानी पिया था। बात बनाने में अपनी सानी नहीं रखते थे।

शर्मा जी कुछ समझ नहीं सके कि बात क्या है? असमंजस में पड़ गए। अपने

अनुभव में और डिप्टी सेक्रेटरी साहब के बयान में ज़मीन-आसमान का फासला था। दोनों का जोड़ मिलाएं तो कैसे मिलाएं? इसी पसोपेश में थे कि साहब ने परिस्थिति ताड़ ली और बोले, 'देखो शर्मा, आप जैसे तजुर्बेकार बूढ़े-बुज़ुर्गों को जल्दबाज़ी में कोई काम नहीं करना चाहिए। अभी तीन बच्चियों की शादी होनी है। जब तक नौकरी में हो, अच्छा लड़का मिलने की ज़्यादा उम्मीद है, आखिरकार सरकारी अफसर का दामाद बनने की हविस किसे नहीं होती? रिटायर हो जाओगे तो बच्चियों को ठिकाने से लगाने में तकलीफ होगी। यदि आपको इस डिवीज़न में नहीं रहना है तो मैं दूसरा डिवीज़न दे देता हूं जहां पचास रुपये का अलाउन्स भी है। सोच लो, आखिर सिर में राख डालने से क्या फायदा?'

डिप्टी सेक्रेटरी की आखिरी बात ने शर्मा के दिल को पानी बना दिया। पिता सारा अपमान सहन कर सकता है, पर अपनी सयानी लड़कियों के विवाह को खतरे में नहीं डाल सकता। और वे एक छोड़कर तीन-तीन घर में बैठी हैं। डेढ़-डेढ़ साल का अंतर है और सबसे छोटी की उम्र भी सत्रह-अठारह पर चल रही है। और फिर अपनी पत्नी का चिन्ताग्रस्त चेहरा भी उनकी आंखों के सामने नाच उठा, उस पत्नी का जो परिवार की चिन्ताओं के कारण असमय ही वृद्धा हो गई थी और जिसके चेहरे की झुर्रियां गिनना मुश्किल था। ज़रूरत और गरज़ जैसा अभिशाप नहीं होता। वह सारे अपमान को, खून के घूंट को पी जाने की ताकत दे देती है।

शर्मा ने गर्दन नीची कर ली और अपने गले की तुलसी की कण्ठी को स्पर्श करते हुए कहा, 'जैसी आपकी मरज़ी। आप मेरे खैरख्वाह हैं, मैं आपके कहने के बाहर थोड़े ही जा सकता हूं?'

रघुनाथ सहाय ने संतोष की सांस ली और एक ही हफ्ते के भीतर शर्मा का तबादला राजधानी से तीन सौ मील दूर के इलाके में कर दिया जहां एक नई नहर की खुदाई का काम चल रहा था। अलाउन्स भी, जैसा वादा किया था, बढ़ गया था और मिनिस्टर साहब को इसकी खबर तक नहीं मिली।

रघुनाथ सहाय ने फौरन टेलीफोन लगाकर हातिमभाई को खबर दी कि मामला दब गया है, और बारूद के सन्दूक पर पड़ा हुआ गुल बुझ चुका है। कहते हैं, शर्मा के पास किसी गुरु की सिद्धि है, और उसका दिमाग फिरा तो वह किसी-को कुछ नहीं समझता। यदि वह लाला किरपाराम के पास चला जाता, या

सीधा मुख्य मन्त्री के पास खड़ा हो जाता, या फिर किसी अखबार वाले के यहां पहुंच जाता तो क्या मुसीबत होती ?

लाला किरपाराम ! बस अब उनका टिकट कटने का वक्त भी आ गया है। मिनिस्टर साहब अपने चंगुल में है और वह दिन दूर नहीं है कि इस महकमे का एक-छत्र अधिकार मुझे ही मिल जाए। फिर हातिमभाई ही क्या उनके दादा भी आसमान से उतरकर मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगेंगे।

चार्ज देने के बाद शर्मा जी लाला किरपाराम से विदा लेने के लिए उनके बंगले पर पहुंचे तब लालाजी के कानों पर भी उस पहाड़ी डाक बंगले की घटना की कुछ-कुछ भनक पड़ चुकी थी। चूंकि मिनिस्टर साहब का ज़ाती मामला था इसलिए वे रस्मी तौर पर इनक्वायरी तो नहीं कर सके पर गैररस्मी तौर पर उन्होंने कुछ पूछताछ ज़रूर शुरू कर दी थी। इसकी खबर रघुनाथ सहाय को मिली और उन्होंने फौरन जाकर मिनिस्टर मनमोहन बाबू के कान भरे। अब चूंकि उनके सम्बन्ध काफी अनौपचारिक और मित्रता के हो गए थे, वे बोले कि उस पहाड़ी डाक बंगले की तरह तो दर्जन डाक बंगले हमारे सूबे में हैं, पर लाला-जी के रहते हुए हमारी पार्टियां निष्कण्टक नहीं होंगी। लालाजी की हिमाकत तो देखिए कि उन्होंने गैररस्मी जांच-पड़ताल शुरू कर दी है !

मनमोहन बाबू का पानी तो पहले से उथला था ही—फौरन खौल उठा। भन्नाकर बोले, 'उन्हें हमारे व्यक्तिगत मामले में दस्तंदाज़ी करने का क्या हक है ?'

'हक तो कुछ नहीं है। फिर भी हिमाकत तो है ही।'

'हम इस आदमी को सेक्रेटरी नहीं चाहते। हम इसे अभी छुट्टी दे देते हैं।' मनमोहन बाबू ने कहा।

'नहीं साहब, मेरी अदना राय में हमें जल्दबाज़ी से काम नहीं करना चाहिए। आखिर वह आॅल इण्डिया इंजीनियरिंग सर्विस का सीनियर आदमी है, उसे इतनी आसानी से छुट्टी नहीं दी जा सकती।' रघुनाथ सहाय ने मन ही मन खुश होकर कहा। उन्हें अपना उत्साह दबाने में बड़ी कठिनाई अनुभव हो रही थी।

'तो फिर ?' मिनिस्टर साहब ने सिर खुजलाकर पूछा।

'एक रास्ता निकल सकता है। अपने पास सेंट्रल गवर्नमेन्ट से एक मेमो आया है कि उन्हें पंजाब की किसी बड़ी नहर-योजना के लिए तजुर्बेकार इंजीनियरों की ज़रूरत है। लालाजी के लिए वह ठीक भी रहेगा। उनकी जन्मभूमि पास है,

बुढ़ापे में उनका वहीं पहुंच जाना ही ठीक है। मैं समझता हूं, वे भी खुश ही रहेंगे।'

'यह ठीक है। मैं आज ही उन्हें बुलाकर पूछ लेता हूं।'

'आप स्वयं क्यों पूछते हैं साहब ? आप देखिए तो सही, मैं खुद ही ऐसी चावी घुमाता हूं कि वे अपने आप आपके बंगले के चक्कर काटेंगे और कहेंगे कि मुझ-पर इतनी इनायत कर दीजिए और पंजाब जाने के इस चांस के लिए मेरी सिफारिश कर दीजिए। फिर आपकी जो मर्जी हो वह उनसे कह दीजिए।'

'शाबाश मिस्टर सहाय! आप सचमुच एक इन्टेलिजेन्ट ऑफिसर हैं। हमारे डिपार्टमेन्ट के सेक्रेटरी तो आप ही बन सकते हैं।'

रघुनाथ सहाय घर लौटे तो उनकी मोटर हवा से बातें कर रही थी। पोर्च में मोटर रुकते ही चिल्ला उठे, 'डियर, अरे माई डियर, तुम कहां हो ?'

वैसे ही भागे-भागे गए और अपनी औरत से लिपट पड़े जो नहाने की तैयारी में बाथरूम की तरफ जा रही थी। बोले, 'काम सोलहो आना बन गया। लालाजी चले, और हम सेक्रेटरी बन गए। मिनिस्टर साहब ने अभी मुझसे कहा है।'

'सच ?' मिसेज़ सहाय ने मुकराहट से जगमगाते हुए कहा। और फिर धीमे से सहाय साहब के दाहिने गाल की चिकोटी काटकर कहा, 'तुम हो ही वैसे होशि-यार, माई डार्लिंग। मैं यह जानती थी, इसीलिए तो दस मर्दों को छोड़कर तुमसे शादी की।'

१५

दूसरे दिन रघुनाथ सहाय लाला किरपाराम के बंगले पर जाकर बोले, 'सर, एक बड़ा 'चान्स' आया है। आप मदद करें तो मेरा कल्याण हो जाएगा। आप मेरे डिपार्टमेंट के 'हेड' हैं, आपके सपोर्ट (समर्थन) के बिना बात आगे नहीं बढ़ेगी।'

'मेरे सपोर्ट से क्या होगा, बताइए! आजकल मिनिस्टर सब काम डायरेक्ट कर लेते हैं। सेक्रेटरी को कौन पूछता है, एंजी।'

'साहब, मिनिस्टर तो आते-जाते रहते हैं। आज ये हैं, कल दूसरे आ सकते हैं। पर हमारा सेक्रेटरी तो परमानेण्ट है। हमारा तो वही मालिक है। उसकी मदद के बिना तो हम एक इंच आगे नहीं बढ़ सकते।'

लालाजी बेचारे सीधे-सादे बूढ़े आदमी थे। इतनी खुशामद से पिघल गए। बोले, 'मिनिस्टर साहब से तो आपकी अच्छी पटती है, आप चाहें तो सीधे अपना काम करा सकते हैं। पर आप मुझसे ज़िक्र कर रहे हैं यह आपकी शराफत है। खैर कहिए, मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं।'

'पंजाब में एक बड़ी नहर बन रही है। दुनिया की नहरों में उसकी गिनती होगी। वहां उन्हें कुछ सीनियर इंजीनियरों की आवश्यकता है। अपने सूबे से भी एक आदमी की मांग की गई है। आपका सपोर्ट मिल जाए तो वहां चला जाऊं। इस सेक्रेटरिएट की नौकरी में क्या धरा है? फील्ड (मैदान) का आदमी हूं, फील्ड में रहूंगा तो कुछ कर दिखाऊंगा। सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट की नौकरी है, प्रधान मन्त्री उस स्कीम में जाती तौर पर इंटरेस्ट ले रहे हैं। कहीं उनकी नज़र पड़ गई तो किसी फॉरेन पोस्ट पर भेज देंगे। आगे चलकर न जाने कितने ओपर्निग्ज़ हो जाएंगे। जब तक नहर पूरी नहीं होगी तब तक एक्स्टेंशन मिलता रहेगा। ऐसा 'चान्स' दुबारा नहीं आ सकता।'

जिस तरह से रघुनाथ सहाय ने बात उठाई थी, वह सधे हुए तीर की तरह ठिकाने लगी। जो दलीलें वे पेश कर रहे थे वे सब की सब लालाजी को आकर्षक लग रही थीं। इस नई मिनिस्ट्री में वे अपने आपको सुखी नहीं पाते थे, और अब यहां से उनका दिल भी उचट गया था। इसलिए यह 'चान्स' मुझे ही क्यों न मिल जाए यह हविस उनके दिल में पैदा हो गई। ज़रा सोचकर बोले, 'देखिए मिस्टर सहाय, अगर आप फ्रैंकली माइन्ड न करें तो मैं कहूंगा कि इस चान्स में तो मैं खुद ही इंटरेस्टेड हूं, एंजी। बुढ़ापे में अपने घर के पास पहुंच जाऊंगा, बच्ची की शादी करने में सहूलियत होगी, एंजी। इसलिए, आप माइन्ड न करें तो मैं ही इसकी कोशिश कर लूं।''

'कोई बात नहीं, कोई बात नहीं···' रघुनाथ सहाय ने फौरन कहा। 'आप यदि खुद 'इंटरेस्टेड' हैं तो मैं अपना नाम तुरन्त वापस ले लेता हूं। मेरा तो ख्याल है कि यहां डिपार्टमेण्ट की 'हेडशिप' है, गवर्नमेण्ट की भी 'अथॉरिटी' है इसलिए आप जाना पसन्द नहीं करेंगे। लेकिन अगर आपकी इच्छा हो तो मैं सच्चे दिल से

कहता हूं कि मैं ग्रापके रास्ते में हर्गिज़ नहीं ग्राऊंगा। मैं तो पुराने डिसिप्लिन को मानने वाला हूं, ग्रपने 'हेड' के खिलाफ तो कभी नहीं जाऊंगा।'

लालाजी को रघुनाथ सहाय की बात सुनकर तसल्ली हुई, पर वे जानते थे कि मामला तो मिनिस्टर के हाथ में है, ग्रौर रघुनाथ सहाय की उनसे खूब छनती है; ग्रगर वह बीच में ही टांग मार दे तो वह तो चला जाएगा ग्रौर मैं यहीं सड़ता रहूंगा। इसलिए उसका तहेदिल से पूरा 'सपोर्ट' मिलना जरूरी है। इसलिए उन्होंने कहा :

'ग्राप यदि मेरे बारे में मिनिस्टर से सिफारिश करें तो मैं ग्रपने बाद सेक्रेट्रीशिप के लिए ग्रापका ही नाम सुझा दूंगा। यों खन्ना भी काफी सीनियर है, ग्रौर उसका चान्स भी ग्रा सकता है, पर उसे सेक्रेटरिएट का तजर्बा नहीं है इस बिना पर मैं ग्राप ही को 'सपोर्ट' करूंगा।'

'ग्रापका जैसा हुक्म हो। मैं तो ग्रापकी मर्ज़ी के बाहर जा ही नहीं सकता। ग्राप मुझे सेक्रेटरी न भी बनाएं तब भी ग्रापका खिदमत करना मेरा फर्ज है। वैसे ग्रपने मिनिस्टर साहब बहुत भले ग्रादमी हैं। वे किसीकी तरक्की के मार्ग में ग्रड़चन नहीं डालेंगे। फिर भी ग्राप कहते हैं तो मौका मिलने पर मैं भी उनसे बात कर लूंगा।'

लाला किरपाराम मन ही मन बोले, बड़ा भला ग्रादमी है। मैं नाहक इसके बारे में गलत सोचता था। फिर ज़ोर से बोले, 'इस मामले को ग्राप जितनी जल्दी उठाएं उतना ही ग्रच्छा है। वह सेक्रेटरिएट के एक्स्टेंशन का पैंतीस लाख का टेंडर पड़ा है। उसीको 'डिसकस' करने के लिए ग्राप मिनिस्टर के पास ग्राज ही चले जाइए। मैं उस फाइल पर यही लिख देता हूं।'

'जो ग्रापका हुक्म! मैं मिनिस्टर साहब से मिलने के बाद ग्रापको टेलीफोन पर इशारा कर दूंगा। ग्राप ग्रपॉइण्टमेण्ट (निर्धारित समय) लेकर उनसे मिल लें। ग्रापकी मैं थोड़ी-सी भी खिदमत कर सका तो खुद को बड़ा खुशकिस्मत समझूंगा।'

बाद का काम बड़ा ग्रासान था। मिनिस्टर साहब ने हातिमभाई का टेण्डर पास कर दिया, ग्रौर सेक्रेटरी लाला किरपाराम को सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट की मांग पर यहां से स्पेग्रर (ग्रलग) कर दिया ग्रौर लालाजी की सिफारिश पर ही रघुनाथ सहाय को पी० डब्ल्यू० डी० का नया सेक्रेटरी नियुक्त कर दिया। चूंकि ये निर्णय ज़रा महत्वपूर्ण थे इसलिए ग्रॉर्डर पास करने के पहले ये फाइलें लेकर वे मुख्य मन्त्री

श्री जोशी जी से सलाह करने चले गए। वहां देखा तो जोशी जी हातिमभाई के अनुकूल पहले से ही बने बैठे थे क्योंकि गिरधारी ने मामाजी की कैनवेसिंग (मत-प्राप्ति) पहले से ही कर रखी थी। इस टेण्डर के पास हो जाने के बाद हातिमभाई ने इकरार किया था कि वह गिरधारी का बंगला रुपये में चार आने की कीमत पर बना देगा।

जोशी जी खुश थे क्योंकि गिरधारी खुश था और उसके मोह को वे टाल नहीं पाते थे।

गिरधारी खुश था कि उसका खुद का शानदार बंगला चौथाई कीमत में बनने वाला था, जब कि उसका प्रतिस्पर्धी धनंजय अभी किराये के मकान में ही रह रहा था।

लाला किरपाराम खुश थे क्योंकि उन्हें पंजाब जाने का मौका मिल रहा था। उन्हें इसी बात का रंज था कि वे बेचारे रघुनाथ सहाय के मार्ग में बाधा बनें, हालांकि रघुनाथ सहाय को, सेक्रेटरीशिप के लालच में सूबा छोड़ने की कौड़ी भर इच्छा नहीं थी।

रघुनाथ सहाय भी खुश थे क्योंकि उनकी सेक्रेटरी बनने की महत्वाकांक्षा आज पूरी हो गई थी।

और मिनिस्टर मनमोहन बाबू खुश थे कि उन्हें एक रात में छैल-छबीले बन-कर मौज-मजा करने को मिला था।

उधर उन तीन बेटियों का चिन्तित बाप बेचारा शर्मा भी खुश था कि उसे प्रमोशन पर तब्दील कर दिया गया था और उसे एक साल का एक्स्टेन्शन भी दे दिया गया था।

धन्य है यह शासन जिसमें सब कोई खुश हों, कोई नाराज न रहे। आखिर स्वराज्य इसीलिए तो चाहिए था कि लोग खुशहाल रहें, सुख-समृद्धि से परिपूर्ण रहें।

शासन का यह स्वरूप देखने-समझने में धनंजय को देर लगी, क्योंकि वह उसके बहुत निकट था, और उसके उज्वल पक्ष को देखने और प्रचारित करने का उसका काम था, क्योंकि प्रान्त का नव निर्माण करना है, प्रजातन्त्र की उच्च परम्पराओं की नींव डालनी है, प्रदेश को धनधान्य से पूरित करना है। कैसे उज्वल स्वप्न थे, और कैसा भयंकर और विद्रूप है उनका यह प्रकटीकरण, उनका

कार्यरूप में परिवर्तन !

धनंजय छटपटा उठा, तिलमिला उठा। रात भर बिस्तर पर करवटें लेता रहा, एक क्षण के लिए भी आंख नहीं लगी। जैसे सौ बिच्छुओं के डंक उसके शरीर में सल रहे हों। रह-रहकर उसे उस अज्ञात नारी का व्यथापूर्ण पत्र याद आ रहा था जो आज की डाक से उसे मिला था और जिसमें उसने राखी भेजकर उससे बहिन का रिश्ता जोड़कर बन्धुत्व का ऋण चुकाने की याचना की थी।

१९

जिस पत्र ने धनंजय की नींद हराम कर दी थी वह इस प्रकार था :

'आदरणीय संपादक जी,

'आपको यह अनपेक्षित पत्र पाकर कुछ आश्चर्य होगा क्योंकि मेरा आपसे कोई परिचय नहीं है। पर मैं आपके पत्र 'युगान्तर' की नियमित पाठिका हूं, आज के 'युगान्तर' की ही नहीं, पर उस पुराने 'युगान्तर' की जिसमें आप आग बरसाया करते थे और जिसकी परम्परा को जेल के कारण आपकी गैरहाज़िरी में आपकी सुयोग्य सहधर्मिणी प्रातः स्मरणीया गीताजी ने कायम रखा था। उस 'युगान्तर' की मैं पूजा करती थी, पर आज के 'युगान्तर' पर, आप धृष्टता के लिए क्षमा करें, मैं तरस खाती हूं। उसे पढ़कर मेरे हृदय में घोर निराशा और उदासी भर जाती है। उसमें मुझे वह पुराना तेज और पुरुषार्थ नहीं दिखाई देता। ऐसे लगता है जैसे इसके युयुत्सु धनुर्धारी संपादक ने मोह के कारण अपना गाण्डीव नीचे रख दिया है।

'मैं इस प्रदेश के पी० डब्ल्यू० डी० विभाग के एक एस०डी०ओ० की ज्येष्ठ कन्या हूं—अविवाहिता हूं, यद्यपि मेरी उम्र २२ वर्ष की हो गई है। मेरी पीठ पर दो बहनें हैं, जिनके विवाह की चिन्ता से मेरे माता-पिता दग्ध रहते हैं। हमारा परिवार धार्मिक वृत्ति का सीधा-सादा परिवार है, और माता जी के कारण हमारे घर में राष्ट्रीयता की भावना भी सतत विद्यमान रही है। उनके बड़े भाई, अर्थात् हमारे मामाजी जालियांवाला बाग के गोली काण्ड में मारे गए थे। माताजी उन्हीं-

की मंगल स्मृति में हम लोगों को भी राष्ट्रीयता का पाठ सिखाती रहती हैं, हालांकि पिताजी के सरकारी नौकरी में होने के कारण प्रत्यक्ष व्यवहार में हम लोग कुछ नहीं कर पाते, सिवा इसके कि स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें तथा राष्ट्रीय पर्व और उत्सवों पर व्रत-उपवास रखें।

'१५ अगस्त, १९४७ का स्वतंत्रता-दिवस हमने कितने उत्साह और आनन्द से मनाया था ! जब हमारी तहसील में राष्ट्रीय सरकार के प्रथम मुख्य मन्त्री के रूप में श्री पूरणचन्द्रजी जोशी हमारे यहां पधारे थे तो किस उत्साह के साथ हमने कुंकुम-तिलक लगाकर उनकी पूजा-अर्चना की थी ! वह पूजा उनके व्यक्तित्व की नहीं पर उस स्वातंत्र्य भावना की थी जिसके कि वे प्रतिनिधि थे।

'और इस स्वतंत्रता का पहला प्रसाद हमें अभी उस दिन मिला जब खारी बावली के डाक बंगले में मेरे पूज्य पिताजी का इसी जोशी-मन्त्रिमण्डल के एक मन्त्री ने बिना किसी कारण के घोर अपमान कर डाला। वह मन्त्री मेरे पिताजी के महकमे का ही था।

'उसके गुस्से का कारण शायद यही रहा हो कि पिताजी के कारण उसकी रंगरेलियों में विघ्न पड़ा हो। वह शराब पिए हुए पड़ा था, आसपास सुन्दर औरतें थीं, जिनमें एक अंग्रेज़ थी, और वहां रण्डी के गाने की महफिल जमी हुई थी। पिताजी को आॅर्डर आया था कि मन्त्री महोदय डाक बंगले का मुलाहिज़ा करने के लिए आ रहे हैं, हालांकि रात को डाक बंगले का मुलाहिज़ा करने की बात ही उनकी समझ में नहीं आई। दिन को भी डाक बंगले का कोई मुलाहिज़ा नहीं होता, फिर रात की तो बात ही न्यारी है।

'फिर भी चूंकि आॅर्डर था, पिता जी अपनी ड्यूटी बजाने के लिए गए तो वहां यह तमाशा देखा। वे वापस आ जाते तो हुक्म उदूली हो जाती। इसलिए वे बेचारे दो घण्टे तक अलग एक दरख्त के नीचे अंधेरे में खड़े रहे। उधर रण्डी का ग़ाना चल रहा था।

बाद में किसी तरह मौका देखकर उन्होंने भीतर खबर भिजवाई। मिनिस्टर साहब ने मिलने के लिए तो तुरन्त बुला लिया पर तीन मिनट के भीतर गालियां देकर अपमानित करके वापस भेज दिया। उस रात्रि को पिताजी इतने उदास और इतने दुखी होकर लौटे कि कुछ बयान नहीं कर सकती। उन्होंने माताजी से कहा कि इस अपमान की जिन्दगी से तो कुएं में कूद पड़ना अच्छा है। खुद के अप-

मान का दुख तो उन्हें था ही पर हमारे राष्ट्रीय सरकार के मन्त्रियों का यह चरित्र देखकर तो हम सबको बड़ा धक्का लगा। मुझे पूरा विश्वास है कि आपको भी ऐसा ही महसूस होगा।

'पिताजी अपमान से रातभर तड़पते रहे, और अपनी व्यथा भुलाने के लिए गीता और महाभारत पढ़ते रहे। उनकी व्यथा मुझसे देखी न गई इसलिए मैं आपको पत्र लिख रही हूं।

'तीसरे ही दिन पिताजी को शहर से बुलावा आया और उनके घाव पर मरहम-पट्टी करके उन्हें तरक्की देकर दूसरी जगह उनका तबादला कर दिया गया। पिताजी रिटायर होने की अर्ज़ी लेकर गए थे, पर हम पुत्रियों के भविष्य की चिन्ता में उसे पेश नहीं की। उनकी नौकरी की मियाद एक साल के लिए बढ़ा दी गई।

'पर मुझे सबसे बड़ा दुख तो इस बात का होता है कि हमारे राष्ट्रीय सरकार के मन्त्रियों का इतनी जल्दी इतना पतन कैसे हो गया? क्या इसी प्रकार की स्वतन्त्रता के लिए लाला लाजपतराय ने लाठियां खाईं, और भगतसिंह फांसी पर चढ़े? गांधीजी की एक पुकार पर सब कुछ न्यौछावर करने वाले लोगों का यह हाल कैसे हो गया? और आज यह हालत है तो हमारे देश का भविष्य क्या होगा?

'क्यों आपकी लौह लेखनी इस पाप का प्रक्षालन करने के लिए, इस दुश्चरित्रता का अन्त करने के लिए नहीं उठती। कहां है वह पुरानी चिनगारी जिसने विदेशी सरकार की इज़्ज़त में आग लगा दी थी। या वह अपने लोगों के मोह में आकर ठण्डी हो गई है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि भीष्म पितामह की तरह धृतराष्ट्र का अन्न खाकर आपकी वाणी भी क्षीण हो गई है।

'मुझे माफ कर दीजिए, मेरे आदर्शों के देवता! मैं आपकी छोटी बहन हूं, वृद्ध पिता के अपमान के अश्रुओं ने मेरे दिल के ज़ख्म पर नमक छिड़कने का काम किया है। आपको साथ में राखी भेज रही हूं और दस्तूर में यही भिक्षा मांगती हूं कि जिस शासन-व्यवस्था में मन्त्रियों का आचरण इतनी तेजी से पतित हो रहा है उसकी आत्मा को बचाने का प्रयत्न करें। और वह यदि नहीं हो सकता तो उसको खतम करने में अपनी शक्ति लगाएं। भारत के नारीत्व की आपसे यही भिक्षा है। उस नारीत्व की नहीं, जो स्वार्थ और भौतिक भोग-विलास के प्रलोभन में अपना चरित्र सत्ताधारियों के चरणों पर समर्पण कर भारतीयता को कलंक

लगाती हूं, पर उस उज्वल भारतीय नारीत्व की, जिसने सीता-सावित्री का निर्माण किया, रानी दुर्गावती और रानी लक्ष्मीबाई को जन्म दिया, जिसने भारतीय संस्कृति, सभ्यता और जीवन-प्रणाली की ध्वजा को हमेशा ऊंचा रखा। मेरी नम्र राय में हमारी स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं जिसमें इन उच्च मूल्यों की सुरक्षा न होती हो।

'मैंने आपको यह पत्र लिखने की धृष्टता की, उसके लिए क्षमा कर दो, मेरे भैया। मैं स्वयं दुखिया हूं। पिता के ऋण से दूर होना तो दूर रहा उनके लिए भार-स्वरूप ही बनकर रह रही हूं। कई बार आत्महत्या करने का विचार भी आता है। पर उस रात्रि की उनकी छटपटाहट में भूल नहीं सकती। वे मन्त्री महोदय की नज़रों में 'ब्लडी फूल' एस०डी०ओ० हों, मेरी नज़रों में देवता हैं। उनके अपमान का परिमार्जन हुए बिना मुझे भी शान्ति नहीं मिल सकती क्योंकि :

'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।'

गीता के इस वचन के अनुसार एक माननीय पुरुष की मरणप्रायः अपकीर्ति के दुख से त्रस्त आपकी बहिन आपको छोड़कर और किससे भिक्षा मांगे?

'इस पत्र को सर्वथा निजी रखें, और मुझसे कोई गलती हो गई हो तो मुझे क्षमा कर दें यह मेरी आपके चरण छूकर प्रार्थना है। मैं बड़ी पीड़ा में हूं और शायद मेरा विवेक काम नहीं कर रहा है। पुनः आपसे क्षमा मांगती हूं।

आपकी अभागिनी बहिन,
सत्यवती शर्मा 'प्रभाकर' '

२०

'युगान्तर' में एक बड़ी टिप्पणी भारतेंन्दु साहित्य-समिति के उद्घाटन के बारे में प्रकाशित हुई। एक प्रोफेसर धनंजय के मित्र थे, उन्होंने वहां का कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। स्वाभाविकतः मनमोहन बाबू उसके मुख्य लक्ष्य थे। जो मन्त्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और सत्यवादी हरिश्चन्द्र के बीच में भेद नहीं कर सकता उसे साहित्यिक कार्यक्रमों में जाना ही क्यों चाहिए? क्या मन्त्री अपने को

सर्वज्ञ समझता है ? और यदि जाना ही है तो पहले अपने विषय का अभ्यास करके क्यों नहीं जाते ? आजकल मन्त्रियों को यह रोग ही हो गया है कि साहित्य-सभा हो या हेअर कटिंग सैलून, उसका उद्‌घाटन करने अवश्य पहुंच जाएंगे। सिनेमा-थिएटर का उद्‌घाटन हो या चाय-चिवड़े का होटल हो, मन्त्री महोदय फूल-माला पहनने के लिए, फोटो खिचवाने के लिए तथा भाषण देने के लिए वहां मौजूद हैं। और प्रत्येक भाषण का सम्बन्ध राष्ट्रीय कार्यों से जरूर जोड़ेंगे।

हजामत बनवाना और बाल कटाना आज देश की बड़ी आवश्यकता है, स्वच्छ और आधुनिक ढंग से दाढ़ी बनाने में रोगों का फैलाव नहीं होता, स्वास्थ्य अच्छा रहता है, चेहरा सुन्दर दिखने लगता है और आदमी को उत्साह और स्फूर्ति मिलने लगती है जिसके कारण वह राष्ट्रीय पंचवार्षिक योजनाओं में अधिक सफलतापूर्वक योग दे सकता है। वही बात सिनेमा देखने की है जिससे नागरिक का मनोरंजन होता है, वह अपनी थकावट भूल जाता है और फिर दूने उत्साह से पंचवार्षिक योजना में कार्य कर सकता है। होटल भी जनता के कल्याण की संस्था है। भूखे को अन्न और प्यासे को पानी देना हमारे धर्म में लिखा है। इससे जनता की अन्तरात्मा तृप्त होती है और इस तृप्त आत्मा से जो विचार और शक्ति स्फुरित होती है वह राष्ट्र के नव निर्माण में बहुत बड़ा काम कर सकती है। इस तरह नाना प्रकार के कार्य-कलापों में मन्त्रियों की वक्तृत्व-शक्ति का प्रदर्शन होता है और इस देश में एक नये रोग, 'बकवास' रोग के प्रादुर्भाव का खतरा पैदा हो रहा है। हम मन्त्रियों से प्रार्थना करते हैं कि कहां क्या बोलना है इसका निर्णय करने के पहले या नया निमन्त्रण स्वीकार करने से पूर्व संस्कृत के इस सुभाषित पर अवश्य मनन कर लें, 'तावच्च शोभते मूर्खो: यावत् किञ्चिन्न भाषते' !

मनमोहन बाबू तो इस टिप्पणी से तिलमिला उठे। इसमें उनकी जो खिल्ली उड़ाई गई थी वह उन्हें कटार की तरह चुभी। क्रोध में कोई टिप्पणी लिख देता तो वह उन्हें उतनी नहीं खलती। और जब वह 'युगान्तर' में छपी तो और भी बुरा हुआ। वह तो मन्त्रिमण्डल का समर्थक पत्र माना जाता है। विरोधी नीति का पत्र कुछ भी लिखे उससे बात इतनी नहीं बिगड़ती जितनी अपने पक्ष के पत्र के लिखने से बिगड़ती है। मुख्य मन्त्री से शिकायत भी नहीं कर सकते थे क्योंकि वह कोई राजनीतिक मामले की बात तो थी नहीं, महज साहित्य के क्षेत्र की थी। एक क्षण के लिए तो उन्हें महसूस हुआ कि साहित्यकारों को उल्लू बनाना इतना आसान

नहीं है। साथ ही साथ शिक्षा मन्त्री पर भी गुस्सा आया कि वे अपनी बला नाहक मेरे गले में लटकाकर चलते बने। मनमोहन बाबू के 'अहं' को बड़ा धक्का लगा। आखिर उन्हें अब तक खुशामद और आवभगत की आदत पड़ गई थी। वे ऐसे ही क्षेत्रों में घूमते-विचरते थे जहां उनके अधिकार के कारण लोग उन्हें अपने से ऊंचा मानते थे। इस वातावरण में उनकी एक-एक बात लोग हथेलियों पर किस तरह झेलते थे, उनके ऊपर सद्गुणों का कैसे आरोप करते थे, उनमें नित-नई योग्यताओं की कैसी सुन्दर खोजें किया करते थे—वाह! वड़े मजे थे! बड़ी-बड़ी फूलों की मालाएं कितनी प्यारी लगती हैं? पर अब दिखता है उनमें कांटे भी उगने लगे हैं। यह बुरी बात है। मन ही मन बड़े बेचैन हुए। सलाह के लिए किसे बुलाएं? अपने सहयोगी मन्त्रियों से तो बात करने से रहे क्योंकि वे भी भीतर ही भीतर हंसते ही होंगे, क्योंकि मूर्खता तो हो ही गई थी। पर सबसे चिंता की बात तो यह थी कि यह मूर्खता अब अखबार वालों के पास पहुंचने लगी थी। और जब वह शासकीय दल का मित्र माने जाने वाले अखबार के पास पहुंचकर प्रकाश में आने लगे तो लक्षण अच्छे नहीं हैं। इसका कुछ न कुछ इलाज तो करना ही चाहिए। और खट से टेलीफोन उठाया और सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय को बुला भेजा।

रघुनाथ सहाय मन्त्री महोदय की आवाज़ से ही समझ गए कि बात कुछ अड़चन की मालूम पड़ती है। उन्होंने भी 'युगान्तर' का वह अंक सुबह ही पढ़ लिया था और तभी उनके मन में खटका हुआ था। और अब मिनिस्टर साहब का फोन पाकर उन्हें इतमीनान हो गया कि वही बात बेचैनी का कारण बन गई है। उन्होंने फौरन हातिमभाई को फोन किया और पूछा कि क्या आपने वह नोट पढ़ा। हातिमभाई 'युगान्तर' तो लेते थे, पर उर्दू के जानकार होने से उसे पढ़ते नहीं थे। हां, किसीसे हेडिंग-वेडिंग पढ़वाकर काम चला लेते थे। सहाय साहब का टेलीफोन आते ही उन्होंने खाता-वही लिखने वाले मेहता जी को बुलाकर वह नोट पढ़वाया और बोल उठे, 'तोबा-तोबा! सिर्फ हरिशचन्दर नाम पर ही इतना गजब ढा दिया! आजकल बम्मन और महरों के नाम एक रहने लगे हैं, उनमें फर्क करना गैरमुमकिन हो जाता है। बंगाली और मरेठों के नाम भी इकसां रहते हैं। सिर्फ नाम से तो अब कुछ भी इल्म नहीं होता। बस उसीपर इतनी कयामत बरसा दी! सुभान अल्लाह! आखिर दोनों हरिशचन्दर तो भारत के यानी हिन्दोस्तान के ही हैं। कहीं इंग्लैंड या अमरीका से थोड़े ही आए हैं। और हुजूर मिनिस्टर साहब ने किसी-

की बुराई ता की नहीं। हमारे हुसैनभाई का लड़का भी कालिज में पढ़ता है, वह खुद भी हाज़िर था। वह तो कहता था कि तकरीर बड़ी ग्राला दरजे की हुई। पता नहीं इन ग्रखबार वालों का दिमाग कैसे उलटा चलता है! खैर कोई बात नहीं। मेरे पास इसकी भी दवा है। 'जागरण' ग्रखबार का मैंने कैसा मुंह बन्द किया था? फिर इस 'जगन्तर' की क्या बात है?'

रघुनाथ सहाय को हातिमभाई का ग्रात्मविश्वास देखकर कुछ तसल्ली तो हुई पर वे पूरी तरह बेफिक्र न हो सके। उन्हें इस बात की खास परवाह नहीं थी कि एक साहित्यिक भाषण को लेकर मिनिस्टर साहब पर टीका-टिप्पणी हो गई। उन्हें तो चिन्ता इस बात की थी कि यदि ग्रखबार वालों का ध्यान मिनिस्टर साहब पर गया तब तो खैर नहीं है। जब तक किसीका ख्याल नहीं जाता, तभी तक गनीमत है। ग्रन्धेरे में चाहे जो हो जाए किसीको पता नहीं चलेगा। पर एक बार किसीका टॉर्च पड़ गया तो मुसीबत है। उन्हें फिक्र इस बात की हुई कि खारी बावली के डाक बंगले का किस्सा तो कहीं 'युगान्तर' वालों के पास नहीं पहुंच गया? यही शक उन्होंने हातिमभाई पर जाहिर किया।

हातिमभाई फौरन मोटर लेकर 'युगान्तर' के दफ्तर में गए ग्रौर धनंजय से बोले, 'मैंने सुना है 'जगन्तर' परचे का ग्रच्छा परचार है तो मैं दिवाली के लिए एक पेज इश्तहार देना चाहता हूं ग्रपनी फर्म का। क्या चारज होगा?'

'पांच सौ रुपया।'

'ठीक है, मैं ग्रभी चेक दे देता हूं। इश्तहार का ढांचा ग्राप बना लीजिए। दशहरे की नुमाइश के वक्त हमने ये हैण्डबिल निकाला था, बस उसीपर से ग्राप मज़मून बनाकर छाप दीजिए।'

धनंजय को इतना तत्पर ग्राहक देखकर कुछ खटका तो हुग्रा, पर बातचीत महज़ बिज़िनेस की थी, उसने विज्ञापन-विभाग के ग्रसिस्टैन्ट को बुलाकर हातिमभाई का काम करा दिया ग्रौर रसीद दिला दी।

लेकिन हातिमभाई का काम तो पूरा नहीं हुग्रा था इसलिए वे उठे नहीं। ऊपर बन्द पंखे की तरफ देखकर बोले, 'बड़ी गरमी पड़ रही है। एक गिलास पानी मिल सकता है?'

'जरूर।' ग्रौर फिर शिष्टाचारवश धनंजय ने पूछा:

'चाय पिएंगे?'

'जी हां, जी हां। बड़ी नवाज़िश है, बड़ी नवाज़िश है।' हातिमभाई ने बार-बार सलाम करते हुए कहा। 'ज़रा ठंड की खुश्की है, चाय ही अच्छी रहेगी।'

हातिमभाई को सचमुच खुशी हुई कि चाय का आर्डर दिया गया क्योंकि उनकी बात रुक-रुक जाती थी। उन्हें महसूस हो रहा था कि 'जागरण' के एडिटर में और इस आदमी में बहुत बड़ा फर्क दिखाई देता है। उनसे तो खुलकर बातचीत होती थी, पर इनसे तो बड़ी अदब के साथ पेश होना पड़ता है। उन्होंने तो सोचा था कि सब एडिटर एक-से होते हैं। डॉ० छदामीलाल ने एक पेज के इश्तहार के लिए तो मुझे गले से लगा लिया था, मेरा अज़ीज़ बन गया था और यह ऐसे बैठे हैं जैसे बरफ के पुतले हों।

घण्टी बजी और चपरासी चाय लेने के लिए चला गया तब हतिमभाई ने धीरे से बात निकाली :

'आज आपका हरिशचन्दर वाला एडिटोरियल गज़ब का था। बड़े अन्दाज़ की बात आपने कही है—क्या कहने हैं?' और वे अपनी घबड़ाहट छिपाने के लिए कृत्रिमता से ज़ोर से हंस पड़े। 'लेकिन मेरी अदना राय में ज़रा हमारे मिनिस्टर साहब के साथ थोड़ी सख्ती हो गई। बेचारे बड़े गमशुदा होकर बैठे हैं। अपना ही अखबार, और अपने से ही नाराज़, बस इसीका बेचारों को रंज है। भले आदमी हैं—जी हां।'

'आप हिन्दी जानते हैं?' धनंजय ने ज़रा गंभीर आवाज़ में पूछा।

'जी नहीं, जी नहीं, अपन हिन्दी क्या जानेंगे? बस थोड़ी उर्दू पढ़ लेते हैं और थोड़ी अंग्रेज़ी समझ लेते हैं, काम चलाने लायक। बाकी हिन्दी रापटरभाषा है इसलिए हम उसकी बहुत इज़्ज़त करते हैं—जी हां हातिमभाई ने सम्हलकर कहा।

'तब फिर आपको क्या पता कि मिनिस्टर साहब ने क्या कहा और 'युगान्तर' ने क्या लिखा?'

'जी हां, वह 'जगन्तर' ने लिखा—आपने नहीं लिखा। पर हमारे हुसैनभाई का लड़का तो कहता था कि स्पीच खराब नहीं थी।' हातिमभाई ने फरमाया।

'हम लोग यह तो नहीं बताते कि हमारे अखबार में कौन क्या लिखता है लेकिन इतना ही कह सकता हूं कि जो लिखा गया वह जो लिखा जा सकता था उससे बहुत कम है। बात मज़ाक की नहीं है, बहुत गहरी है।'

इतना सुनकर हातिमभाई पसीना-पसीना हो गए। चोर की दाढ़ी में तिनका होता है। उस हिसाब से हातिमभाई को भरोसा हो गया कि इस एडिटर के पास खारी बावली के डाक बंगले का किस्सा भी मौजूद है और यह एडिटर 'जागरण' वाले डॉक्टर छदामीलाल से बिलकुल अलग है। फिर भी चेहरे पर कृत्रिम हंसी लाकर बोले, 'आप दुरुस्त फरमाते हैं, बहुत सही फरमाते हैं। अपन तो हिन्दी जानते नहीं, पर राष्टरभाषा के नाते उसकी इज्ज़त ज़रूर करते हैं। पर मैंने तो पहले ही अर्ज़ किया था कि आपका एडिटोरियल गज़ब का था।'

चाय आई और हातिमभाई ने चुपचाप पी ली। चेहरे से ऐसा लगता था जैसे ज़हर पी रहे हों। यह नाकामयाबी का किस्सा लेकर सहाय साहब के पास किस मुंह से जाएं और मिनिस्टर साहब को क्या सूरत दिखाएं? एक पेज के इश्तहार का भी कोई नतीजा नहीं निकला। खैर कोई बात नहीं। देखा जाएगा।

उठते हुए कहा, 'इश्तहार ज़रूर छाप दीजिए। मैं हर दिवाली पर इश्तहार दूंगा।'

'जी हां, वह तो ज़रूर छपेगा। मैंने आपके सामने ही हिदायतें दे दी हैं।' धनंजय ने कहा।

धनंजय की मृदुता देखकर उनकी हिम्मत फिर लौट आई और दुबारा बैठते हुए बोले, 'हां, एक बात तो भूल ही गया। मैंने सुना है कि आपकी कंपनी के कुछ शेयर्स बिक्री के लिए हैं—मैं लेना चाहता हूं।'

'ठीक है, इसके लिए आप दुबारा तशरीफ लाइएगा।'

इतनी फटकार खाकर हातिमभाई फिर अपनी कुर्सी से उचक पड़े और आदाबर्ज़, कहते-कहते रुखसत हो गए। मोटर में बैठते ही बोले, 'बड़ा खतरनाक आदमी मालूम पड़ता है।'

२१

धनंजय को अचानक जगपुरा के राजा साहब की चिट्ठी मिली कि उन्होंने युगान्तर कम्पनी को पचास हज़ार रुपये का जो कर्ज़ दिया था वह वापस

कर दिया जाए क्योंकि राजा साहब की लड़की की शादी तय हो चुकी है, उन्हें रकम की ज़रूरत है।

असल में यह रकम जोशी जी के कहने पर आई थी। धनंजय का तो राजा साहब से व्यक्तिगत परिचय ही नहीं था। पर जिन लोगों ने जोशी जी के प्रभाव से कम्पनी में पूंजी लगाई थी उनमें राजा साहब भी एक थे। वे लोग कम्पनी में पूंजी तो लगा देते पर उसके बदले में जोशी जी से चौगुने काम करा लेते। सारी सत्ता उनके हाथ में थी। उनके एक इशारे पर लाखों के वारे-न्यारे हो जाते थे। यह रकम उस समय आई थी जब एक मशीन की बिल्टी आ पड़ी थी। राजा साहब ने एक लाख के शेयर्स भी लिए थे। बोले, अब इस बार कर्ज़ दूंगा। जोशी जी ने धनंजय से कहा, 'ले लो कर्ज़ ही सही। फिलहाल तुम्हारा काम तो चल ही जाएगा। मौका देखकर इसे भी शेयर्स में बदलवा लेंगे। रुपया नहीं लौटाना पड़ेगा।'

जोशी जी सोचते, इस तरह पूंजी इकट्ठा कराने में एक अखबार अपने हाथ रहेगा, अपनी तो एक पाई भी नहीं लगी है। उल्टे, अपना अखबार कम्पनी को बेचा तो उसके एक लाख अलग रखा लिए। गिरधारी ने सोचा भी न होगा कि उसके चलाए हुए फटियल अखबार की मैं इतनी कीमत वसूल कर लूंगा।

ऊपर से नई कम्पनी के फायदे में अठन्नी का हिस्सा है। वैसे अखबार की कम्पनी में क्या फायदा होता है भला? पर असली बात है अखबार को अपने नियन्त्रण में रखने की जो कि राजनीतिक जीवन में निहायत जरूरी है।

राजा-महाराजा लोग और दीगर पूंजी वाले सोचते, रुपये तो हमने जैसे गंगाजी में डाल दिए। अखबार भी कभी फायदा देता है? पर उसके बदले हमारी रकमें सरकार में अटकी पड़ी थीं वे खुल गईं, और पहले जो मिलतीं, उससे दुगुनी-तिगुनी मिलीं। अपना भी क्या बिगड़ा? और हम यदि राजनीति में उतरें तो एक अखबार हमारा दोस्त तो रहेगा।

धनंजय ने सोचा, इस अखबार के माध्यम से मुझे अपने आदर्शों के मुताबिक पत्रकारिता करने के लिए व्यापक क्षेत्र मिल जाएगा। अठन्नी के हिस्से का मोह उसे भी नहीं था। वह तो केवल अपनी मान-रक्षा का एक जरिया मात्र था कि जोशी जी के साथ ऊंच-नीच का नहीं, बराबरी का हिस्सा है। अपनी तनख्वाह उसने पांच सौ बांध ली थी हालांकि जोशी जी की उम्मीद थी कि साढ़े सात सौ बांधेगा। पर आगे चलकर जब मालूम हुआ कि अखबार में घाटा आ रहा है तो

उसने स्वेच्छा से सौ रुपये की कटौती कर ली। जोशी जी कुछ नहीं बोले।

धनंजय जानता था कि रुपया किस तरीके से आ रहा है। पर सार्वजनिक संस्थाओं के चन्दे, महासभाओं के वार्षिक अधिवेशनों के फण्ड इसी तरह इकट्ठा होते आ रहे हैं। जहां तक उसके व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न है, उसका दिल साफ था कि मारकेट में उसे जो मिलेगा उससे वह कम ही ले रहा है, अधिक नहीं। जो आदमी असेम्बली या मिनिस्ट्री के लिए उपयुक्त समझा गया, उसके लिए राजनीतिक पदों के दरवाजे बन्द नहीं थे। मन्त्रिपद या पार्लमेण्टरी जीवन के दरवाजे तो उसके सामने खुले ही पड़े थे, पर उसने नाहीं कर दी। वह चाहता और प्रयत्न करता तो कहीं विदेश के किसी दूतावास में चला जाता, या संयुक्त राज्य संघ के किसी पद पर चला जाता जहां भारतीयों की नियुक्तियां होती हैं। जोशी जी तो उसके लिए सब कुछ करने के लिए तैयार थे। अपने त्याग और तपस्या के कारण गांधीजी के साथ काम करने वाले राष्ट्रीय नेताओं में भी उसका मान था। उनमें से तो कुछ उसके जेल के साथी थे। पर उसने यह सब नहीं किया क्योंकि यह उसका स्वधर्म नहीं था। उसने तो पत्रकारिता को मय उसके संघर्षों और खतरों के स्वीकार किया क्योंकि वही उसका स्वधर्म था। अखबार में पूंजी लगी वह जोशी जी के प्रभाव के कारण लगी, इसमें शक नहीं। हो सकता है कि जिस मार्ग से वह आई वह शुद्ध न हो। पर अपनी विवेक-बुद्धि के सामने उसने मर्यादा की यही लक्ष्मण-रेखा खींच ली थी कि इस सब पूंजी का वह ट्रस्टी है, अपने वेतन के सिवा इसकी एक भी पाई पर उसका हक नहीं है। इसलिए इस पूंजी को सुरक्षित रखना, उसका अपव्यय न होने देना, उसका धर्म है। वेतन पर बेशक उसका हक है क्योंकि वह उसका पारि-श्रमिक है जिसका हकदार बनने के लिए वह अपने खून का पसीना करता है, और ईमानदारी से मेहनत करता है। वह चाहता तो अलग से काफी पैसा बना लेता जैसा कि आम तौर पर कम्पनियों के संस्थापक कानूनी ढंग से किया करते हैं, जैसे मशीनों की खरीद-फरोख्त में कमीशन, शेयर बिक्री पर दलाली आदि-आदि। पर धनंजय ने यह कुछ नहीं किया क्योंकि वह उसकी वृत्ति ही नहीं थी। वह तो प्रामा-णिकता से अपने स्वतन्त्र विचारों के मुताबिक पत्रकारिता करना चाहता था, और चूंकि जोशी जी की प्रारम्भिक चर्चाओं में उसे यह करने की पूरी-पूरी गुंजाइश थी, उसने उनके साथ काम करना स्वीकार कर लिया था।

जोशी जी की भावना थी कि चूंकि पूंजी मेरे कहने से आई है, पत्र की नीति

का निर्धारण मैं करूंगा, हालांकि शुरू में खुले शब्दों में उन्होंने ऐसा नहीं कहा था। उस समय बात के टूट जाने का खतरा था। भागीदारों के हित-सम्बन्धों के बारे में विचार करने का कारण नहीं है क्योंकि यह संस्था राजनीतिक संस्था है और इसका दृष्टिकोण राजनीतिक है।

इस पोज़ीशन से राजा-महाराजाओं और दीगर भागीदारों को भी कोई एतराज नहीं था, क्योंकि उनका काम तो बन ही गया था, और वह रुपया यदि दान में भी मांगा जाता तो वे उसे सहर्ष दे देते। उनकी तो यही धारणा थी कि कंपनी के शेयर्स यानी दान लेने का एक सभ्य और कानूनी तरीका है जो जोशी जी ने अपनाया है। जो शेयर सर्टिफिकेट का कागज़ आया है वह महज़ कागज़ का रुक्का है जो वे कभी किसी ज़माने में अपने बेटे-पोतों को बताएंगे कि जोशी जी के कहने से हमने क्या नहीं किया? बाकी इसपर हमें कभी फूटी कौड़ी भी मिलेगी इसकी न उन्हें आशा थी और न इच्छा। रकम जोशी जी को खुश करने के लिए दी गई थी। वे खुश हो गए, बस, हमें छुट्टी मिली। अब बाकी क्या करना है इस अखबार का, वह वे जानें और अखबार वाले जानें।

लेकिन धनंजय अपने सिर पर इन सब ज़िम्मेदारियों का बोझ लेकर चलता था। पूंजी आई है तो प्राणों की बाज़ी लगाकर भी उसे सुरक्षित रखनी चाहिए, और उसपर फायदा (डिविडेण्ड) देना चाहिए। इसलिए दिन-रात मेहनत करता, अपना खून सुखाता, चिन्ताओं की गठरी सिर पर रख कर सोता।

जोशी जी की हर्र लगी न फिटकरी, उनका रंग चोखा ही था।

यहां धनंजय बेचारा कोल्हू के बैल की तरह पिसा जा रहा था, पिसा जा रहा था। जिस कुएं में पानी ही न हो तो वह मोट में कहां से आए? रेत में से भी कभी तेल निकलता है? आदर्शों की दृष्टि से बात कुछ भी हो, व्यवहार में बात यही थी कि 'युगान्तर' धीरे-धीरे, अनजाने अपनी स्वतंत्रता, निष्पक्षता और तेजस्विता खो बैठा था, और भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता के चंगुल में फंसने वाले मन्त्रि-मण्डल का समर्थक बन गया था। उसका संपादक धनंजय था, पर उसकी आत्मा की जन्म-राशि पर जोशी जी जाकर बैठे थे। नाम उसका 'युगान्तर' था, पर लोग उसे जोशी गज़ट के नाम से पुकारते थे।

कारोबार तो जोशी जी ने भी आदर्शों को लेकर ही प्रारंभ किया था, पर धीरे-धीरे बढ़ती हुई उम्र की आरामतलबी, सुखासीन जीवन का प्रलोभन, अनि-

वंन्ध सत्ता का मद, और धृतराष्ट्र की तरह अपने परिजनों का अन्धा मोह, इन कारणों से उनके आदर्श एक के बाद एक खिसकने लगे, और उनका पुण्य क्षीण होने लगा। अपने नेतृत्व की चौखट उन्होंने ऐसी मजबूत बनाई थी कि उनकी सत्ता को किसी भी तरफ से कोई खतरा नहीं था, चुनौती नहीं थी। काशी के पण्डितों ने उनका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ा दिया था। ऐसी परिस्थिति में धर्मराज का नाम तो उन्हें प्यारा हो गया, पर धर्मराज का विवेक उन्हें छोड़ गया। नतीजा यह हुआ कि प्रान्त और देश के निर्माण और प्रगति की बात तो दरकिनार रह गई, स्वनिर्माण और स्वप्रगति की बात ही सामने आ गई। धनंजय को यही दिखाई दिया कि आज के जोशी जी पुराने जोशी जी नहीं रहे। उनके आदर्शों की मिट्टी से उसने विनायक की मूर्ति का निर्माण करने की कोशिश की, पर उससे मूर्ति बनी वानर की। वह वानर भी कितना विद्रूप और बदसूरत कि उसको अपना पूर्वज कहते हुए भी शरम लगे।

गीता ने व्यथित होकर कहा, 'धनंजय राजा ! यह तुम कहां से कहां आन फंसे ? यह सब मोह छोड़ो और सबसे पहले अपनी आत्मा की मुक्ति करो। वरना तुम देखते-देखते समाप्त हो जाओगे। तुम्हारा यह परिश्रम, यह तपस्या, यह त्याग और यह साधना आखिर किसके लिए है ? क्या इसका प्रयोजन है ?'

धनंजय ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह गंभीर हो गया। पर पृथ्वी के गर्भ में जिस प्रकार ज्वालामुखी धधकता है उसी प्रकार उसके अन्तर में भी धधकता था। इसके धक्के गीता को छोड़कर और किसीको अनुभव नहीं हो सकते थे।

धनंजय के भीतर ही भीतर हृदय-मंथन तो चल ही रहा था, पर सत्यवती शर्मा के पत्र ने उसके निर्णय को बनाने में मदद की। हातिमभाई की मुलाकात ने उसके शक को पक्का किया कि पी० डब्ल्यू० डी० मिनिस्टर मनमोहन का चरित्र संदेहास्पद है और ऐसे व्यक्तियों का मन्त्रिमण्डल में स्थान नहीं होना चाहिए। खैर यह प्रश्न मुख्य मन्त्री का है कि वह किसे अपनी कैबिनट में ले या न ले, पर एक पत्रकार के नाते उसके पास यदि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ प्रामाणिक शिकायत आती है तो वह उसे अब रोकेगा नहीं, प्रकाशित कर देगा। पहले वह इन बातों को रोकता था। आई हुई शिकायतों को छांटकर, जो गंभीर स्वरूप की थीं उनकी प्रतिलिपि करा कर तथा नाम गुप्त रखकर वह मुख्य मन्त्री के पास भेज दिया करता था, और बाद में उनके कहने पर सम्बन्धित मन्त्रियों और अधिकारियों के पास।

उनके पास से प्राप्ति-सूचना तुरन्त ग्रा जाती ग्रौर यह भी लिखकर ग्राता कि वे जांच कर रहे हैं ग्रौर उसके निर्णय से ग्रापको यथाशीघ्र सूचित किया जाएगा। इधर धनंजय उन शिकायत वालों को भी पत्र लिख देता कि वह उचित कार्रवाई कर रहा है। उसकी धारणा थी कि एक जिम्मेदार पत्रकार के नाते उसका यह कार्य नहीं है कि वह राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल को बदनाम होने दे। ग्रसली बात शिकायतों को दूर करने की है, ग्रौर ऐसी परिस्थिति पैदा करने की है जिसमें इस प्रकार की शिकायतों का, यदि वे सच हैं तो, मौका ही न ग्राए। कुछ शिकायतें स्वार्थवश या द्वेषवश की जाती थीं। सरकारी ग्रधिकारी से ग्रपना कोई निजी काम न बना तो उससे नाराज़ होकर ग्रखबार में पत्र लिखकर भेज दिया। इसकी ग्रसलियत को ढूंढ़ निकालना कठिन नहीं था। सरकारी विभागों से उनका उत्तर भी जल्दी-जल्दी ग्रा जाता। पर जो शिकायतें वास्तव में जनता के दुख-दर्द ग्रौर ग्रन्याय की प्रतीक थीं, उनकी जांच-पड़ताल होने में महीनों लग जाते, ग्रौर एक-दो स्मृतिपत्र देने के बाद भी जवाब नहीं ग्राता। मामला वहीं रफा-दफा हो जाता, दुष्कर्म करने वाले लोगों का बचाव भी कर दिया जाता, सबूत उलट-पुलट कर दिया जाता। दुष्कर्म ग्रक्सर वे करते जिनकी मुख्य मन्त्री के पास सीधी पहुंच थी, ग्रौर जो उनकी पार्टी के थे, ग्रौर उनके भले-बुरे कामों में मदद किया करते थे। धीरे-धीरे नौकरशाही में भी ऐसा एक वर्ग बन गया जिसपर जोशी जी की मेहरनजर थी, ग्रौर एक ऐसा था जो कि काम से काम रखता था पर जिसका कोई धनी-धोरी नहीं था। सभी मुख्य-मुख्य पदों पर उनके विशेष कृपापात्र व्यक्ति जमकर बैठ गए, मानो वे उनके व्यक्तिगत साम्राज्य के मोर्चों को सम्हाल रहे हों। वे फिर किसी भी महकमे के हों, ग्रौर उनका कोई भी मिनिस्टर हो, उनका सीधा सम्पर्क मुख्यमन्त्री से था। बाद में चलकर ऐसा हो गया कि मन्त्रिगणों से ज्यादा महत्व का उनका सेक्रेटरी हो गया। उदाहरणार्थ, शिक्षा विभाग के मन्त्री की कुछ नहीं चलती थी, पर उसका सचिव जो जोशी जी का ग्रादमी था, विभाग का सर्वेसर्वा था। महत्वपूर्ण मामलों की फाइलों की चर्चा वह मुख्यमन्त्री से पहले कर लेता था, ग्रौर बाद में उनका नाम बताकर ग्रपने मन्त्री से ग्रंगूठा लगा लेता था। यथार्थ में वह कराता तो दस्तखत ही पर जिस तरह ग्रंगूठा लगाने वाले को पता नहीं रहता कि वह किस कागज़ पर छाप लगा रहा है उसी तरह उस मन्त्री को भी मालूम न रहता कि वह किस फाइल पर दस्तखत कर रहा है। वह परवाह भी

नहीं करता। सोचता कि हमें क्या करना है, जोशी जी बैठे ही हैं सब कुछ देखने-सम्हालने वाले। उनकी मरज़ी के बिना तो इस मन्त्रिमण्डल में एक मिनट के लिए भी टिक नहीं सकते। हमें इन मामलों से क्या करना है? हम तो यहां इस पद के लिए ही आए हैं। किसी कदर वह बना रहे यही हमें चाहिए। काम-धाम तो जो होना है वह होता ही है। जिन मामलों में मुख्य मन्त्री की दिलचस्पी नहीं रहती है, उनमें तो आखिर हमारी ही चलती है। सो अपने अधिकार की चादर थोड़ी-सी समेट ली तो इसमें क्या बिगड़ा? जो हमारे पल्ले पड़ी है उसपर तो हमारी सार्वभौम सत्ता है ही।

इस तरह सबने अपनी-अपनी मर्यादाएं बना ली थीं और अपने काम और व्यवहार की एक टेकनीक ईजाद कर ली थी, एक नया तन्त्र निर्माण कर लिया था, जिसका प्रजातन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था, अपने 'अहं' से सम्बन्ध था। 'लिव-ऐण्ड लेट लिव'—जियो और जीने दो। हम तुम्हारे काम में दखल नहीं देते, तुम हमारे काम में दखल मत दो। यह तुम्हारा क्षेत्र है, यह हमारा। मानो हरेक के इलाके बंट गए थे। डाकुओं और भिखमंगों के इलाके भी इसी तरह बंटे हुए होते हैं। तुम इतने गांवों में डाका डालोगे, हम इतने में, या तुम इस मुहल्ले में भीख मांगोगे, हम उस मुहल्ले में। इन मर्यादाओं का पालन वे बड़ी सतर्कता से करते थे। उसी प्रकार सतर्कता और विवेक राजनीतिक और शासकीय क्षेत्र के लोग भी बरतते थे।

मन्त्रिमण्डल में एकाध तगड़ा मन्त्री भी था, जो सख्त तबीयत का था। उसकी राह में कोई न जाता। वह अपना काम चोखा बजाता और कोई उसमें हस्तक्षेप नहीं करता। पर बाकी का क्षेत्र तो खाली था। उर्वरा वसुंधरा इतनी व्यापक है कि एक मन्त्री थोड़े ही उसपर समूचा कब्ज़ा कर लेगा? एक छोटे-से हिस्से पर करेगा, पर बाकी का तो यार-दोस्तों के लिए खुला ही था।

तो क्या सभी काम इसी धांधलेबाज़ी के, खुदगरज़ी या लूट-खसोट के होते, जनता के कल्याण के कुछ नहीं होते?

होते ज़रूर। आखिर देश स्वतंत्र हो गया था, प्रजातन्त्र कायम हो चुका था, सभी काम जनता के कल्याण की भावना का उद्घोष करके ही किए जाते—जगह-जगह कॉलिज स्कूल खुले, अस्पताल खुले, उद्योग-धन्धों को मदद दी गई, नये-नये कल-कारखाने खुले, नहरें और सड़कें बनीं, किसानों को तकावियां दी गई, सह-

कारी संस्थाएं बनीं, मजदूरों को सहूलियतें मिलीं। ये सब बातें हुईं क्योंकि पंचवार्षिक योजनाओं में और बजट में इनके लिए करोड़ों रुपयों का इन्तज़ाम था। पर यह सब कार्य विशुद्ध सेवा और कल्याण की भावना एवं दृष्टि से नहीं हुआ। स्कूल-कॉलेज खुलते तो अपने आदमियों द्वारा चलाई गई संस्थाओं के ग्राण्टों के लिए हाथापाई होती, प्रोफेसर-प्रिंसिपल की नियुक्तियों में हस्तक्षेप होता, परीक्षाओं के परचे और रिज़ल्ट खुल जाते, शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारी या मन्त्री के लड़के को ज़बर्दस्ती मार्क बढ़ाकर पहला नम्बर दे दिया जाता, और जो प्रामाणिक विद्यार्थी मेहनत और अध्ययन के साथ तैयारी करते और जिनका सर्वप्रथम आने का हक था, उनका दिल तोड़ दिया जाता। शिक्षा के क्षेत्र में जब न्याय और नीति की ऐसी हत्या होने लगती तो दूसरे विभागों का क्या पूछना है? अस्पताल की बिल्डिंगें बनीं उनके ठेकों में कमीशन लगे, सरकारी दवाइयां काले बाज़ार में पहुंचने लगीं, गरीब लोगों के कामों में कमी आई। अस्पतालों की भर्ती सिफारिशों और प्रभाव के कारण होती, निर्धनों के रोगों की गंभीरता के कारण नहीं होती। उद्योग-धन्धों में सरकारी पूंजी लगाई तो उसकी मैनेजिंग एजेन्सी में अपने भाई-बन्दों की साझेदारी रख दी जाती। नहरें और सड़कें उस इलाके में और इस योजना से बनीं कि जिनकी मन्त्रिमण्डल में ठकुराई चलती है उन्हें सबसे ज़्यादा फायदा मिले। तकाबियों का भी वही हाल। अपने समर्थकों को सबसे बड़ी रकमें, फिर उनकी माली हालत कितनी भी अच्छी क्यों न हो। उनके खेतों में पम्प, ट्रैक्टर, बिजली सब कुछ। और उनसे तकावी वापस वसूल करने की तहसीलदार की हिम्मत नहीं। जिसने एक-दो तगादे किए और ज़्यादा कर्तव्यपरायणता बरती कि उसका तबादला पक्का ही समझिए। बिना किसी दाग के उसने छुट्टी ली तो उसकी किस्मत। वरना मुख्य मन्त्री के कान भरने में भी कमी नहीं की जाती कि वह पैसे खाता है। वह बेचारा जानता भी नहीं कि उसके खिलाफ क्या कहा गया है, उसकी क्या बाज़ू है, और वह इकतरफा की शिकायत से कन्डेम (रद्द) कर दिया जाता। सहकारी संस्थाएं तो चरित्र के अभाव में कानूनी तरीके से अपने और अपने पिछलग्गुओं के घर भरने की साधनमात्र होतीं। उनमें सबसे ज़्यादा उनकी चलती जिनके हाथ में डण्डा हो, चाहे वह सत्ता का डण्डा हो या लकड़ी का डण्डा। सत्ताधारी लोगों में तथा डण्डा चलाने वाले गुण्डों में ऐसी सांठ-गांठ होती कि स्वराज्य और नव निर्माण के नाम पर जो भी टपकता वह ये लोग बीच ही में झेल कर आपस में बांट खाते। सर्वसाधारण जनता

तक उसके पहुंचने की गुंजाइश ही नहीं थी। वह जनता पहले भी बेज़बान थी, अब भी बेज़बान है। उसके दुख-दर्द को सुनने-समझने वाला कोई नहीं, उसपर क्या बीत रही है, क्या गुज़र रही है इसकी कानोंकान खबर नहीं। योजनाओं के नाम पर चांदी की गंगा बह रही थी। जिनको उसका हिस्सा मिल जाता वे अखबारों में, असेम्बलियों में, सभा-मंचों पर से दहाड़-दहाड़कर कहते कि देश की काया पलट रही है। देश में नई क्रांति हो रही है, देश का उद्धार हो रहा है। सरकारी प्रचार-विभाग तथा उनकी फिल्में उन्हींकी आवाज़ का, उन्हींके चित्रों का प्रचार करतीं। और वह भी इतने ढोल-ढमाके के साथ कि इस तस्वीर का दूसरा भी पहलू है यह कहने की किसीकी हिम्मत ही नहीं होती। जैसे सरकार के सिर पर मुहर्रम की सवारी चढ़ गई हो और वे लोग चिल्ला रहे हों—हुसैन, हुसैन !! हुसैन, हुसैन !!

धनंजय इन सब बातों को देखता और सोचता कि यह क्या हो गया? कोई काम शुद्ध और निर्मल वृत्ति से होता नहीं। कोई भी स्कीम कागज़ पर कितनी भी पवित्र और कल्याणकारी क्यों न लगे, प्रत्यक्ष अमल में उसके तीन-तेरह हो जाते। उसके उद्गम के पीछे शायद कल्पना शुद्ध रहती पर उसके प्रवाह में न जाने स्वार्थ, लोभ और मोह की कितनी उपनदियां आकर मिल जातीं कि वह आगे चलकर दूषित हो जाता, विषैला बन जाता। और जब गन्दगी ऊपरी नेतृत्व की सतह से शुरू होती है तो नीचे के स्तर पर, यानी पार्टी के छोटे-छोटे नेताओं में, सरकारी कर्मचारियों में, तथा इन सब उलटे-सीधे कामों की दलाली का पेशा बनाने वाले लोगों में तो वह सौ गुना विषाक्त होकर फैल जाती है।

धनंजय ने कहीं एक किस्सा पढ़ा था, एक बादशाह का, जो अपने नौकरों और सिपाहियों के साथ अपने राज्य में शिकार के लिए गया था। एक ग्राम के बगीचे के पास उसने डेरा डाला। बाग के मालिक को खुशी हुई कि आज मेरी किस्मत जाग उठी जो हुज़ूर बादशाह के कदम मेरी ज़मीन पर लगे। उसने अपना आदर व्यक्त करने के लिए उन्हें चुनिन्दा चालीस पके आम भेंट किए। बादशाह ने हुक्म दिया कि इनकी कीमत में चालीस मुहरें फौरन चुका दो। उनका खजांची बोला :

'हुज़ूर, ये आम तो उसने आपकी मुहब्बत के खातिर भेंट किए। उनकी कीमत चुकाने की क्या ज़रूरत? और वह भी इस तरह सौ गुना?'

बादशाह ने कहा, 'ये आम अगर मुफ्त में रख लूं तो कल मेरे सिपाही तो उस गरीब के बाग को उजाड़ डालेंगे। मैं तो रियाया का पालनहार हूं। मुझे तो उससे

लेने की वजाय उसे देना ज्यादा चाहिए।'

धनंजय को कहानी की यह नसीहत बहुत पसन्द आई थी। हाथ में जितनी अधिक सत्ता रहती है, उतना ही अधिक विवेक रखना होता है। राजा यदि व्यभिचारी निकला तो प्रजा में दुराचार की सीमा नहीं रहती। वह यदि धर्मात्मा है तो उसका राज्य धर्मराज्य हो जाता है। गीता का वचन स्पष्ट है :

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करता है वैसा-वैसा आचरण अन्य पुरुष भी करते हैं। इसलिए श्रेष्ठत्व संयम और उत्तरदायित्व का निमन्त्रण है, स्वच्छन्द आचरण का परवाना नहीं। श्रेष्ठत्व कांटों का ताज पहनता है, शर-शय्या पर शयन करता है; भोग-विलास के मुलायम बिछौने पर नहीं। इस प्रारम्भिक मूल-भूल तत्व का अवसान करने से ही हमारी बुराइयां शुरू हुईं, ऐसी उसकी धारणा थी।

इसका अर्थ यह नहीं है कि देश के सबके सब नेता इसी तरह पथभ्रष्ट हो गए। कुछ-कुछ ऐसे ज़रूर थे जो इस पतन और परिवर्तन को देखकर दुखी थे। पर सत्ता-हस्तांतरण के बाद अधिकारों और सुविधाओं की, आराम और विलास की जो भयंकर बाढ़ आई उनमें सारे संयम और आदर्श बह गए। उस बाढ़ को रोकने की शक्ति उनमें नहीं बची थी। जिस एक व्यक्ति में यह शक्ति थी उसने गोली खाकर आंखें बन्द कर ली थीं। पर उसका दिल पहले टूट गया था, गोली बाद में लगी। सत्ता-कामिनी के स्पर्श मात्र से उसने अपने बड़े से बड़े शिष्यों को तपोभ्रष्ट होते देखा, और अपना विदीर्ण हृदय लेकर वह नोआखाली के वीरानों में विचरण करते हुए मृत्यु की कामना करने लगा। वह देवता का प्यारा था इसलिए उसे इच्छा-मरण प्राप्त हुआ। जब अपना ही पराया हो जाए और आदर्शों की हत्या होने लगे तब जीने में क्या अर्थ है? इसका अर्थ यही है कि अन्तर्धान होने का समय आ गया है। कौन कह सकता है कि उसके अन्तिम शब्दों में 'हे राम' के साथ ही साथ यह गगनभेदी प्रार्थना न उठी हो, जैसी कि ईसा के मुंह से निकली थी, कि हे मेरे आकाश-वासी पिता! उन्हें माफ कर दो क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

इस विचारों के चक्र ने धनंजय को पागल बना दिया। उसकी नींद हराम हो गई। उसकी अन्तर्व्यथा और छटपटाहट देखी नहीं जाती थी। गीता उसे अपने हृदय से लगाती, सांत्वना देती। पर वह जानती थी कि उसकी असली सांत्वना

उसके हृदय में बसने वाले देवता की ओर से ही मिलेगी। यह सब समुद्र-मंथन और विष का प्राशन वही करा रहा है। और यह ध्रुव सत्य है कि उसको अमृत का प्रसाद मिले बिना रहेगा नहीं, ठीक उसी तरह जैसे रात के बाद दिन आता है। सब कुछ समय का ही खेल है।

२२

लोक-कर्म विभाग के मन्त्री श्री मनमोहन बाबू के खारी बावली के डाक बंगले के अनाचार की खबर 'युगान्तर' में प्रकाशित होते ही तहलका मच गया। उसपर एक बड़ी टिप्पणी भी प्रकाशित हुई। सत्यवती शर्मा के पत्र पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। फिर भी धनंजय ने एक चक्कर स्वयं उस डाक बंगले तक लगाया और अपने ढंग से जो जानकारी हासिल करनी थी वह की। काफी जांच-पड़ताल के बाद जब उसे विश्वास हो गया कि इसमें तथ्य है, तब उसका प्रकाशन किया। टिप्पणी में यह लिखा गया था कि हमें मन्त्रियों के ही क्या, किसी भी व्यक्ति के निजी मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। पर जब एक मन्त्री सरकारी काम के बहाने सरकारी डाक बंगले में ही जाकर मन्त्रिमण्डल की शराबबन्दी की नीति के खिलाफ आचरण करता है, वेश्या का गाना सुनता है और शराब में धुत होकर अपने मातहत अफसर का अपमान करता है, जब कि वह सरकारी ड्यूटी बजाने के लिए ही वहां आया था—इस गैरजिम्मेदारी से भरे निर्लज्ज आचरण की हम तीव्र निन्दा करते हैं। मन्त्री का पद व्यक्तिगत भोग-विलास और दुर्नीति का आज्ञापत्र नहीं है। वह एक अत्यन्त उत्तरदायित्व की जगह है जहां जनता के कल्याण के लिए अपने सदाचार और सेवावृत्ति की सुरक्षा बड़ी मर्यादा और जतन के साथ करनी होती है। हम मुख्य मन्त्री से आग्रह करते हैं कि वे व्यक्तिगत रूप से इस प्रकार से प्रकरण की जांच करें और यदि ये आरोप सच साबित होते हैं तो सम्बन्धित मन्त्री महोदय के खिलाफ उचित कार्रवाई करें। यह कार्रवाई तो उन्हें मन्त्रिपद से हटाने में ही पूरी हो सकती है। हम मुख्य मन्त्री को यह सुझाव भी देना चाहते हैं कि ऐसे अनिर्बन्ध स्वैराचार के लिए कौन-कौन-से

तत्व जिम्मेदार हैं, और यह किस प्रकार के वातावरण के कारण होता है इसकी भी जांच करें। क्योंकि यह घटना कोई इक्की-दुक्की घटनाओं में से नहीं है, बल्कि एक व्यापक रोग की निशानी है जो हमारे राजनीतिक, सामाजिक और शासकीय जीवन को ग्रस रहा है। हमें समय रहते ही सबक सीखना चाहिए और काल-पुरुष की चेतावनी सुननी चाहिए।

'युगान्तर' की टिप्पणी गंभीर स्वरूप की थी और उसकी ओर मनमोहन बाबू तो क्या स्वयं मुख्य मन्त्री भी दुर्लक्ष्य नहीं कर सके। इसमें उनके ऊपर तो प्रत्यक्ष आघात नहीं था, पर अप्रत्यक्ष रूप से उनपर भी इस घटना की पृष्ठभूमि और वातावरण की जिम्मेदारी डाली गई थी। टिप्पणी छपते ही गिरधारी उनके पास पहुंचा और बोला :

'देखा मामाजी! कैसा गहरा वार है? आपको धमकी दे रहा है, धमकी। जिसको दूध पिलाया वह आज काटने को दौड़ रहा है। जिस पत्तल में खाना उसी में छेद। वाह री दुनिया! मैं कहता हूं कृतघ्नता की भी हद है।'

जोशी जी भीतर से भरे तो बैठे ही थे, गिरधारी ने आग में तेल झोंकने का काम किया। पर बहुत गहरे और चतुर व्यक्ति थे। बोले, 'नहीं, इस प्रकरण की जांच करनी होगी। पहले तो मुझे मनमोहन बाबू से ही बात करनी होगी। देखना तो होगा कि इसमें तथ्य कितना है?'

यह पहला ही मौका था कि जोशी ने 'युगान्तर' के बारे में इतनी भी बात सुन ली। वरना जब से गिरधारी के हाथ से अखबार निकालकर धनंजय के हाथ में सौंपा था तब से तो एक बार भी गिरधारी की बात नहीं सुनी थी। जानते थे कि उसके हाथ से अखबार निकला है, इसलिए जला-भुना बैठा है, सो वह जली-कटी बात तो करेगा ही। इसलिए उसे हमेशा दुतकार देते थे। पर आज अच्छा मौका हाथ लगा, और गिरधारी ने उसे छोड़ा नहीं। ज़मीन को ज़रा मुलायम देखकर उसने एक और कुदाली मारी, 'तथ्य क्या है मामाजी, आपको मन्त्रिपद से हटाने की साजिश हो रही है, सम्हल जाइए। मणिलालभाई आजकल ज़रा एक्टिव (सक्रिय) है।'

यह सच है या झूठ, इसकी जांच करने का विवेक कहां? जहां अपने स्वार्थ पर आघात करने की बात आती है उसपर सबसे पहले विश्वास करने को जी करता है।

मणिलालभाई ने एक काम ज़रूर किया कि टिप्पणी पढ़ते ही धनंजय को फोन किया, 'वाह भाई धनंजय! कमाल कर दिया ग्रापने। ग्राज की टिप्पणी पढ़कर मुझे लगा कि इसे कहते हैं पत्रकारिता। मुझे तो पुराने 'युगान्तर' की याद ग्रा गई। वरना ग्राजकल तो पत्रकारिता जैसे मुर्दा हो गई है। बधाई है।'

'खैर ग्रापकी बधाई के लिए धन्यवाद, पर ग्रापके पास भी तो तीन-चार ग्रखबार हैं। उनमें ऐसी पत्रकारिता क्यों नहीं शुरू कराते?'

'ग्ररे ग्राप तो जानते हैं धनंजय भाई, वे संपादक लोग मेरी क्या सुनते हैं? निन्यानवे के फेर में पड़े हैं, निन्यानवे के। मन्त्रियों के भ्रष्टाचार पर प्रकाश डालें तो सरकारी विज्ञापन कैसे मिलेंगे?'

'फिर इस बधाई का क्या ग्रर्थ है मणिलाल भाई, क्या मेरे विज्ञापन बन्द होने का खतरा नहीं है?'

'पर ग्राप तो हमेशा से बहादुर रहे हैं। ग्रापकी ग्रौर इन संपादकों की क्या बराबरी हो सकती है? ग्राप डटे रहिए ग्रौर मेरे लायक कोई सेवा हो तो ज़रूर बताइए।'

'ग्रापकी क्या सेवा ले सकता हूं, मणिलालभाई, ग्राप तो राजनीति वाले पुरुष हैं ग्रौर मेरा राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो सिर्फ नैतिक मूल्यों के कारण ही शासन में भ्रष्टाचार ग्रौर ग्रन्याय को हटाना चाहता हूं।'

'वही मेरा उद्देश्य है।' मणिलालभाई ने कहा।

'पता नहीं। ग्राप तो जोशी जी को वहां से हटाने का प्रयत्न करते हैं पर मेरा इस प्रयत्न में रत्ती भर दिलचस्पी नहीं है। व्यक्तियों से मुझे मतलब नहीं, केवल नीतियों (पॉलिसीज़) से है।'

मणिलालभाई ने दो मिनट बाद ही 'जागरण' के सम्पादक डॉ० छदामीलाल को फोन करके इस बातचीत का ग्रपने मतलब का ब्यौरा बताकर कहा, 'देखा छदामी! राजा-महाराजाग्रों के भ्रष्ट पैसे से ग्रखबार चलाकर ग्रब भ्रष्टाचार हटाने की ग्रौर नीतिमत्ता की बात करता है! कैसा पाखण्डी है! पर हमें क्या करना है। ग्रभी तो उसने जो लिखा है उससे जोशी जी का बाजू कमजोर होता है। बस, उस हद तक मेरा काम बनता है।'

छदामी बड़ा दूरदर्शी था। इधर जोशी जी से भी सांठ-गांठ रखता था ग्रौर उन्हें मुख्य मन्त्रित्व से हटाकर उनकी जगह पर बैठने का स्वप्न देखने वाले मणि-

लालभाई से भी। राजनीति चंचल होती है, न जाने कल क्या हो जाए? इसलिए दोनों डग्गों पर हाथ रखने में ही फायदा है। पर इस घटना से उसे मन ही मन खुशी हुई थी। ज़ाहिर है कि जोशी जी ग्रौर धनंजय के बीच कुछ दुराव ग्रा गया है। बस, यही मौका है भीतर धंसने का, ग्रौर ग्रपनी जलन शान्त करने का। फौरन उठा ग्रौर गिरधारी को जाकर मणिलालभाई के टेलीफोन का हाल बताया। पूरी-पूरी बातचीत तो किसीने नहीं बताई पर ग्रपने ही चश्मे के रंग में रंगकर वह बात गिरधारी ने मामाजी को बताई:

'देखिए, मणिलालभाई 'एक्टिव' है न? उसकी धनंजय से टेलीफोन पर बातचीत तक हो गई। उसमें ग्रापको हटाने की बात ही मुख्य थी।'

जोशी जी गंभीर हो गए ग्रौर कुछ न बोले। गिरधारी ने ग्रधिक बोलना उचित न जानकर ग्रपनी लड़की के विवाह की बात छेड़ दी कि कहां-कहां बात चली है। लड़के तो तीन-तीन तैयार हैं पर हमें ही सोचना है कि कहां का रिश्ता ठीक होगा।

जोशी जी ने गिरधारी को विदा करके मनमोहन बाबू को बुलाया। उनके पी० ए० ने जब बताया कि मुख्य मन्त्री ने बुलाया है तो उन्हें पसीना छूट गया। 'युगान्तर' का समाचार ग्रौर टिप्पणी पढ़कर तो वे दिन भर भीतर ही भीतर कांप रहे थे।

जोशी जी के सामने पहुंचते ही उन्होंने 'युगान्तर' का ग्रंक सामने फेंककर पूछा, 'क्या यह सच है?'

मनमोहन बाबू ने त-त-ता-प-प-प करके ग्रपनी टोपी जोशी जी के पैरों में रख दी ग्रौर कहा कि मैं ग्रापका ही लड़का हूं, मुझे बचाइए।

इस शरणागति से जोशी जी का पितृ-हृदय पसीज गया। बोले, 'जाग्रो, पर ज़रा सम्हलकर काम किया करो। ग्राजकल विरोधी लोग एक्टिव हैं।'

बंगले पर पहुंचते ही मनमोहन बाबू ने रघुनाथ सहाय को टेलीफोन पर ही दून की हांकने में कोई कसर नहीं की। बोले, 'मैंने पण्डितजी को सब कुछ साफ-साफ समझा दिया है, ग्रौर मामला ठण्डा हो जाएगा।'

जोशी जी भी मामले को ठण्डा करने की फिक्र में ही थे। एक तो बात के खुलने ग्रौर प्रमाणित होने से उनकी तथा उनके मन्त्रिमण्डल की बदनामी होती; दूसरे, मनमोहन जैसा मन्त्री पड़ा न रहे तो लोक-कर्म विभाग के हज़ारों तरह के

कामों में अपना हाथ कैसे रहे ? उसके बिना सादिकभाई को ठेका कैसे मिलता और गिरधारी का बंगला कैसे बनता ? अब तो मनमोहन और भी मुट्ठी में रहेगा और चपरासी जैसा काम करेगा।

पर इस 'युगान्तर' का क्या करना होगा ? इस धनंजय के सिर पर यह क्या भूत सवार हो गया ?

उन्हें और किसी बात की चिन्ता नहीं थी, सिर्फ थी तो इसी मामले में, क्योंकि धनंजय का हैंडलिंग (पकड़) ज़रा मुश्किल था। वह माने तो मान जाएगा, और न माने तो ? है भी ज़रा सिरफिरा ! ज़िद पर चढ़ गया तो बिगड़ खड़ा होगा। ज़रा शान्ति से काम लेना चाहिए।

उन्होंने उस दिन तो धनंजय को नहीं बुलाया; हांलाकि वह उम्मीद यही करता था। हो सकता है कि जोशी जी जांच करते हों। और इस जांच के फल-स्वरूप वे मनमोहन को मन्त्रिमण्डल से हटा दें और बिगड़ती हुई परिस्थिति पर नियंत्रण कर लें तो कितना अच्छा होगा ? प्रदेश का कल्याण हो जाएगा। उस रात्रि को सोने के पहले उसने ठाकुर जी के सामने कपूर और ऊदबत्ती लगाकर यही प्रार्थना की कि 'हे भगवान ! आप अन्तर्यामी हैं और मेरे मन की बात जानते हैं। मैं आपसे और कुछ नहीं मांगता, केवल इतना ही मांगता हूं कि जोशी जी को सुबुद्धि दें, ताकि जो मैंने लिखा है उसे वे सही अर्थ में लें और मेरे अन्तःकरण की व्यथा को पहचानें। वे पुनः मुख्य मन्त्रिपद पाने के पूर्व के जोशी जी बन जाएं, उसी प्रकार के आदर्शवादी, त्यागी और कर्तव्यनिष्ठ !'

कपूर की ज्योति फड़फड़ाकर हिल उठी मानो वह अट्टहास कर रही थी कि रे मूरख, तू कितना भोला है ? पर साक्षात कृष्ण भगवान ने, जिनकी कि वह उपासना करता था, क्या सोचा और क्या कहा यह उसे ज्ञात नहीं हुआ। वह उनकी मूर्ति की तरफ सजल नेत्रों से देखता रहा। उसे लगा, या भास हुआ, कि वह उसकी ओर देखकर धीमे-धीमे मुसकरा रही है।

२३

दूसरे दिन सुबह ही जोशी जी का धनंजय को टेलीफोन आया कि कहिए, क्या हाल है ? बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई है। यदि फुर्सत हो तो कभी मिलने आ जाइए।

धनंजय ने कहा कि रात को नौ बजे आ जाऊंगा। यही वक्त था जब उन लोगों की अक्सर भेंट हुआ करती थी। यह सच था कि कई दिनों से उनकी मुलाकात ही नहीं हुई थी। इधर उसके कानों में जो बातें आ रही थीं और जो हृदय-मंथन चल रहा था उसके कारण स्वयं उसका उत्साह ठंडा पड़ गया था। वह खुद भी इस परिस्थिति पर जोशी जी से बातचीत करना चाहता था, पर खुद नहीं जाना चाहता था। खारी बावली की घटना के प्रकाशन से यही नौबत आ गई कि स्वयं जोशी जी को उसे बुलाना पड़ा। यही वह चाहता भी था।

धनंजय ने जोशी जी के कमरे में पहुंचते ही अनुभव कर लिया कि वातावरण में वह आत्मीयता नहीं है जो अक्सर उनके बीच रहा करती थी। फिर भी जोशी जी ने कुछ हंसकर और कुछ गंभीरता से पूछा :

'आजकल आपके पेपर में यह अनाप-शनाप क्या छप रहा है ? शायद आपका ध्यान उधर नहीं रहा, किसी सब-एडिटर ने छाप दिया होगा।'

'कैसा अनाप-शनाप ? आपका इशारा किस मज़मून की तरफ है ?'

'यही हमारे लोक-कर्म-मन्त्री श्री मनमोहन बाबू के बारे में।'

'वह खारी बावली के डाक बंगले की घटना ? वह तो, जहां तक मैंने तहकीकात की है, सच मालूम पड़ती है। इसलिए उसका प्रकाशन मैंने ही कराया, सब-एडिटर ने नहीं। उसमें भी तो यही मांग की है कि आप स्वयं उसकी जांच करें और बात ठीक निकल जाए तो उन्हें मन्त्रिपद से हटा दें।'

'इतनी-सी बात पर मन्त्रिपद से हटा देंगे तो सारे मन्त्रिमण्डल की बदनामी नहीं होगी ? यह मैं कैसे बर्दाश्त कर सकता हूं ?'

'यह इतनी-सी बात है ? मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि आपको यह बात छोटी-सी मालूम पड़ती है। एक ज़िम्मेदार मन्त्री का यदि यह आचरण रहे तो उसके मातहत काम करने वाले अधिकारियों को कितनी छूट मिल जाती है ? फिर हमारे नैतिक मूल्यों और आदर्शों का क्या होगा ?

जोशी जी ने फौरन पैंतरा बदला क्योंकि वे आदर्शों और नैतिक मूल्यों की चर्चा में नहीं उलझना चाहते थे। बोले, 'खैर, मान भी लिया कि बात छोटी नहीं है, पर छापने के पहले हमें बता तो देते। हम उसकी इनक्वायरी करा लेते और बात सही निकलती तो फिर आपकी जो मरज़ी आती सो करते।'

'आप अभी इनक्वायरी कर लीजिए। यदि बात गलत निकली तो मैं अपने अखबार में उसी स्थान पर उसी प्रकार के हेडिंग के साथ सार्वजनिक तौर पर क्षमा मांग लूंगा।'

'अब इनक्वायरी करने से क्या फायदा? बदनामी तो पहले ही हो गई है। पहले की बात कुछ और थी।'

'जोशी जी, पचासों मामलों पर मैंने आपके पास 'इनक्वायरी' के कागज़ भेजे, और आपके कहने के मुताबिक सम्बन्धित मन्त्रियों और अधिकारियों के पास गया पर एक भी इनक्वायरी ठिकाने नहीं लगी और कुछ पल्ले नहीं पड़ा। ये कागज़ात उन पत्रों के बारे में थे जो प्रकाशनार्थ मेरे पास आए थे। उनको छापना मेरा कर्तव्य था, पर मैंने मन्त्रिमण्डल के साथ ज़िम्मेदारीपूर्ण व्यवहार किया कि उन्हें पहले आगाह किया क्योंकि मुझे शिकायतों का निवारण चाहिए था, खाहमखाह मन्त्रिमण्डल की बदनामी नहीं चाहिए थी। पर आपके शासन ने कौड़ी भर सहयोग नहीं दिया। यहां तक कि लोगों की धारणा हो गई कि 'युगान्तर' पत्र मुर्दा हो गया है और वह केवल मन्त्रिमण्डल का भाट बन गया है। पेपर की बिक्री घटती जा रही है और दिन-रात मेहनत-मशक्कत करने के बाद भी आमद-खर्च का जोड़-तोड़ मिलाना मुश्किल हो रहा है।'

'यही बात है तो आपने पहले मुझसे क्यों नहीं कहा? और रुपया इकट्ठा कर लेते।'

'नहीं, यही बात नहीं है। असली बात है समाचारपत्र की नीति और कर्तव्य की। उसे भाट बनने में एतराज़ नहीं है बशर्ते कि जिसका गुणगान वह करता है उसका विषय उस लायक हो। भूषण कवि छत्रसाल और शिवाजी के भाट थे या तुलसीदास जी रामचन्द्र जी के भाट बने और सूरदास ने कृष्ण की महिमा गाई तो वे चरित्र भी उसी प्रकार के उज्वल चरित्र थे। क्या हम सब लोगों ने गांधीजी की भाटगिरी नहीं की? वह हमने स्वेच्छा से की क्योंकि वे उस योग्य थे। जिस मन्त्रिमण्डल में मनमोहन जैसे दिव्य पुरुष हैं, उसका समर्थन कैसे हो सकता है? आप

उन्हें हटा दीजिए और यह आश्वासन दीजिए कि ऐसी बातें अब न दुहराई जाएंगी, इसके लिए आप स्वयं जागरूक रहेंगे, तो बात अलग है।'

जोशी जी की जो धाक थी उसमें उनसे कोई ऐसी हुज्जत करे ऐसी उन्हें आशा ही नहीं थी। मन ही मन गुस्सा भी आ रहा था। सोच रहे थे कि छोटे मुंह वड़ी बात कह रहा है। फिर भी ऊपर से शान्त होकर बोले :

'हमारे पास कोई शिकायत आए तो हम सब समय उसकी जांच करने के लिए तैयार हैं। हम एक एण्टी-कॉरप्शन स्क्वाड (भ्रष्टाचार विरोधी दल) बना रहे हैं जो भ्रष्टाचार का नियन्त्रण करेगा। पर मैं मनमोहन को हटाकर एक क्राइसिस (संकट) खड़ा नहीं कर सकता। फिर तो आए दिन कोई भी अखबार किसी भी मन्त्री के खिलाफ कुछ भी लिख देगा और हमें उसे हटाना पड़ेगा। ऐसा हम थोड़े ही कर सकते हैं? हमने मनमोहन बाबू को ताकीद दे दी है कि वे दुबारा ऐसी शिकायत न आने दें। आप ही बताइए, घर का लड़का यदि एकाध गलती कर गया तो क्या उसे घर से निकाल दिया जाता है?' जोशी जी ने धनंजय की भावना को स्पर्श करने का प्रयत्न किया।

'उसे घर से निकाला जाए न निकाला जाए इसका खास महत्व नहीं है। मन में दया है तो उसे रखा भी जा सकता है। पर उसे सार्वजनिक उत्तरदायित्व के पद पर तो कदापि नहीं बिठाया जा सकता। आप मनमोहन बाबू को मंत्रिपद से हटा दीजिए फिर चाहे तो निजी तौर पर उनके चरितार्थ का इन्तज़ाम कर दीजिए। पर ऐसे आदमियों को जनता के कोष से पोसना अयोग्य है।' धनंजय अपनी बात पर अड़ा ही रहा। जोशी जी ने तो इस प्रश्न पर आज ही सोचा होगा, पर वह तो इसके सोच-विचार में कई रातें गुज़ार चुका था।

'आप ज़रा-सी बात को बड़ा तूल दे रहे हैं धनंजय बाबू। राजकाज इस तरह नहीं चला करता। बहुत सोच-समझकर चलना पड़ता है। हम विरोधियों के हाथ में कोई हथियार थोड़े ही दे देंगे?'

'जोशी जी, बड़े खेद की बात है कि आप इसे ज़रा-सी बात कहते हैं, और एक बिलकुल अलग रुख अख्तियार कर रहे हैं। मैं आपसे कहता हूं कि आपने एक बार यह सख्त कदम उठा लिया तो सारी शासकीय मशीनरी आतंक खा जाएगी और सतर्क हो जाएगी और आपकी व्यक्तिगत लोकप्रियता में भी वृद्धि हो जाएगी। लोग कहेंगे कि शाबाश जोशी जी, अनैतिकता को कोई प्रश्रय नहीं देते। मेरी राय

में तो आपकी ख्याति में चार चांद लग जाएंगे। यह मैं आपके हित की बात ही कह रहा हूं। वैसे मेरी मनमोहन बाबू से क्या दुश्मनी है ? दो-एकबार यहां-वहां मिला हूं, सार्वजनिक कार्यक्रमों में। मेरा किसीसे राग-द्वेष नहीं है। पर लोग काम ठीक करेंगे तो 'युगान्तर' उनका समर्थन करेगा और न ठीक किया तो उनकी आलोचना करने में कसर नहीं करेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि वह दिन-रात आलोचना ही करता रहेगा या मंत्रिमण्डल का शत्रु बन जाएगा। नहीं, यह बात हर्गिज़ नहीं है। पर राष्ट्रीय दल का मंत्रिमंडल विशुद्ध राष्ट्रीयता और सम्पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ काम करे यह वह ज़रूर चाहेगा। आपसे मैं हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करता हूं और आपसे आग्रह करता हूं कि आप उसपर अवश्य ध्यान दें।'

प्रार्थना और हाथ जोड़ने के शब्दों से जोशी जी का 'अहं' कुछ शांत हुआ पर वह जिस बात की मांग कर रहा था वह बहुत कठिन थी। कोई किसीसे कहे कि आप अपनी संपत्ति का त्याग कर दीजिए, सत्ता या स्वार्थ का त्याग कर दीजिए, मैं पैर पर सिर रखता हूं तो कभी कोई करेगा ? गांधीजी ने अंग्रेज़ों से घुटने टेककर कहा था कि आप स्वेच्छा से भारत के गले में लगाया हुआ फांस खोल डालिए तो क्या उन्होंने ऐसा किया ? इस प्रकार की नम्रता और शालीनता में वज्र की-सी दृढ़ता होती है यह बात जोशी जी न समझते हों सो बात नहीं पर धनंजय जो कह रहा था वह उनकी नई जीवन-प्रणाली के ठीक विपरीत था। एक आदर्शवादी युवक की इच्छा के सामने उसपर पानी फेरने की मूर्खता भला वे कैसे कर सकते थे ?

फिर भी उन्होंने ऊपर से हंसते हुए कहा, 'आप तो बड़े भावुक व्यक्ति हैं—हमेशा ऐसे ही रहे हैं, मैं जानता हूं। आप और सोच लीजिए। मैं खुद भ्रष्टाचार की शिकायतों को 'डील' करने के लिए एक ठोस कदम उठा रहा हूं। दो-एक दिन में आपके पास प्रेस-नोट पहुंच जाएगा। अच्छी बात है।' कहकर उन्होंने नमस्कार किया। यह उनका मुलाकात खतम करने का तरीका था। धनंजय ने भी नमस्कार किया और निकल पड़ा।

उस समय गिरधारी मामाजी के भीतर वाले कमरे में बैठा-बैठा सब सुनने की कोशिश कर रहा था। उसे पूरा-पूरा सुनाई तो नहीं दिया पर इतना उसकी समझ में ज़रूर आ गया कि कुछ गरमा-गरमी की बहस छिड़ गई थी। इंटरव्यू समाप्त होते ही वह भीतर ही भीतर पिछवाड़े की तरफ निकल गया, और पाखाने में जा बैठा।

बाद में उसने अर्दली से पूछा कि क्यों रे, क्या हुआ ? बहुत लड़ाई-झगड़ा हुआ ?

अर्दली इंटरव्यू के पहले ही गिरधारी से दो रुपया इनाम पा चुका था। बोला, 'हां साहिब। बड़ी गिटपिट-गिटपिट बहस होती रही। हमेसा महाराज एडीटर साहब को पानदान पेस करते रहे पर आज वह भी नहीं किया।'

आज बातचीत की गरमी में जोशी जी पान खिलाना भी भूल गए, यह सच था। पर जब धनंजय चला गया तब उन्हें इसका ख्याल आया और बुरा भी लगा, क्योंकि व्यवहार में हमेशा वे बड़े शिष्ट रहा करते थे। उनकी आन्तरिक भावनाओं का न तो चपरासी को पता था न गिरधारी को। पर आज पान भी नहीं खिलाया गया। इसपर से ही गिरधारी ने अन्दाज़ बांध लिया कि दोनों के बीच अब ठनने की नौबत आ गई है। खुशी के मारे फूल उठा। इतना फूला, इतना फूला कि घर जाकर हातिमभाई की भेजी हुई बोतल सफाचट कर गया।

धनंजय घर लौटा तो ग्यारह बजे थे। गीता खाना खाने के लिए उसका इन्तज़ार कर रही थी। धनंजय को प्रेस से आने में देर हो गई थी, इसलिए वह बिना खाए ही जोशी जी के यहां चला था। आते ही बोला, 'देखो गीता रानी! यही बात तो मुझे पसन्द नहीं आती कि तुम बेवक्त मेरे लिए भूखी बैठी रहो। तुम्हारा स्वास्थ्य इधर ढीला चल रहा है। वक्त से दोनों जून भोजन कर लो तो बिना दवा के तुम अच्छी हो जाओगी।'

'ऊंः इसमें क्या हो गया ?' गीता ने कहा, 'आप तो जानते हैं कि मैं आपके पहले कभी खाना नहीं खा सकती। वह गले के नीचे उतरता ही नहीं।'

'पर तुम तो जानती हो कि यह अखबार का काम कैसा है ? कितना पिसना पड़ता है ? कभी-कभी कोई काम अटक गया तो कब खतम होगा इसका भरोसा नहीं। और फिर यह बाहर घूमना, मिलना-जुलना भी तो चलता रहता है। पर तुम मेरा सब मानती हो, इतना ही क्यों नहीं मानतीं ?'

'छोड़ो भी इस बात को,' गीता ने कहा। 'इसपर तो हम लोग पचासों बार बहस कर चुके हैं, और अभी तक यह सवाल तय नहीं हो पाया। पर यह तो बताओ कि इतनी देर कैसे लगी ? क्या नतीजा निकला ?'

'कुछ नहीं, वे मनमोहन को अलग करने के लिए तैयार नहीं हैं ? और न उस घटना की उनके मन पर उतनी तीव्र प्रतिक्रिया ही हुई जितनी कि किसी विवेक-

शील आदमी के दिल पर होनी चाहिए। मेरी तो धारणा हो रही है कि शासन और सत्ता के वातावरण में रहकर उनकी विवेक-बुद्धि भी बधिर हो गई है। किसी बात का उनपर असर नहीं पड़ता।'

'तो फिर ?'

'तो फिर क्या ? कहते हैं भ्रष्टाचार निवारण के लिए मैं एक स्क्वाड तैयार कर रहा हूं जिसकी घोषणा दो दिन के भीतर हो जाएगी। बस !'

'पर तुम जो बात कह रहे थे उसकी नीयत की प्रामाणिकता तो उन्हें जंची, कि नहीं जंची ?'

'वह तो जंची होगी पर मेरी धारणा है कि वे स्वयं इन बातों में इतने उलझ गए हैं कि उससे बाहर निकलना उनके लिए कठिन हो रहा है। कोई बात है जो भीतर ही भीतर उनकी तेजस्विता और पुरुषार्थ को खा रही है। बुढ़ापा हो, या कोई लोभ या मोह हो। व्यक्तिगत मामलों में वे तुरन्त दिलचस्पी ले लेते हैं पर मूलभूत प्रश्नों की सार्वजनिकता उन्हें 'इंटरेस्ट' ही नहीं कर पाती। अजीब-सी बात है। मेरा तो उनसे इन सार्वजनिक प्रश्नों के कारण ही रिश्ता बंधा था। वह बुनियाद ही यदि ढह गई तो कैसे काम चलेगा, समझ में नहीं आता।'

'क्यों, चिन्ता होती है ?' गीता ने पूछा।

'अरे नहीं, बिलकुल नहीं। आज की मुलाकात के बाद तो मेरी धारणा और भी दृढ़ हो गई कि मेरा दृष्टिकोण सही है और उनके दृष्टिकोण में कमज़ोरी है। इसलिए मुझे रत्ती भर भी चिन्ता नहीं है। मिलने के पहले मुझे थोड़ा संकोच था कि हो सकता है कि उनका भी कोई पहलू हो जो शायद मेरी नज़र में न आया हो। पर पहलू-वहलू कुछ नहीं है। सीधी बात यही है कि वे इस मामले में कोई बुनियादी कदम उठाना नहीं चाहते क्योंकि वे उस मुकाम से वापस नहीं लौटना चाहते जहां चार वर्षों के सत्ता-भोग के बाद पहुंच चुके हैं।'

'खैर, देखा जाएगा। तुम्हें चिन्ता नहीं है, और तुम्हारी विवेक-बुद्धि शांत है तो सब ठीक है। आओ, पहले खाना खा लो।' गीता ने कहा।

ज़्यादा बर्तन न मांजने पड़ें इसलिए वे एक ही थाली में खाने बैठ गए। इस सह-जीवन और एकत्व की भावना के सामने उनके सारे प्रश्न, सारी चिन्ताएं, सारी मुसीबतें हवा हो जातीं। और उनके आन्तरिक जीवन में सदा-सर्वदा विद्यमान रहता एक परम सात्विक संतोष और आनन्द, एक मांगलिक प्रकाश जिसमें

मन्दिर के धूप-दीप की आभा और सुरभि मिली हो। इस परम सन्तोष और आन्तरिक शान्ति के आंचल में धनंजय और गीता दोनों ही अद्भुत शक्ति और धैर्य का अनुभव करते थे, मानो वे पहाड़ों से टक्कर लेने की क्षमता रखते हों। इस आत्मविश्वास और आश्वासन की पृष्ठभूमि में वे उठे और ठाकुरजी के पास नीराजन लगाकर निश्चिन्त होकर सोने चले गए और थकावट के कारण पांच मिनट के भीतर खुर्राटे लेने लगे।

२४

दो दिन के बाद ही शासन की ओर से घोषणा हुई कि भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने के लिए एक विशेष पुलिस-विभाग की कमेटी बनाई गई है, जो प्रत्येक शिकायत की जांच करेगी। उसे कुछ अतिरिक्त अधिकार रहेंगे, ताकि वह किसी भी व्यक्ति को गवाही देने के लिए मजबूर कर सके। और भी विशेष अधिकार थे जैसे शक पर ही किसीकी तलाशी लेना, किसी भी सामग्री की ज़प्ती कर लेना आदि-आदि, ताकि सबूत तितर-बितर न हो जाएं। कमेटी का अध्यक्ष एक सेवा-निवृत्त पुलिस का उच्च कर्मचारी था, रायसाहब रणदमन सिंह, जो जल्लाद माना जाता था और जिसके बारे में आम तौर पर यही ख्याल था कि इसने ज़िन्दगी भर खाने-पीने के सिवा और कुछ किया नहीं। वह एक मामूली थानेदार से डी० आई० जी० के पद तक तरक्की पा चुका था और उसका तजुर्बा तीस साल का लम्बा तजुर्बा था। उसकी नियुक्ति के पक्ष में यही सबसे मज़बूत दलील थी। अंग्रेजों के ज़माने में तो वह उस शासन की नाक का बाल था। उन दिनों वह पोलिटिकल विभाग में सी० आई० डी० का काम करता था और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के पेट में घुसकर उनका भेद निकालना उसका काम था। घर का भेदिया हमेशा खुले दुश्मन से ज्यादा खतरनाक होता है, पर विदेशी राज्य को वही सबसे अधिक उपयोगी होता है। जो काम अंग्रेज अफसर अपनी गोरी चमड़ी के कारण नहीं कर सकते थे वह यह आदमी अपनी काली चमड़ी और काले दिल के कारण आसानी से कर सकता था। दंगा करा देना, गुण्डों से किसी भले आदमी को पिटवा देना,

कहीं आग लगवा देना, कहीं कतल करा देना, तो कहीं खून को पचा डालना, यह सब उसके बाएं हाथ का खेल था। उसके मकान के पाये में कहा जाता था कि मिट्टी की ईंटें नहीं सोने की ईंटें लगी हैं। जब तक वह सरकारी हाकिम था तब तक उसका बड़ा आतंक था। लोग उससे बहुत घबड़ाते थे और उसके सामने कोई बात करने से डरते थे। सब यही चाहते थे कि भगवान करे उसकी साया भी हमपर न पड़े। न उसकी दोस्ती भली न दुश्मनी। शौक उन्हें हर तरह के थे। थे तो ब्राह्मण, पर अंग्रेज़ों की कृपा पाने के लिए अपने नाम के आगे ठाकुरों की तरह 'सिंह' लगाते थे। सिंह शूरता का भी तो लक्षण है। उन्होंने आधुनिकता का जामा अंग्रेज़ों के ज़माने से ही पहन रखा था, इसलिए मटन और व्हिस्की से उन्हें खास एतराज़ नहीं था। शादीशुदा दो औरतें थीं, पर जिस तरह बंधी तनख्वाह के अलावा ऊपरी आमदनी पांच गुना अधिक थी उसी प्रकार धर्मपत्नियों के अलावा कई पेशेवर और गैरपेशेवर स्त्रियों का उद्धार करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। जब रिटायर हुए तो ऐसे फड़फड़ाए जैसे पंख कट गए हों। जिस आदमी को पद या ओहदे की लत लग जाती हो और अपने निज के गुण न रहते हों, जिनके बल पर समाज में वह टिक सके, तो पद के जाते ही वह जल बिनु मीन की तरह छटपटाने लगता है। इन महाशय की भी यही हालत रही। सारी जिन्दगी दूसरों पर शक करने में और उनका बुरा चेतने में ही गई, इसलिए उन्हें भी हमेशा यही भय बना रहता कि अब चूंकि मैं रिटायर हो चुका हूं और इस तरह अरक्षित हूं, कहीं पुलिस विभाग के जले-भुने अफसर ही मुझपर कोई मामला न चला दें। ऐसे अफसरों की संख्या कम नहीं थी, क्योंकि अपने मातहतों को त्रास देने में उन्हें हमेशा बड़ा लुत्फ आया करता था। क्रूर व्यक्तियों की क्रीड़ा यही होती है कि वह अधमरे पक्षी की छटपटाहट देखकर किलोलें भरे। न वह पूरा जिन्दा रहे न पूरा मरा। और, मामले के लिए तो वे खुद जानते थे कि उनके खिलाफ कितना मसाला है। एक बार यदि उसका सत्र चल पड़ा तो मरते दम तक चैन नहीं होगी और मृत्यु भी शायद कैद की चक्की पीसते ही हो। ऐसी भयंकर संभावना से बचने का, आत्मरक्षा का यही एकमात्र उपाय था कि किसी तरह वापस किसी न किसी ओहदे पर चले जाएं।

इसी एक लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने जोशी जी की वह खुशामद शुरू की, वह खुशामद शुरू की कि बड़े-बड़े दरबारियों को लजा दिया। अपनी चाल में मज़-बूती लाने के लिए उन्होंने एक और पांसा फेंका। उनका एक शादीशुदा भतीजा था

जिसको वे अपने जमाने में ही पुलिस विभाग में आई० पी० एस० में जमा गए थे और जोशी जी की एक दूर की नातिन थी जिसके विवाह की चिन्ता में वे परेशान थे; इन महाशय ने इस सम्बन्ध का लालच भी खड़ा कर दिया। उनके भतीजे को इस जगह विवाह करने का मन नहीं था, क्योंकि उसे एक दूसरी लड़की ही पसन्द आ गई थी, पर जनाब ने डांट-डपटकर उसे किसी तरह राजी कर लिया। आखिर वह उन्हींका आश्रित था। उन्होंने ही उसे पढ़ाया-लिखाया था, उन्होंने ही उसे नौकरी से लगाया। उनकी इच्छा का अवमान करने की ताकत वह कहां से पाए ?

कुल मिलाकर नतीजा यह हुआ कि भ्रष्टाचार निर्मूलन कमेटी के अध्यक्ष के रूप में उनकी ही नियुक्ति हुई और वे जोशी जी के खास सलाहगीर बन गए। और अब तो रिश्तेदारी भी जम रही थी।

रायसाहब रणदमन सिंह जानते थे कि प्रान्त में उनकी जो ख्याति है उसे देखते हुए उनकी नियुक्ति आसानी से हज़म नहीं होगी। इसलिए उन्होंने स्वयं ऑफर किया कि वे इस कार्य को केवल सार्वजनिक सेवा की दृष्टि से कर रहे हैं, और अपने अनुभव का लाभ जनता के, राष्ट्रीय शासन को देना चाहते हैं इसलिए वे सिर्फ बरायनाम एक रुपया का वेतन लेंगे। बाकी बंगला, मोटर, टेलीफोन, सिपाही, नौकर, जो उन्हें मिलेंगे वे केवल उनके कर्तव्य को अदा करने की दृष्टि से।

इन महाशय को वेतन की जरूरत नहीं थी क्योंकि घर में सोने की लंका जो छिपी बैठी थी। आत्मरक्षा के लिए सिर्फ ओहदा चाहिए था सो मिल गया। आक्रमण बचाव का सबसे अच्छा तरीका है। उस हिसाब से दूसरे लोगों को सतत भ्रष्टाचार के आतंक में रखना अपने भ्रष्टाचार पर परदा डालने का सबसे आसान तरीका है। उनकी नियुक्ति का आर्डर मिला तो अपनी धर्मपरायणा ज्येष्ठ पत्नी की इच्छा के खातिर उन्होंने एक सत्यनारायण की पूजा कर डाली जिसमें सवा मन का परसाद बांटा गया। इस पूजा के मुख्य अतिथि जोशी जी और उनके परिवार के लोग थे, यह कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने जोशी जी को आग्रहपूर्वक एक घण्टे तक इसीलिए बिठाल रखा कि तमाम सरकारी अफसर खुद अपनी आंखों से देख लें कि उन दोनों की कितनी घनिष्ठता है। जब यह प्रदर्शन पूरा हो चुका तो अध्यक्ष महोदय को भरोसा हो गया कि पूजा सफल हो गई।

पर दूसरे दिन सुबह ही जब 'युगान्तर' में यह अग्रलेख निकला कि—'ये भ्रष्टाचार के रक्षक हैं कि भक्षक ?' तो उनके बदन में आग लग गई। अग्रलेख

में रायसाहब रणदमन सिंह के जीवन की मुख्य-मुख्य रेखाएं बड़े स्पष्ट रूप से खींची गई थीं। पौन कॉलम के भीतर उनका भयानक कच्चा चिट्ठा बड़े प्रभावशाली ढंग से उपस्थित किया गया था।—रोमन सम्राट सीज़र की पत्नी को हमेशा शक-शुबहे से परे रहना चाहिए ऐसा नियन्त्रण था। यहां तो जो आदमी सिर से पैर तक भ्रष्टाचार में लिप्त है उससे ही भ्रष्टाचार के निर्मूलन का काम लिया जा रहा है। वह स्वयं पुलिस का अफसर था, इसलिए यह प्रमाणित कौन कर सकता है कि वह भ्रष्टाचार से गले तक भरा है, पर सार्वजनिक जीवन में ख्याति भी एक वस्तु होती है। बिना धुएं के आग नहीं होती और बदनामी तथा नेकनामी के पीछे हमेशा कोई न कोई तथ्य रहता ही है, भले ही वह सूक्ष्म मात्रा में हो। इधर तो रायसाहब रणदमन सिंह के पक्ष में एक भी भूषणास्पद बात नहीं थी, और न उनकी तीस साल की सर्विस में रही। लांछनास्पद बातों की जंत्री करें तो महाभारत की मोटाई का ग्रन्थ हो जाएगा। ऐसे व्यक्ति को भ्रष्टाचार निर्मूलन के काम में लगाना जनता का मखौल उड़ाना है, उसके ज़ख्म पर नमक छिड़कना है। क्या शासन यह समझता है कि जनता बेवकूफ और गंवार है और उसकी आंखों में धूल झोंकी जा सकती है? हम शासन से नम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि प्रजातान्त्रिक शासन व्यक्तिगत राग-द्वेष की क्रीड़ास्थली नहीं है, एक गहन उत्तरदायित्व है, जो तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन है। उसके साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। यह क्रूर मज़ाक, आदिवासियों की मूठ की तरह, उन्हीं पर उलटेगा जो इसके अभिकर्ता हैं। रायसाहब रणदमन सिंह के रहते भ्रष्टाचार का निर्मूलन हो चुका! वह तो भ्रष्टाचार के प्रसार का, और उनके दुश्मनों के प्रताड़न का एक साधनमात्र होगा। इस कमेटी की स्थापना से जनता का अकल्याण छोड़कर और कुछ नहीं होगा। क्या इस कार्य के लिए शासन को ऐसे सेवा-निवृत्त हाईकोर्ट-जज नहीं मिले जिनके चरित्र की निर्मलता और शुद्धता के बारे में जनता को आदर है? उसकी नज़र रायसाहब रणदमन सिंह पर ही क्यों टिकी? स्पष्ट है कि शासन भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने में नहीं उसका संरक्षण करने में दिलचस्पी रखता है। हमें खेद है कि हमें आज शासन की नीयत पर ही शक करने का मौका मिल गया है। इतना भयंकर निर्बुद्ध निर्णय तो अन्धा भी नहीं कर सकता। पर जो आंखें रखकर भी जान-बूझकर अन्धे बनना चाहते हैं उनके लिए तो सभी कुछ सम्भव है।

रणदमन सिंह पूरा लेख पढ़ते-पढ़ते कांप उठा। आग-बबूला हो गया। वह कोई

राजनीति का खिलाड़ी तो था नहीं जो समाचारपत्रों की कड़ी से कड़ी टिप्पणी का आदी हो। ऐसे खिलाड़ी तो दो हाथ देते हैं तो दो हाथ लेते भी हैं। पर वह तो शासन के संरक्षण में पला हुआ आदमी था, इस प्रकार की आलोचना का उसे कतई अनुभव नहीं था। उसकी चमड़ी गैण्डे की तरह सख्त नहीं थी, बहुत मुलायम थी जिसमें विरोध या आलोचना की छोटी-सी सुई भी चुभ जाती थी। और यहां तो अखबार के पूरे अग्रलेख का हथौड़ा ही सिर पर जा पड़ा। गुस्से के मारे ऐसा बमका, ऐसा बमका कि सारा मकान सिर पर ले लिया। लोहे की कील लगे जूतों को पत्थर के फर्श पर कर्कशता से रगड़कर दहाड़ उठा :

'मैं इस युगान्तर वाले लौंडे को पीसकर चबा डालूंगा। समझता क्या है, किससे पाला पड़ा है?'

सीधा दौड़ा मुख्य मन्त्री के पास, चेहरा क्रोध से तमतमाया हुआ। बोला, 'इसे सबक सिखाना चाहिए। इसके रहते हुए हमें चैन नहीं। कम से कम इसका प्रतिवाद करना चाहिए।'

मुख्य मन्त्री धीर-गंभीर बनकर बोले, 'इसका प्रतिवाद क्या हो सकता है? यह तो अपने-अपने मत का प्रश्न है। हां, आपको यदि इसमें कोई तथ्य गलत दिखाई देता हो तो आप संपादक पर मानहानि का मुकदमा चला सकते हैं। आप चाहेंगे तो शासन आपको इजाज़त दे देगा।'

घर लौटा तो इस इरादे से कि मानहानि का एक लाख का दावा दायर कर दूं। बच्चू को बरतन-भाण्डे बेचने पड़ेंगे। हड़बड़ाकर पब्लिक प्रॉसीक्यूटर को टेलीफोन किया जो गलती से मुख्य मन्त्री के बंगले पर लगा, क्योंकि वहीं दिन-रात टेलीफोन लगाने की आदत थी। उनकी आवाज़ सुनते ही घबड़ाकर 'सॉरी' कहकर उसने रिसीवर नीचे रख दिया और फिर डायरेक्टरी में देखकर पी० पी० को लगाया जो एक बंगाली वकील था—समरेन्द्र गुप्ता, जो गिरधारी और उसके रिश्तेदारों की कंपनियों का तथा निजी मामलों का कानूनी सलाहकार था। उन लोगों से उसे फीस तो नहीं मिलती थी पर उनसे सौदा यह तय हुआ कि हम तुम्हें पब्लिक प्रॉसीक्यूटर बना देंगे, तुम हमारा काम 'फ्री' कर देना। गुप्ता तो यही चाहता था, क्योंकि वह हाईकोर्ट-जज बनने के स्वप्न देख रहा था। काफी चलता-पुरज़ा था, पर काम-धाम में यों ही था। कानूनी ज्ञान भी साधारण ही था। पढ़ाई-लिखाई कम करता था, इधर-उधर के दन्द-फन्दों में ज्यादा रहता, और ऐन वक्त पर अदालत

में पहुंचकर कुछ अटकल-पच्चू हांक देता था जो जम गई तो जम जाती थी और अगर न जमी तो तारीख ले लेता था। इस तरह अपनी बेवकूफी पर भी पर्दा पड़ जाता और तारीख बढ़ जाने से एक सुनवाई की फीस और मिल जाती थी। दोनों हाथ लड्डू। मुख्य मन्त्री के बंगले पर सुबह-शाम चक्कर काटा करता और अदालतों और बार-रूम की गप्पें, अपने हाथ की मिलाकर, उन्हें सुनाया करता था। उन दिनों दीवानी और फौजदारी मामले अलग नहीं किए गए थे इसलिए सरकार के हाथ में ही सारे सूत्र थे। बेचारे जज भी गुप्ता का लोहा मानते। किसीकी तरक्की कराना, तबादला करा देना, किसीपर छींटाकशी करा देना उसका बाएं हाथ का खेल था। उसकी उम्र होगी पैंतीस-चालीस के भीतर ही पर उसके चार-चार, पांच-पांच जूनियर होते। वे कुछ दिन उसके हाथ के नीचे काम करते और फिर उसीकी मदद से कहीं ई० ए० सी० तो कहीं सिविल जज बन जाते। इसीके लिए तो वे उसके पीछे-पीछे फिरा करते थे। किसीको कमीशन दिला देना तो किसीको किसी कम्पनी का रिसीवर बना देना या लिक्विडेटर बना देना उसके लिए बहुत मामूली काम था। कत्ल के मामले में हमेशा वही सरकारी वकील रहता। पुलिस से भी मिला-जुला रहता। एकाध बड़ा आसामी फंसता तो अदालत के बाहर कुछ ले-देकर मामला ढीला करा देता या सबूत कमज़ोर बना देता जिसका फायदा अभियुक्त को मिल जाता। पर किसी गरीब को पकड़ता तो फांसी पर चढ़वा देता या कालेपानी भिजवा देता। क्योंकि सज़ा करा देना पुलिस और पब्लिक प्रॉसीक्यूटर दोनों के लिए गौरव की बात थी। वह उनकी योग्यता, सफलता और कार्य-कुशलता का प्रमाण माना जाता था। कभी-कभी उसका मन काटता भी था कि वह जो सब करता है वह भला ही भला है सो बात नहीं। इसलिए विजयादशमी की नवरात्र में वह मनोभाव से काली माता की पूजा करता। उनके नाम पर एक सिद्धि कवच भी हाथ में बांधे फिरता जो अक्सर उसके काले अल्पाका के कोट के नीचे छिपा रहता।

गुप्ता ठीक से कुर्सी पर बैठ भी न पाया था कि रणदमन सिंह ने पूछा, 'आज का 'युगान्तर' पढ़ा?'

'हां, पढ़ा।'

'उसपर मानहानि का मुकदमा चल सकता है?'

'हां, क्यों नहीं चल सकता?'

'मैं एक लाख का दावा करना चाहता हूं।'

'कीजिए।'

'तुम केस सम्हाल लोगे ?'

'क्यों नहीं ? डिफेमेशन (मानहानि) के केस में क्या धरा है ?'

'इसमें कोई खतरा तो नहीं है ? बाज़ू अपने पर उलटने का तो कोई डर नहीं है ?'

'ऐसे मामले में बात इतनी ही होती है कि जो कम्प्लेनेण्ट (वादी) होता है उसे क्रॉस एक्ज़ामिनेशन स्टेंड करना पड़ता है। यह क्रॉस कई बार तो हफ्तों चलता है और उसमें कोई भी सवाल पूछा जा सकता है। आप एक लाख का दावा करना चाहते हैं तो आपकी मान-प्रतिष्ठा एक लाख की है या नहीं इसकी जांच करने का अभियुक्त और अदालत दोनों को अधिकार है। अभियुक्त तो यही सबूत करने की कोशिश करता है कि जिसने दावा किया है उसका 'करैक्टर' शून्य है और इसलिए वह एक कौड़ी के मुआवज़े का हकदार नहीं है। और फिर, चूंकि वह अखबार का एडिटर है, वह यह सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि जो मैंने लिखा है वह सार्वजनिक हित में लिखा है। भ्रष्टाचार-निर्मूलन कमेटी के आप अध्यक्ष न बनते तो उसे लिखने का मौका नहीं आता। क्रॉस के लिए वह पुराने पी० पी० को बुलाएगा यह बिलकुल निश्चित है। वह न भी बुलाए तो पुराना पी० पी० उसे अपनी सर्विस फ्री दे देगा। क्योंकि वह तो मुझपर और सरकार पर खार खाए बैठा है क्योंकि उसे हटाकर ही मुझे पी० पी० बनाया गया। वह बहुत होशियार है, क्रिमिनल लॉ (दण्ड विधान) पर उसने चार-पांच किताबें लिखी हैं, और सीनियर भी है। पचीस-छब्बीस साल का अनुभव है। क्रॉस में वह भयंकर है, अच्छे-अच्छे खां को रुला देता है। सेशन्स में तो मेरा उससे रोज़ पाला पड़ता है। इतनी ही बात है, बाकी मुकदमा तो मजे में चलाया जा सकता है।

रणदमन ने सोचा, इसने तो पहले ही हथियार डाल दिया। अब यह लड़ेगा क्या खाक ? और फिर हफ्तों तक चलने वाले क्रॉस एक्ज़ामिनेशन की संभावना से वह थर्रा उठा। अब तक जो काला चरित्र दबा पड़ा था वह अब खुलकर पब्लिक के सामने आ जाएगा। मेरे दुश्मन तो चारों तरफ भरे पड़े हैं वे दौड़-दौड़कर उस एडिटर को मसाला देंगे और पुराना पी० पी० उसके बल पर मेरी धज्जियां उड़ाएगा। इस कल्पना से वह भीतर ही भीतर कांप उठा। फिर भी ज़ाहिरा तौर पर

हिम्मत का स्वांग रचकर बोला, 'यह सब तो मैं 'फेस' कर लूंगा। पर तुम 'कांवि-क्शन' (सज़ा) तो दिला लोगे ?'

'नीचे के कोर्ट में तो दिला लूंगा। ऊपर नहीं कह सकता। मामला तो सुप्रीम कोर्ट तक जाए बगैर रहेगा नहीं।'

'तुम्हारी फीस क्या होगी ?'

'मैं आपसे फीस का मोल-भाव क्या करूंगा ? वैसे तो ऐसे मामले में दस हज़ार फीस लेता हूं। पांच हज़ार पेशगी, और पांच हज़ार जीतने पर। लेकिन आपसे मैं कुछ नहीं कहूंगा। आप फीस न दें तब भी मैं आपका काम कर दूंगा।'

गुप्ता जानता था कि फीस न मांगी जाएगी, न दी जाएगी। वह भी तो भीतर ही भीतर डरता था, कि इसे रुपया देने की आदत तो है नहीं। यदि पांच हज़ार दे भी देगा तो मतलब निकल जाने के बाद किस गड्ढे में उतारेगा इसका भरोसा नहीं। आखिर यहां क्या दूध के धुले बैठे हैं। फिर इतना अहसान ही क्यों न जताओ कि दस हज़ार का काम मैं मुफ्त में कर रहा हूं। गुप्ता जानता था कि रणदमन क्रॉस के डर से कभी मुकदमा नहीं चलाएगा। लेकिन बातों के जमा-खर्च में क्यों कमी की जाए ?

'फीस की कोई बात नहीं है। वह तो दस की जगह बीस लग जाए तो परवाह नहीं। पर मुकदमा जीतना ज़रूर चाहिए। नहीं तो गवर्नमेंट की ही भद्द खुलेगी। मेरा अकेले का मामला होता तो मैं अभी तुम्हें ब्रीफ (ब्यौरा) दे देता।' रणदमन सिंह ने कहा।

'तो जल्दी क्या है ? जोशी जी से आप पहले सलाह कर लीजिए। आखिर मुकदमा चलाने की इजाज़त देना उन्हींके हाथ में है।' गुप्ता ने कहा।

'ठीक बात है। पहले उन्हींसे बातचीत कर लेना उचित है।' कहकर उसने पान-सिगरेट देकर गुप्ता को विदा कर दिया।

जोशी जी से बात तो पहले ही हो चुकी थी और वे इजाजत देने के लिए तैयार थे। पर इधर तो हिम्मत उसीकी टूट रही थी, फिर भी वह गुप्ता के सामने कबूल करने के लिए तैयार नहीं था। बस, मानहानि की बात वहीं खतम हो गई। इस तरह खतम करनी पड़ी इसकी उसे चिढ़ हुई। उसी क्षण उसने तय किया कि 'युगान्तर' के सम्पादक को किसी फौजदारी मामले में, क्रिमिनल केस में फंसाने से ही अपना बदला पूरा होगा और छाती ठंडी होगी। ऐसे मामलों की तहकीकात पुलिस

करती है, मुकदमा सरकार चलाती है, इज़्ज़त अभियुक्त की जाती है, और अपन अलग-सलग रहते हैं, और तमाशा देखते हैं। पीछे से पुलिस की मदद करने के लिए तो हम तैयार ही बैठे हैं।

बस यही प्लॉन अच्छा है—रणदमन सिंह अपने ड्रेसिंग रूम के शीशे में अपनी सूरत देखकर ठहाका मारकर हंस पड़ा। उसके राक्षसी अट्टहास से उसका सारा मकान गूंज उठा।

और एकाएक उसे याद आई रमजान खां की।

सी० आई० डी० के नंबरी बदमाश इन्स्पेक्टर रमजान खां की, जो अपनी खुदगर्ज़ी के लिए बाप का खून भी कर डाले और बिना हाथ धोए खाने पर बैठ जाए।

और रायसाहब रणदमन सिंह अपने कर्कश जूतों की टापें बजाता हुआ टेली-फोन के कमरे में दाखिल हुआ।

२५

भ्रष्टाचार-निर्मूलन कमेटी के अग्रलेख के बाद तो जोशी जी को स्पष्ट हो गया कि धनंजय की नीति अब दूसरे रास्ते पर चलेगी। वह जो कुछ कर रहा है उसके पीछे उसका एक स्पष्ट विचार है, एक साफ इरादा है। बात व्यक्तिगत परिधि से उठकर अब सिद्धांतों पर आ चली है। और दिन-ब-दिन पेचीदी होती जाएगी। उन्हें कुछ चिन्ता तो हुई पर इतनी नहीं कि उनकी शान्ति को भंग करे। चिन्ता से ज्यादा चिढ़ हुई। इस समय प्रदेश में उनकी सत्ता के खिलाफ आवाज़ नहीं उठती थी। कहीं से भी चुनौती नहीं थी। हां, मणिलालभाई के प्रयत्न चोरी-छिपे चल रहे थे पर उन्हें खड़े होने के लिए कोई आधार नहीं मिला था, कोई जगह नहीं मिली थी कि जहां से वे वार कर सकें। अपने पुरुषार्थ से वे कुछ अधिक कर पाएंगे ऐसा नहीं लगता था, पर परिस्थिति बिगड़ जाए तो वे जरूर उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाएंगे, इसमें कोई शक नहीं। परिस्थिति को बिगड़ने नहीं देंगे इसका जोशी को आत्मविश्वास था। पर यह घर में

ही कांटा कैसे पैदा हो गया इसका उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। फिर भी धनंजय जिस तरह का आदमी है उसके साथ घसड़-फसड़ करके या जोर-जबरदस्ती से कुछ नहीं हो सकता, यह वे जानते थे। उसे तो समझाने-बुझाने से या कोई बात पटाने से ही कुछ काम बनेगा। कुछ मामलों में उसके मन की कर दो और बाकी में तो फिर अपना चलता ही है ऐसा कुछ विचार उनके मन में उठ रहा था।

पर इस खेल में अब रणदमन कूद पड़ा था। 'युगान्तर' में उसकी जो आरती उतारी गई थी वह भूलाए नहीं भूलता था। रात को नींद में चौंक उठता और जैसे सब समय कंस को कृष्ण दीखता वैसे उसे 'युगान्तर' का वह गौरवर्ण दुबला-पतला सम्पादक दिखता, जो दिखने को तो गऊ जैसा सीधा-सादा और शील-सौजन्य वाला दिखता था पर भीतर से इस्पात की तरह कठोर लगता था। बड़ा खतरनाक आदमी है। तीस साल की नौकरी में ऐसी मरम्मत कभी नहीं हुई और ऐसे आदमी से पाला नहीं पड़ा। उसे स्वप्न में भी धनंजय ही दिखता और 'युगान्तर' के बड़े-बड़े अक्षर, जो चौराहों पर लगे विज्ञापन की तरह दिखाई देते थे। और उसे लगता कि सारा पुलिस का महकमा और तीस साल की नौकरी के ज़माने के तमाम दुश्मन 'युगान्तर' पढ़कर मन ही मन बड़ी गुदगुदी के साथ हंस रहे होंगे और उसकी खिल्ली उड़ा रहे होंगे।

इसका सबूत स्वयं धनंजय को भी मिला। सुबह से ही न जाने कितने टेली-फोन आए, जान-पहचान के लोगों के और गैरपहचान के लोगों के भी, कि शाबाश रे बहादुर! मर्द आदमी है जिसने एक जल्लाद आततायी पर सीधा खुला वार किया है। पत्रकारिता इसे कहते हैं! अब युगान्तर अपनी पुरानी चाल पर आ रहा है। अब दुष्टों और पापियों की खैर नहीं।

पर धनंजय को आश्चर्य तो तब हुआ जब एक सर्कल इन्स्पेक्टर अपनी खाकी वर्दी में 'युगान्तर' के दफ्तर में आया और जूते खटकाकर अटेंशन होकर बड़ी अदब के साथ उसने धनंजय को सैल्यूट फटकार दी। खुशी के मारे वह फटा पड़ता था। आया तो था वह किसीकी लड़की के ब्याह का निमन्त्रण-पत्र युगान्तर प्रेस में छपाने, पर सब समय दबी ज़बान में इधर-उधर देखकर उस अग्रलेख की ही तारीफ करता रहा। बेचारे की भाषा अपूरी पड़ती थी और अपने ब्रह्मानन्द को वह अपने हाव-भावों से ही अधिक व्यक्त कर रहा था। बोला, 'एडिटर साहब, ये कसाई हैं कसाई। कसाई तो फिर भी ठीक है जो अपने पेट के लिए गाय

काटता है। पर ये तो अपने मौज-शौक के लिए लड़कियों के गले काटते हैं। आप एक-एक किस्सा सुनेंगे तो दहल जाएंगे। मैंने भी उनके हाथ के नीचे तीन साल तक एक ज़िले में काम किया है।' चलते-चलते उसने यह भी बताया कि यह शादी का निमन्त्रण-पत्र कप्तान साहब की बहिन की बच्ची का है, और धीरे से मुस्कराकर कहा कि उन्होंने ही मुझे यह लेकर भेजा है और वे भी इस लेख से बहुत खुश हैं।

धनंजय को इस अनपेक्षित मुलाकात से यह विदित हो गया कि कितना भयंकर इन लोगों का आतंक है, जैसे वे पाप और दुराचार के अड्डे हों। और वे अब जाकर बैठ गए शासन में, वह भी भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने के लिए। हे भगवान, इस देश का क्या होगा ?

धनंजय यह समझ गया कि भ्रष्टाचार की बुनियादी लड़ाई में उसके साथ जनता की तथा कई ज़िम्मेदार लोगों की गहरी सहानुभूति है। उनकी सद्भावना और हमदर्दी ही तो उसका बल है। वरना उसके पास कौन-सी शक्ति धरी है ? न पैसा है, न सत्ता है। राष्ट्रीय संग्राम के उसके जो साथी थे वे अब दूसरे खेमे में जाकर बैठ गए हैं। अधिकांश तो मन ही मन अब भी उसका लोहा मानते हैं, उसकी इज़्ज़त करते हैं, पर उनका स्वार्थ तो शासकीय दल के साथ सम्बद्ध था। सो उनकी ज़बान नहीं खुलती थी। वे अपने घरों में चुपचाप बैठे थे, और कहीं धनंजय मिल जाता तो अटपटा जाते, और हो सकता तो उसे टालते थे।

धनंजय जानता था कि उसने रणदमन को ललकार कर अपने लिए खतरा मोल ले लिया है। पर खतरों और परिणामों के डर से उसने कभी कोई काम नहीं छोड़ा। यह उसका स्वभाव था। तीर साधने के पहले वह खूब सोचता कि वह अन्याय, असत्य और अराष्ट्रीयता पर ही वार कर रहा है या नहीं। पूर्ण आत्म-मंथन के बाद जब एक बार उसका निर्णय हो जाता तो फिर वह किसी बात के लिए भी न रुकता। शुरू से ही वह शहीद बिस्मिल के क़लाम से प्रभावित था :

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाज़ुए क़ातिल में है !

असल में लड़ना-लड़ाना और दो हाथ देना, दो हाथ लेना इसीमें उसे मज़ा आता था। हां, लड़ाई इन्साफ की हो, सत्य की हो, जनता के कल्याण की हो। यह लड़ाई ही उसका जीवन थी। वास्तव में गत तीन-चार वर्षों में उसे जो ज़िन्दगी बितानी पड़ी वह उसके स्वभाव के प्रतिकूल थी—वह मन्त्रियों के दरवाज़ों पर

घिघियाना-मिमियाना, कि इसकी जांच करो, इस शिकायत को रफा करो, इस संस्था की मदद करो, इस पीड़ित स्वातंत्र्य सैनिक की सहायता करो ग्रादि-ग्रादि। बीच-बीच में तो उसे लगता था कि वह संपादक की जगह शिकायत-कमेटी का संयोजक बन गया हो जिसका काम था ग्रर्ज़ियां इकट्ठी करना ग्रौर महामन्त्रियों के पास भेजते रहना। वहां तो इतना बड़ा समन्दर था कि जहां कागज़ एक बार गया कि लौटने का नाम नहीं लेता था, ठीक उसी तरह कि ग्रादमी परलोक गया तो फिर वहां से लौटने की बात ही नहीं उठती। इस ज़िन्दगी में तो उसे घुटन-सी लग रही थी, बड़ी बेचैनी थी। सोचता कि यह भी खूब रही कि मंत्रिपद तो ग्रौरों ने लिया, तेज उसका क्षीण होने लगा। बेवकूफी की भी हद है।

पर ग्रब उसकी घुटन दूर होने लगी ग्रौर उसे लगा कि वह स्वतंत्र वातावरण में फिर सांस लेने लगा है। इसकी उसे सबसे बड़ी खुशी है। ग्रात्मा को ग्रपने ग्राप ही उसने कैद में डाल दिया था, उसे ग्रब वह मुक्त पाने लगा। उसका ग्रात्म-सम्मान ग्रौर स्वाभिमान फिर लौट ग्राया।

ग्रब किसी बात का डर नहीं है। न शासन का, न पुलिस का, न रणदमन का। वे ग्रपनी करनी से बाज़ नहीं ग्राएंगे यह वह जानता था। इसलिए भविष्य ग्रब सुखासीन ग्रौर शान्त नहीं रहेगा। ग्रब कांटों पर से चलना होगा, लोहे के चने चबाने होंगे, ग्राग से खेलना होगा। पर यही जीवन ग्रब वास्तविक है, ग्रौर पहले का जो जीवन था वह था मरण!

गिरधारी ग्रौर रणदमन की ग्राजकल खूब छनती थी। दो-चार दिन में कहीं न कहीं बैठक होती—रात के समय डिनर पर ग्रौर बोतलों की समीपता में। वहां बड़ी-बड़ी योजनाएं बनतीं जिसका एक ही मकसद रहता कि कैसे धनंजय को युगान्तर से हटाकर ग्रखबार ग्रपने हाथ में हथिया लें ग्रौर उसके मगरूर सम्पादक को किसी क्रिमिनल मामले में जेल की हवा खिलाएं। पोलिटिकल मामले में जेल भेजने का तो ग्रब कोई मौका ही नहीं था, क्योंकि ग्रब स्वतंत्रता मिल गई थी। मौका होता तब भी वे उसे राजबन्दी बनाने के लिए जेल नहीं भेजते क्योंकि उसमें तो उसकी इज़्ज़त बढ़ती। यहां तो ग्रब उसकी इज़्ज़त उतारने का सवाल है। दोनों जानते थे कि जोशी जी का उत्साह धनंजय के लिए ठंडा पड़ गया है। उसपर कहीं से वार हुग्रा तो ग्रब कम से कम जोशी जी का हाथ उसे बचाने के लिए नहीं उठेगा। बल्कि वे मन ही मन सन्तुष्ट ही होंगे। वे भले ही प्रत्यक्ष वार करने में

हाथ न बंटाएं, पर और कोई वार करे तो उसके मार्ग में भी बाधा नहीं डालेंगे। यह पोज़ीशन भी अपने लिए बुरी नहीं है।

'तुम बिलकुल बेफिक्र रहो गिरधारी।' रायसाहब रणदमन सिंह ने अपने नशे से हिलते हुए हाथ को उठाकर कहा, 'मैंने एक ऐसा शातिर सी० आई० डी० उसके पीछे लगा दिया है कि महीने भर के भीतर ही देखना हमें कैसा बढ़िया मसाला हाथ लगता है। फिर उसके बल पर चला लो जितने फौजदारी मामले चलाना चाहते हो। मैंने दो बातों के बारे में उसे विशेष ध्यान देने के लिए कहा है...'

और फिर धीरे से उसके कान में कहा, 'एक तो यह कि वह किसी औरत से तो फंसा नहीं है, दूसरे उसने कितनी खयानत की है। बस, इन दो मामलों में फंसा कि उसकी मिट्टी बन गई, ऐसा ही समझो। बड़ा आया है नीति और सदाचार का पाठ पढ़ाने! गांधीजी मर गए तो इसीके कंधों पर ही तो सारी ज़िम्मेदारी छोड़ गए हैं। इसका हौसला तो देखो?'

गिरधारी की आंखें भी आशा से चमक उठीं। बोला, 'रायसाहब! आप भी बड़े गज़ब के आदमी हैं। खूब गहरा खेल खेल रहे हो यार! आओ, इस बात पर एक आखरी पेग और मारो—हाः हाः हः!!'

२६

गिरधारी ने जगपुरा के राजा साहब को भड़काया, 'अपने पचास हज़ार रुपये के बारे में क्या कर रहे हैं?'

'मैंने एडिटर साहब को लिखा तो है कि मुझे लड़की की शादी के लिए रकम की ज़रूरत है। पर वह रकम मैंने जोशी जी के कहने से दी थी। वापस लेने के लिए ज़ोर दूंगा तो वे नाराज़ हो जाएंगे।' राजा साहब ने कहा।

'रकम शेयर्स में दी थी कि कर्ज़ में?'

'कर्ज़ में। मेरे पास प्रोनोट लिखा रखा है। शेयर्स में एक लाख अलग लगाए हैं।'

'बस तो फिर, बात बिलकुल साफ है। जो कर्ज है वह कर्ज ही रहेगा और उसे वसूल करने का आपको पूरा हक है।'

'पर जोशी जी नाराज़ हो जाएं तो?'

'वे क्यों नाराज़ होंगे? किसीके व्यक्तिगत मामले में भला वे क्यों पड़ेंगे? अगर आपको शक हो तो खुद जाकर क्यों नहीं पूछ लेते?' गिरधारी ने सलाह दी। 'पर एक बात है। यदि मेरा कहना ठीक निकला तो आपको मेरी मोटर कंपनी में मदद करनी होगी।' राजा साहब केवल हंस दिए।

राजा साहब दूसरे ही दिन जोशी जी के बंगले पर पहुंचे। जोशी जी ने पूछा, 'आपने एडिटर को पत्र लिखा था?'

'लिखा तो था।'

'फिर क्या जवाब दिया?'

'लिखित जवाब तो नहीं दिया, पर एक बार असेम्बली की लॉबी (बाहरी सभा) में मिले थे तो कहते थे कि जोशी जी ने इसे शेयर्स में बदलवा देने का वादा किया था। इसलिए आप उसके शेयर्स ले लीजिए।'

'फिर आपकी क्या इच्छा है?'

'जोशी जी, मैं अब शेयर्स तो नहीं खरीदना चाहता। मेरी हालत बड़ी खराब हो गई है। रियासत चली गई, आमदनी के ज़रिये सिकुड़ गए, और अभी घर में पांच-छः विवाह संस्कार करने हैं। मुझे रकम मिल जाती तो अच्छा होता।'

'तो फिर आप अपनी रकम वसूल कर लीजिए।'

'वसूल कैसे करूं? उनके पास क्या धरा है। सारी रकम तो बिज़िनेस में लगी हुई है ऐसा एडिटर साहब कहते थे। कैश तो कुछ भी नहीं है।'

'अब इसके बारे में मैं क्या सलाह दूं? आपको लड़की की शादी करनी है, रकम चाहिए तो आप जिस तरह चाहें वसूल कर लें। मैं भला आपके व्यक्तिगत मामले में क्यों पड़ूं?'

राजा साहब को जोशी जी की बात से कुछ आश्चर्य हुआ क्योंकि जब-जब युगान्तर वालों से कोई भी लेन-देन हुआ तब-तब हमेशा जोशी जी ही बीच में पड़े थे। अब वे कान झाड़ रहे हैं, इसीका मतलब है कि परिस्थिति बदल गई है। गिरधारी का इशारा गलत नहीं था। लेकिन इसकी और जांच कर लेना ही उचित है। बोले, 'जोशी जी, अखबार वालों की रकम तो जब वसूल होगी तब होगी।

होती है या नहीं इसमें भी शक है। पर लड़की की शादी तो दो महीने पर ग्रा गई। मेरी जंगल की रकम ग्रभी गवर्नमेन्ट के पास ग्रटकी पड़ी है। वही जल्दी मिल जाती तो लड़की के हाथ पीले करते समय रौनक बनी रहती।'

'कितनी रकम है ?'

'यही पौने दो लाख रुपये।'

जोशी जी सोच-विचार में पड़ गए। याद ग्राया कि इसी रकम के ग्राधार पर ही तो उन्होंने धनंजय को प्रोनोट लिखने के लिए कहा था। इस रकम को देने के पहले ही तो वे प्रोनोट वापस कराना चाहते थे। पर इस समय वे धनंजय पर ग्रौर ग्रधिक कृपा करने के पक्ष में नहीं थे। बोले, 'मुझे दिखवाना पड़ेगा कि फाइल कहां ग्रटकी पड़ी है। फॉरेस्ट डिपार्टमेन्ट में है कि फाइनेन्स में। पुराना मामला है।'

राजा साहब समझ गए कि बात जोशी जी के दिमाग में ग्रटकी पड़ी है। वे उनके दिमाग का दरवाजा खोलने की चाबी ढूंढ़ने लगे। कुछ न सूझा तो मुंह से इतना ही निकला, ' 'युगान्तर' की रकम का इशारा तो गिरधारी भैया ने ही किया था, पर इसमें देर होगी। शायद कोर्ट-कचहरी भी जाना पड़े। पर जंगल वाली रकम का कुछ करा देते तो बड़ी दया हो जाती। राजकुमारी की शादी न होती तो मैं जोर नहीं देता।' राजा साहब ने मिमियाते हुए कहा।

'गिरधारी से ग्रापकी मुलाकात हो गई ? क्या कह रहा था ?'

'कुछ मोटर-ऊटर का काम करना चाहते हैं।'

'मैं तो जानता नहीं, पर कहते हैं, उसमें फायदा ग्रच्छा है। उसने सरकारी ग्रफसरों से जमा-जमू कर खदान के इलाके में एक मोनोपली सर्विस कर ली है।'

'जी हां, ग्रखबार से तो मोटर कंपनी ग्रच्छी।' राजा साहब बोले ग्रौर नमस्कार कर उठ खड़े हुए। दोनों एक दूसरे की तरफ देखकर बड़े प्रेम से हंसे। राजा साहब की समझ में बात ग्रा गई।

दूसरे दिन ही गिरधारी ने मामाजी को ग्राकर सूचना दे दी कि राजा साहब मोटर कंपनी में पचास हज़ार लगाने के लिए तैयार हैं। बड़े भले ग्रादमी हैं। बेचारे तकलीफ में हैं, लड़की की शादी का प्रबन्ध हो जाता तो इज़्ज़त बनी रहती। ग्रब ग्रापके सिवा उनका कौन है ?

तीन सप्ताह के भीतर ही राजा साहब को पौने दो लाख की रकम मिल गई।

पर गिरधारी की कंपनी के नाम पचास हज़ार का चैक पहले लिखना पड़ा तभी वह रकम उनके हाथ में पड़ी। और करीब-करीब उसी समय धनंजय के हाथ में राजा की तरफ से यह नोटिस पड़ा कि इक्कीस दिन के भीतर ही आप यदि हमारा पचास हजार रुपये का कर्ज़ अदा नहीं करेंगे तो यह माना जाएगा कि आपकी कम्पनी अपने ऋण नहीं चुका सकती इसलिए उसके लिक्विडेशन (ऋण-चुकती) की कार्रवाई क्यों न शुरू की जाए ?

२७

नोटिस आते ही धनंजय ने अपनी पत्नी से कहा, 'लो गीता, युद्ध के नगाड़े तो बजने लगे। ऐसा दिखता है, काफी ठननेवाली है।'

'अब जो होगा सो होगा। पर अन्त तक हमें झगड़ा टालने की कोशिश करनी चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि हमारी तरफ कोई नैतिक दोष तो नहीं आता है। उसके बाद लड़ाई ठनती है, तो ठनने दो। जो होगा सो देखा जाएगा।'

धनंजय को दो-एक दिन कानूनी सलाह लेने में लग गए। इसी बीच उसे पता लगा कि उसकी कंपनी का एक क्लर्क एकाउण्ट्स विभाग के रजिस्टर चुरा ले गया। धनंजय का माथा ठनका। इस प्रकार की यह पहली घटना थी जो उसके कार्यालय में हुई थी। पर वह समझ गया कि यह पुलिस की करतूत है। उसके कान पर यह भनक आ ही गई थी कि उसकी कंपनी के खिलाफ सी० आई० डी० काफी सर-गर्मी से काम कर रही है। उसने अपने सभी कर्मचारियों को आगाह कर दिया कि वे सतर्क रहें। दुश्मन की कार्रवाइयां शुरू हो गई हैं।

राजा साहब जगपुरा के नोटिस का जवाब तो उसने अपने कानूनी सलाह-कार से दिला दिया कि आप जानते हैं कि यह कर्ज़ किसके कहने से कंपनी को दिया गया था। आप यह भी जानते हैं कि आपकी और मेरी पहले कोई जान-पहचान नहीं थी, और वह हुई तो इस प्रदेश के एक अत्यन्त ज़िम्मेदार और प्रभावशाली व्यक्ति के कारण हुई। आप यह भी जानते हैं, जैसा कि मैंने आपको स्वयं बताया था, कि यह रकम अमानत के रूप में दी गई थी जो आगे चलकर शेयर्स में तबदील

की जाने वाली थी, हालांकि यह सच है कि हमने उसके लिए प्रोनोट लिखकर दिया है।

मैं फिलहाल उन प्रभावशाली व्यक्ति का नाम नहीं लेना चाहता क्योंकि उससे सार्वजनिक जीवन का अहित होगा पर आप उन्हें अच्छी तरह जानते हैं, और यह भी जानते हैं कि उनके अभाव में आपका-मेरा कौड़ी भर का भी व्यवहार-सम्बन्ध नहीं था।

फिर भी चूंकि उस प्रोनोट पर हमारे दस्तखत हैं, हम उसके नैतिक उत्तरदायित्व को मानते हैं और आपको सूचित करना चाहते हैं कि यदि आप सारी पृष्ठभूमि और बातों को भूलकर रकम वसूल करने के लिए ज़ोर ही दें तो हम आपकी रकम धीरे-धीरे किश्तों में अदा कर देंगे क्योंकि रकम इस समय कंपनी के बिज़िनेस में लगी है, और हमारे पास कैश के रूप में नहीं है।

आप अच्छी तरह जानते हैं कि यह रकम आपको वापस करने की नहीं थी, पर आप बदली हुई परिस्थिति का लाभ उठाकर किसीकी कहा-सुनी में आकर यह रकम वसूल करना चाहते हैं जो कि सर्वथा अनुचित है। फिर भी, जैसा कि हमने ऊपर कहा है, चूंकि हमारे दस्तखत हैं, हम अपनी ज़िम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ना चाहते और धीरे-धीरे समुचित किश्तों में आपकी रकम अदा कर देंगे।

इसके बावजूद आप यदि हमारी कंपनी के लिक्विडेशन (ऋण-चुकती) की कार्रवाई करेंगे तथा कंपनी की साख और प्रतिष्ठा पर धक्का लगाएंगे तो उसकी ज़िम्मेदारी पूरी तरह आपके कन्धों पर होगी और उसके हरज़ाने के देनदार भी आप ही रहेंगे। हम यह आपको स्पष्टता और दृढ़ता से बतला देना चाहते हैं कि राजनीतिक हथकण्डों के कारण की जाने वाली चालबाज़ियों से हम अपनी कंपनी तथा उसके समाचारपत्र की सुरक्षा के लिए जी-जान से डटे रहेंगे।

अन्त में हम आपको तथा आपके सलाहकारों से यह निवेदन करना चाहते हैं कि व्यक्तिगत झगड़ों के निपटाने के ये मार्ग अशोभनीय हैं, जिनसे दोनों पक्षों का नुकसान होने के सिवा और कुछ हाथ लगने वाला नहीं है।

इस नोटिस का यह परिणाम हुआ कि कंपनी को 'लिक्विडेशन' में ले जाने की कार्रवाई तो रद्द कर दी गई, पर पचास हज़ार की वसूली के लिए राजा साहब ने दीवानी दावा दायर कर दिया।

धनंजय को कुछ राहत मिली। दीवानी दावे में वक्त लगता है, वक्त मिलता

भी है। लिक्विडेशन की कार्रवाई तो काफी तेज़ी से होती है। पता नहीं यह परिवर्तन कैसे हुआ ! शायद चुनाव नज़दीक आ रहे थे इसलिए राजा साहब के प्रभावशाली सलाहकारों ने सोचा होगा कि अभी कीचड़-फेंक मचाने में खतरा है। जो भी हो, संकट तुरंत आने वाला था, वह तो टल गया।

इस बीच देश के राजनीतिक जीवन में एक ऐसी घटना हो गई जिसका देशव्यापी असर पड़ा। अखिल भारतीय राष्ट्रीय दल के अध्यक्ष को, जिनका विधिवत् चुनाव हुआ था, प्रधान मन्त्री ने ज़ोर-जबर्दस्ती करके इस्तीफा देने को मजबूर किया। वे अध्यक्ष तपस्वी थे, साधु प्रकृति के त्यागी व्यक्ति थे, उनके साथ ऐसी ज़्यादती क्यों की गई, इसकी प्रतिक्रिया दूर-दूर तक हुई। उसका यही कारण था कि चुनाव आ रहे थे और प्रधान मन्त्री सभी सूत्र अपने हाथ में रखना चाहते थे। पर जिस तरीके से यह किया गया उसमें न्याय या नीतिमत्ता नहीं थी, केवल राजनीति के दांव-पेंच थे। उसमें हिंसा की भावना थी। जनता को काफी दुख हुआ पर प्रधान मन्त्री के असाधारण व्यक्तित्व के कारण उसकी प्रतिक्रिया जितनी भयंकर होनी चाहिए थी उतनी नहीं हो पाई। गांधी जी नहीं थे, और उनके मार्ग पर चलनेवाले लौह पुरुष की मृत्यु हो गई थी। राष्ट्रीय दल के सर्वेसर्वा केवल प्रधान मन्त्री बचे थे। सारी सत्ता एकमात्र उनके ही व्यक्तित्व में समाई थी। उस दल के लोग खामोशी से इसे बर्दाश्त कर गए। यों बर्दाश्त करने के पीछे कोई ऊंचा आदर्श नहीं था, महज़ व्यावहारिकता और दुनियादारी थी। दूसरी पार्टी के लोगों को इसमें बोलने का कोई कारण नहीं था क्योंकि यह शासकीय पार्टी का आन्तरिक मामला था। समाचारपत्रों में भी यही रुख लिया गया। राष्ट्रीय दल के समर्थक समाचारपत्र उन्हीं कारणों से चुप रहे जिनसे राष्ट्रीय दल के लोग चुप थे। औरों ने इसपर विशेष ध्यान नहीं दिया।

पर 'युगान्तर' को यह बात अखर गई। उसने एक कड़ा अग्रलेख लिखा—'नितान्त अशोभनीय'। उसमें प्रधानमन्त्री के रुख की तीव्र आलोचना की गई थी और कहा गया था कि जो संस्था सत्य और अहिंसा को अपना मूलमंत्र मानती है उसमें यह हिंसावृत्ति क्यों दिखाई गई जो अध्यक्ष के चुनाव के काण्ड में बरती गई ? परिवर्तन कराना ही था तो अध्यक्ष महोदय को समझा-बुझा कर, उनकी रज़ामन्दी से, प्रतिष्ठित ढंग से कराना चाहिए था। आखिर वे भी तो राष्ट्रीय जीवन के सधे हुए तपस्वी सेनानी हैं। यदि उनका इस्तीफा देश के हित में आवश्यक

था तो वे स्वयं-स्वेच्छा से उसे दे देते। फिर उनको ग्रसहयोग की धमकी देकर, उनके सिरपर ज़बर्दस्ती का ठेंगा चढ़ाकर यह क्यों किया गया ? प्रधान मंत्री हमारे देश के महापुरुष हैं, पर ग्रपने तंगदिल सलाहकारों के प्रभाव में ग्राकर इस प्रकार की कार्रवाई करना उनकी श्रेष्ठता ग्रौर ग्रंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लिए नितांत ग्रशोभनीय है। हिंसा का दुश्चक्र बुरा होता है ग्रौर वह प्रतिहिंसा को जन्म देता है। इस घटना के कारण हमें राष्ट्रीय दल के भविष्य के बारे में चिन्ता होने लगती है। क्योंकि हिंसा ग्रसत्य है, हिंसा ग्रन्याय है, ग्रौर ग्रन्याय की कोई भी कृति हज़म नहीं हो सकती, भले ही उसका कर्ता हमारे लोकप्रिय प्रधान मन्त्री जैसा श्रेष्ठ व्यक्ति ही क्यों न हो ?

मनमोहन-काण्ड के बाद 'युगान्तर' की नीति का जो स्वरूप प्रस्फुटित हुग्रा था उसमें इस प्रकार का ग्रग्रलेख ग्रा जाना एक साधारण घटना थी। पर प्रदेश के राजनीतिक यंत्र पर उसकी घोर प्रतिक्रियाएं हुईं। एक तो यही कि जोशी जी के प्रतिस्पर्धी मणिलालभाई ने उस लेख की एक कटिंग प्रधानमन्त्री के पास भेजी, इस शिकायत के साथ कि जोशी जी पूर्व ग्रध्यक्ष के पक्ष के व्यक्ति हैं, ग्रौर उनका ग्रखबार 'युगान्तर' जिसमें उनका ग्राधा हिस्सा है, ग्रापके खिलाफ ग्राग उगल रहा है। इसके ग्रलावा उनके खिलाफ भ्रष्टाचार के ग्रारोप ग्रादि का एक लम्बा चिट्ठा भी भेजा गया, ग्रौर कुछ देर के लिए लगा कि जोशी जी का ग्रासन डांवांडोल हो उठा है।

जोशी जी सफाई देने के लिए प्रधान मन्त्री के पास बुलाए गए। 'युगान्तर' के मामले में तो उसके संपादक की गवाही ही सबसे मुख्य चीज़ थी। उन्हें इसकी चिन्ता पड़ गई। उन्होंने फोन पर फोन लगाकर धनंजय को हवाई जहाज़ से राजधानी बुलाया ग्रौर बड़े प्यार से कहा, 'देखो भाई धनंजय, पत्र की नीति को लेकर तो ग्रापमें ग्रौर हममें मतभेद चल रहा है। ग्राप स्वतंत्र नीति ग्रखत्यार कर रहे हैं ग्रौर मैं पार्टी में बंधा हूं। जब ग्राप हमारी पार्टी का समर्थन करते थे, हमने ग्रापकी मदद की। ग्रब ग्राप स्वतंत्र हो गए हैं तो ग्रापका-हमारा कोई सम्बन्ध नहीं।'

'ग्रापका ग्रठन्नी का हिस्सा ?'

'वह भी गया। उसका ग्राप जो चाहे सो कीजिए। ग्राज से हम ग्रापको एक पाई के देनदार नहीं ग्रौर ग्राप हमें एक पाई के देनदार नहीं। समझे ? ग्रब ग्राप जानें ग्रौर ग्रापका काम जाने।'

'ठीक है जोशी जी, इसमें तो कोई एतराज़ की बात नहीं है। पर यह बात बिलकुल पक्की है न ?'

'हां, हां, बिलकुल पक्की। बल्कि आपको यदि प्रधान मन्त्री या उनकी तरफ से कोई व्यक्ति पूछे तो आप स्पष्ट कह दें कि जोशी जी का 'युगान्तर' से रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं है। उसीके बारे में यह 'इनक्वायरी' हो रही है और मैं आपसे वचन चाहता हूं कि आप यही कहेंगे। वह मणिलालभाई बड़ा तूफान मचा रहा है।'

'मैं वचन देता हूं जोशी जी, आप बिलकुल निश्चिन्त रहें।'

जोशी जी आश्वस्त हुए। उन्हें पूरा भरोसा था कि धनंजय जो वचन देगा उसे अन्त तक निवाहेगा।

धनंजय जानता था कि मणिलालभाई मुख्य मन्त्री बनने की ज़ोरों से कोशिश कर रहा है। पर उसके चरित्र को देखकर तो उसे भरोसा था कि वह जोशी जी से सौगुना बदतर रहेगा। जोशी जी के परिजनों का स्वार्थ नहीं रहा तो वे लोक-कल्याण के कार्य भी करते हैं, नई-नई संस्थाओं का निर्माण करते हैं। पर मणिलालभाई के राज में तो हर काम की कीमत लगेगी, हर योजना पर नीलाम की बोली बोली जाएगी। वह तो बड़ी भयंकर बात होगी।

धनंजय को बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'युगान्तर' का मामला ठीक तरह से सुलझ गया। वह भीतर ही भीतर यह सोचकर मुसकराया कि जब मुख्य मन्त्रित्व-पद और अखबार से उन्हें एक चुनना पड़ा तो स्वाभाविकतः उन्होंने मन्त्रित्व-पद को चुना और अखबार को तिलांजलि दे डाली। उसका कारण कोई भी हो, मुझे तो मुक्ति मिली। इसीमें वह खुश था।

वह तीन दिन तक राजधानी में इसीलिए रुका रहा कि उसकी तलाश होगी तब उसे जोशी जी को दिए गए वचन के अनुसार बात करनी होगी।

पर सुना कि जोशी जी ने प्रधान मन्त्री के सामने संपूर्ण वफादारी और स्वामि-निष्ठा का पत्र समर्पित कर दिया और यह स्पष्ट आश्वासन दे दिया कि आप जैसा कहेंगे वही करूंगा। अध्यक्ष की पार्टी के लोगों से कोई ताल्लुक नहीं रखूंगा और 'युगान्तर' पत्र से भी नहीं।

प्रधान मन्त्री उदार हृदय व्यक्ति थे। पल में नाराज़ तो पल में खुश हुआ करते थे। बच्चों जैसी सरलता उनमें थी। वे राज़ी हो गए। जोशी जी का मन्त्रि-पद पुनः एक सत्र के लिए सुरक्षित हो गया। मणिलालभाई और उनकी सेना फिर मात खाकर अपना मुंह लटकाकर राजधानी से लौट आई।

धनंजय के तीन-चार महीने बड़ी शांति से बीते। सब लोग चुनाव की धींगा-धींगी में लगे थे, और गिरधारी, रणदमन, डॉ० छदामीलाल सबका ध्यान उसी तरफ बंटा था। चुनाव समाप्त हुआ, जोशी जी अपने दल के साथ बहुमत से जीते और वे ही पुनः मुख्य मन्त्री बने। जब उनका आसन पुनः पांच वर्ष के लिए दृढ़ हो गया तो गिरधारी और रणदमन सिंह की मोटरें शहर की सड़कों पर फिर ठाठ से दौड़ने लगीं। रमजान खां की कार्रवाइयों में फिर जोश आना शुरू हुआ।

गिरधारी को जब मालूम हुआ कि मामाजी राजधानी में 'युगान्तर' पर तिलांजलि छोड़ आए हैं तो वह उनपर बहुत जोर से भड़का। 'आपको इतनी जल्दी क्या पड़ी थी ? मणिलालभाई क्या कर लेता जो उसकी धौंस में आकर आपने यह काम कर डाला ? धनंजय के पास आपकी क्या लिखा-पढ़ी है जो कोई बात सबूत हो जाती ? आप इतने बुजुर्ग और अनुभवी हैं, न जाने ऐसी गलती कैसे कर डाली ?'

जोशी जी को लगा कि हां, शायद कुछ गलती तो हो गई है। उस समय मुख्य मन्त्रिपद को खतरा था इसलिए उन्होंने 'युगान्तर' से हाथ धो लिए थे। पर आज जब उनका आसन फिर दृढ़ हो गया तो गिरधारी और रणदमन के दबाव के कारण उन्हें अपने निर्णय पर पछतावा होने लगा और वे इस चाल में मात खा गए, ऐसी उनकी धारणा हो गई।

गिरधारी ने एक दांव और खेला। राजा साहब जगपुरा से फाइनेन्स डिपार्टमेण्ट में एक दरख्वास्त दिला दी कि मैंने युगान्तर कंपनी पर पचास हज़ार का दावा किया है। मुझे उसके हिसाब में गड़बड़ दिखाई देती है, लिहाज़ा उसकी जांच के लिए कम्पनीज़ ऐक्ट के मुताबिक एक इन्स्पेक्टर बैठाया जाए।

गिरधारी और रणदमन सिंह की दौड़धूप के कारण धनंजय को बिना नोटिस दिए इन्स्पेक्टर बैठ गया। वह भी ऐसा जो 'युगान्तर' के प्रतिस्पर्धी समाचारपत्र का ऑडिटर था, जो उसे नीचा दिखाना चाहता था।

हिसाब के रजिस्टर तो चोरी चले ही गए थे। धनंजय ने उसकी शिकायत उसी समय पुलिस में कर दी थी। पर पुलिस ने रजिस्टरों की तलाश में कोई मदद नहीं की। चोरी गए हुए रजिस्टरों में राजा साहब जगपुरा के लेन-देन के हिसाब वाले रजिस्टर भी थे। बाद में पता चला कि जिस क्लर्क ने चोरी की थी उसे सरकारी छापेखाने में दूने तनख्वाह पर नौकरी दे दी गई।

ऑडिटरों ने जांच की रिपोर्ट देने में तीन महीने लिए। गायब रजिस्टरों का

उल्लेख तो उन्होंने किया ही। पर साथ ही यह लिखा कि तीन वर्ष की अवधि के लिए 'युगान्तर' ने अपनी बिक्री अधिक बताने के लिए कुछ हिसाब इस तरीके से रखे जिनके कारण पैसे की खयानत तो नहीं हुई पर बैलेन्स शीट में ऐसे आंकड़े आ गए जिनके कारण आमद और खर्च के आंकड़े फूले हुए दिखते हैं। इन आंकड़ों को दोनों ओर से निकाल देने से मूल स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। यह केवल पत्र के लिए अधिक विज्ञापन प्राप्त करने की गरज़ से किया गया था। पर इसके कारण हिसाब में एक पाई की भी गड़बड़ नहीं है।

यह ऑडिटर की रिपोर्ट सरकार ने एडवोकेट-जनरल के पास भेजी। ये वही महाशय थे जिनको इस पद पर बैठालने में धनंजय का हाथ था। वे पहले जोशी जी के कट्टर दुश्मन थे। पर उम्र बढ़ जाने के बाद हाईकोर्ट की जजी से निकाले गए थे। बेकार थे। किसी तरह धनंजय और मुख्य मंत्री की दोस्ती का लाभ उठाकर, उनकी सिफारिश से एडवोकेट-जनरल बन गए। गिरधारी ने पांसे फेंके और एडवोकेट-जनरल को पता चल गया कि धनंजय में और जोशी जी में खटपट हो गई है। वे न तो न्याय के दोस्त थे न धनंजय के, वे तो ओहदे के दोस्त थे। सो उन्होंने भी धनंजय या युगान्तर कंपनी को बिना नोटिस दिए मुकदमा दायर करने की सलाह सरकार को दे डाली।

गिरधारी खुशी से नाच उठा और रायसाहब रणदमन सिंह के यहां पेड़े बांटे गए। धनंजय के गले की फांसी अब तय हो गई और वह फन्दा अब धीरे-धीरे उसके गले पर जकड़ेगा। अब बोलो बच्चू, कहां जाओगे ? और करो पुलिस से छेड़खानी और लिख लो भ्रष्टाचार कमेटी के खिलाफ लेख !

पुलिस विभाग में धनंजय के हितैषी दोस्त भी थे। उसी पुलिस कप्तान के ज़रिये उसे मालूम हो गया कि चार-पांच दिन के भीतर ही युगान्तर प्रेस तथा धनंजय के मकान की तलाशी ली जाएगी और उसे तथा उसके डायरेक्टरों में से किसी प्रमुख व्यक्ति को, शायद चेयरमैन को, कंपनी के झूठे हिसाब रखने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाएगा। वक्त सिर्फ चार-पांच दिन का है। होशियार हो जाइए !

धनंजय ने कहा—भगवान तेरी मरज़ी। अभी और अग्नि-परीक्षा बाकी है ! खैर, यह भी सही !

२५

फौजदारी मामले में गिरफ्तारी होगी, इस समाचार पर तो पहले धनंजय का विश्वास नहीं बैठा। क्या ऐसा भी हो सकता है ? अपने व्यक्तिगत झगड़ों को निपटाने के लिए सरकारी मशीनरी का उपयोग, और वह भी इस भद्दे और लांछनीय तरीके से ?

उसने इतना तो सुना था कि सत्तात्मक राजनीति बड़ी निष्ठुर होती है, और एक पक्ष के लोग ही सत्ता पाने की हाथापाई में, एक दूसरे का गला घोंटने में लिहाज नहीं करते। फिर भले ही उनका प्रतिपक्षी स्वतंत्रता-संग्राम में उनका सह सैनिक रहा हो, और देश के लिए उसने कुर्बानियां की हों। तब की बात तब और अब की बात अब।

पर राजनीति का उससे रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं था। उसने जोशी जी को कभी मन्त्रिपद से हटाने का प्रयत्न नहीं किया था, और न वह राजनीतिक क्षेत्र में उनका किसी भी प्रकार का प्रतिस्पर्धी ही था। जब-जब मणिलालभाई ने उसे अपनी ओर खींचने की कोशिश की तब-तब वह उससे दूर भागता रहा। वह अवसरवादी नहीं था, और जो मार्ग उसे सही दिखाता उसपर वह सीधा चलता। न किसीके लेने में रहता, न किसीके देने में।

पर जो मार्ग उसे सीधा और स्पष्ट दिखाई देता, न्याय और औचित्य का मार्ग दिखता तो फिर वह उससे एक इंच भी नहीं डिगता था, न इधर न उधर। लोभ और भय दोनों ही उसे अपने निर्धारित पथ से विचलित नहीं कर पाते। वह जानता था कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में यही दो राक्षस, लोभ और भय, राहु और केतु की तरह जनता के नेता और कार्यकर्ताओं को ग्रस रहे हैं जिससे उनका तेज और सत्य क्षीण होता जा रहा है। गांधीजी ने कितनी साधना और तपस्या करके भारतीय जनता को, मिट्टी के पुतलों को, नई जान डालकर इस तेज और सत्व से संचारित किया था जिसके कारण घर-घर में, गांव-गांव में वीर पुत्रों और वीर नेताओं का निर्माण हुआ था। पर सत्ता के हस्तांतर के बाद और गांधीजी के अवसान के बाद ये वीर पुत्र और वीर नेता सत्ता-कामिनी की विलास-क्रीड़ा में उलझ गए और अपने समस्त तप और पुण्य को क्षीण करने लगे। पदों, अधिकारों और सुविधाओं का लोभ, और एक बार उन्हें पाने के बाद उनके छुटने का भय, बस ये दो प्रधान

प्रवृत्तियां ही देश में उभरकर सामने ग्रा गई। सत्य, सेवा, न्याय, ग्रहिंसा ग्रौर प्रेम के तत्व कमजोर पड़ गए, केवल नाम भर रह गए। गांधी केवल मौखिक श्रद्धा ग्रौर ग्रादर की वस्तु रह गया। ग्राचार ग्रौर विचार में ग्र-गांधीत्व सिर से पैर तक भर गया। इस परिवर्तन के पीछे एक तत्व भी प्रतिपादित किया गया कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले गांधी बिलकुल ठीक था, पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश का नव निर्माण करने में हमें ग्राधुनिक विज्ञान ग्रौर जीवन-प्रणालियों को ग्रपनाना होगा। उसके बिना हम ग्रमेरिका, इंग्लैंड ग्रौर रूस की बराबरी कैसे करेंगे? ग्रर्वाचीन जगत की ग्रावश्यकताग्रों के लिए गांधी उतने काम का नहीं है।

जब स्वयं गांधी की उपयोगिता ही कम हो गई तब स्वाभाविकतः उसके स्थापित किए हुए मूल्यों का भी महत्व कम हो गया। संयम ग्रौर ग्रात्मनियंत्रण ढीला हो गया, त्याग ग्रौर सेवा की वृत्ति क्षीण हो गई, नीतिमत्ता ग्रौर चरित्र के मूल्यों का ग्रवसान होने लगा, ग्रौर देश का संचालन एक नये, ग्रलग मार्ग पर होने लगा। सादगी ग्रौर मितव्ययिता की जगह भड़कीलापन, दिखावा ग्रौर फिज़ूल-खर्ची ग्रा गई। स्वतंत्र भारत के मन्त्रियों को, राजपुरुषों को शान-शौकत से रहना चाहिए, इतने बड़े मुल्क की इज़्ज़त के मुताबिक उनका रहन-सहन चाहिए। इस दृष्टिकोण से बड़े-बड़े बंगले, कालीन, फर्नीचर, जगमग-जगमग करती मोटरें, शानदार प्रीतिभोज ग्रौर पार्टियां, सब कुछ शाही ढंग से होना चाहिए। ग्रादमी फिसलन पर बहुत जल्दी गिरता है ग्रौर जब इस फिसलन के पीछे ग्राधुनिक जगत की ग्रावश्यकता के रूप में एक तात्विक भूमिका दे दी जाए तो फिर उस ग्रधःपतन की गति का क्या पूछना है?

जो ग्राचार-विचार दिल्ली में उठा, वह सारे देश में फैल गया। गांधीजी के नेतृत्व के ज़माने की मान्यताएं तेज़ी से बदलने लगीं, ऊपर का जामामात्र वही रहा, पर भीतर का स्वरूप समूचा बदल गया। गांधी-कालीन जोशी जी तथा उसके ग्रनन्तर काल के जोशी जी में ज़मीन-ग्रासमान का फर्क पड़ गया। जब सभी बड़े-बड़े नेता उस नये मार्ग पर जा रहे हैं तो मैंने ही क्या ठेका लिया है कि मैं पुराने मार्ग का ग्रनुसरण करूं? यही विचार उनके मन में उठा। जो सबकी गति होगी वह मेरी होगी। ग्राखिर एक ही जहाज़ में तो सब बैठे हैं। जहां सब पहुंचेंगे वहां मैं भी पहुंचूंगा।

धनंजय ही एक बेवकूफ था जो पुराने मार्ग से चिपका बैठा था, ग्रौर नये मार्ग

पर चलने वालों के रास्ते में अपशकुन के रूप में खड़ा था। आंख का यह कांटा निकले बगैर राजमार्ग साफ नहीं होगा। उसी कांटे को हटाने के लिए जोशी जी के कृपाछत्र के नीचे गिरधारी और रायसाहब रणदमन सिंह जी-जान से जुट पड़े थे।

उस रात्रिभर धनंजय और गीता दोनों ही अपने बिस्तर पर छटपटाते रहे। नहीं, बात इतनी दूर तक नहीं जा सकती। जोशी जी कभी इतने नीचे नहीं उतरेंगे कि एक ज़माने के अपने सहयोगी और भागीदार को मतभेदों के कारण, क्रिमिनल मुकदमे में फंसाकर जेल की हवा खिलाने का षड्यन्त्र चलने देंगे? जोशी जी वैसे उदार हृदय के व्यक्ति हैं, पुराने संस्कारों और परम्पराओं को मानने वाले हैं, वे कम से कम ऐसा नहीं होने देंगे। हां, गिरधारी और रणदमन सिंह के लिए सब संभव है। जिस रोज़ रणदमन सिंह पर 'युगान्तर' ने सीधा आक्रमण किया था उसी रात को गुण्डों के डण्डे से उसका सिर कैसे नहीं फटा इसीका धनंजय को आश्चर्य था। पर जोशी जी के रहते इतनी मनमानी नहीं चलेगी ऐसी उसकी प्रामाणिक आस्था थी।

क्योंकि आखिर लड़ाई किस बात की थी? जोशी जी से जो मतभेद चल रहा था, वह दिल्ली में तो तय हो ही गया था। जोशी जी के सामने एक पेंच था। 'युगान्तर' का सम्बन्ध उनके मन्त्रिपद के मार्ग में कण्टक बना था। वह उन्होंने निकाल डाला और धनंजय को छुट्टी दे दी थी। वह अब पूरी तरह स्वतंत्र था। मन्त्रिपद रहा तो दस 'युगान्तर' निकाल लेंगे, ऐसी उनकी धारणा थी। वे भी खुश थे, धनंजय भी खुश था।

और उसी खुशी में घर लौटकर उसने एक सम्पादकीय अग्रलेख लिख डाला था, 'आत्मनिवेदन', जिसपर उसने अपने हस्ताक्षर किए थे। उसमें उसने अत्यन्त प्रांजलता और प्रामाणिकता से स्वीकार किया था कि कुछ वैधानिक एवं संगठनात्मक कारणों से 'युगान्तर' की व्यवस्था ऐसी दिखाई देती थी कि लोगों की दृष्टि में वह एक पक्ष-विशेष का, और उस पक्ष के भीतर ही एक व्यक्ति-विशेष का मुखपत्र बन गया है, और वह निर्भीक स्वतंत्र वृत्ति का समाचारपत्र नहीं है। इसकी सफाई में उसने जो लिखा था उसका आशय इस प्रकार था:

हम स्वीकार करते हैं कि जनता की इस प्रकार की धारणा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। हमारा यह प्रामाणिक मत था कि स्वातंत्र्योत्तर काल में, जब देश

के सामने नव निर्माण का महान प्रश्न था, और हमें स्वस्थ प्रजातान्त्रिक परम्पराओं की स्थापना करनी थी, एक विधायक वृत्ति के ज़िम्मेदार समाचारपत्र की आवश्यकता थी जो राष्ट्रीय सरकार की इन प्रवृत्तियों का दृढ़ता से समर्थन करे। प्रत्येक महान क्रान्ति के बाद एक प्रतिक्रान्ति होती है, जो प्रगति के मार्ग में रोड़ा अटकाती है, उसे विफल बनाने का प्रयत्न करती है, तथा समाज को ध्वंस और अराजकता की ओर ले जाने का प्रयत्न करती है। इस प्रतिक्रान्ति में वही तत्व मुख्यतः कार्य करते हैं जो पुरानी शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत सशक्त थे, सबल थे, और जो अपनी सारी शक्ति राष्ट्र-द्रोह के तत्वों से तथा ब्रिटिश शासकों के समर्थन से पाया करते थे। इन प्रतिक्रान्तिकारी तत्वों से खुलकर लड़ना और उससे समाज तथा शासन को बचाना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य था, ऐसी हमारी भावना थी और उसीके मुताबिक 'युगान्तर' की नीति और कार्य रहा।

पर जैसे-जैसे इन विध्वंसक और अराजक तत्वों का दमन होता गया वैसे-वैसे शासकीय क्षेत्र में भी शिथिलता, कर्तव्यविमुखता और आरामतलबी तथा भोगवृत्ति बढ़ने लगी। जिन ऊंचे आदर्शों और मूल्यों के लिए 'युगान्तर' ने एक पक्ष-विशेष और व्यक्ति-विशेष को अपनी सेवाएं अर्पित की थीं उन आदर्शों और मूल्यों का अवमान होने लगा और समस्त शासन के वातावरण में अनैतिकता, अन्याय और भ्रष्टाचार के तत्व प्रबल होने लगे।

इन तत्वों के साथ 'युगान्तर' की कोई सहानुभूति नहीं थी, और न उनके प्रति उसकी कोई ज़िम्मेदारी थी। इन तत्वों का निर्मूलन हो, यही उसका प्राथमिक कर्तव्य बन गया। और इसके लिए यह आवश्यक था कि 'युगान्तर' की नीति स्वतंत्र हो, पक्षातीत हो।

हमें प्रसन्नता है कि आज अपनी नीति की पुनर्घोषणा करने का समय आ गया है और वह नीति यह है कि आज से 'युगान्तर' किसी पक्ष या व्यक्ति का मुखपत्र न रहकर केवल जनता का मुखपत्र ही रहेगा; उसीके सुख-दुख का, हित-सम्बन्धों का प्रहरी बनेगा। वह प्रजातान्त्रिक मूल्यों का कट्टर उपासक है और जनता की प्रभुसत्ता को सर्वोपरि मानता है। जनता का कल्याण और मंगल करने वाली प्रत्येक कृति और प्रवृत्ति का वह प्रबल समर्थक रहेगा, इस कल्याण और मांगल्य के मार्ग में विघ्न बनने वाली प्रवृत्तियों का वह शत्रु रहेगा। सत्य, न्याय और समता उसके मार्ग के दीपस्तंभ रहेंगे और देश की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा

सर्वांगीण उन्नति का वह अखण्ड पुजारी रहेगा। प्रामाणिकता और निर्भीकता से वह अपना मार्ग अनुसरण करेगा, व्यक्तिगत राग-द्वेष या अहंकार से रहित होकर वह व्यक्तियों का शत्रु या मित्र नहीं होगा, सिद्धान्तों का होगा। जिन सिद्धान्तों की सेवा का उसने व्रत लिया है, उनका परिपालन करने वालों का वह मित्र है, उनकी हत्या करने वालों का वह अमित्र है। आज से वह अपनी संपूर्ण स्वतंत्र नीति की घोषणा करता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शासकोय दल या उसके प्रभावशाली नेतृत्व का शत्रु ही बन गया है। उस नेतृत्व के कारण 'युगान्तर' के निर्माण में जो योग मिला है उसके प्रति वह कृतज्ञ है। इस दल और नेतृत्व की नीति-रीति यदि उसके सिद्धान्तों के अनुकूल रही तो वह उसका ठीक उसी तरह समर्थन करेगा जैसे कि पहले करता था। लेकिन वह यदि उसके विपरीत रही तो स्पष्ट है कि उन्हें उसका समर्थन कदापि नहीं मिल सकेगा।

'युगान्तर' दैनिक के निर्माण में जिन मित्रों की पूंजी लगी है उन मित्रों को हम आश्वासन देना चाहते हैं कि उसके लगाने में उनकी जो भी दृष्टि और कारण रहे हों, हम उसे एक थाती और धरोहर के रूप में ही मानते हैं, और एक ट्रस्टी के रूप में ही हमने उसका विनियम किया है और करते रहेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस स्वतन्त्र नीति को लेकर पत्र चलने वाला है उसमें उसकी सामाजिक उपादेयता तो सुरक्षित है ही, पर आर्थिक समृद्धि भी पूरी तरह सुरक्षित है। हमारे भागीदारों के आर्थिक हित-सम्बन्धियों के प्रति हम आंखों में तेल डालकर जागरूक रहेंगे और हमारे हिसाब-किताब सब समय उनकी जांच के लिए खुले रहेंगे।

हमारी यह विनम्र श्रद्धा है कि जनता में जनार्दन का वास रहता है, और पंचों की वाणी में परमेश्वर बोलता है। हम उसी जनता-जनार्दन से गत चार-पांच-वर्षों की भूलों के लिए आज क्षमा मांगते हैं और उन्हें आश्वासन देते हैं कि आज से हम सभी प्रकार के पक्षों या व्यक्तियों के हितों-अहितों से मुक्त हाकर केवल पंच-परमेश्वर की सेवामात्र के लिए ही दृढ़ प्रतिज्ञ हैं ताकि हमारा पुरातन, गौरवशाली देश धन-धान्य से पूरित होकर सुख-समृद्धि प्राप्त करे तथा अपने उज्वल सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर अपने देश में तथा विश्व में रामराज्य अर्थात् धर्मराज्य की स्थापना में सक्रिय सहयोग दे ताकि विश्व की मानवता समता, एकता तथा प्रेम के सूत्र में बंधकर स्वर्णयुग में पदार्पण करे।

हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें इस विशाल पथ पर चलकर अपने स्वप्नों और आदर्शों का पालन करने की शक्ति दे।

'युगान्तर' के इस अग्रलेख ने प्रदेश की पत्रकारिता में एक क्रान्ति कर दी। पाठकों और जनता में उत्साह की लहर बह निकली। अब फिर आ गया है 'युगान्तर' अपनी पुरानी आन पर, पुरानी शान पर! अब जनता मित्रविहीन और बेज़बां नहीं रहेगी। उसका संगी-साथी आ गया है और उसे अब किसी भी शक्ति से डरने या घबड़ाने की ज़रूरत नहीं है। वाह रे युगान्तर! वाह रे धनंजय!! शाबाश युगान्तर! शाबाश धनंजय!! यही आवाज़ चारों तरफ सुनाई देती।

राजनीतिक पक्ष और नेता आम चुनाव की हुड़दंग में अपने-अपने जोड़-तोड़ मिलाने में लगे थे। उन्हें इस तत्वपूर्ण और युगान्तरकारी अग्रलेख को पढ़ने की फ़ुर्सत ही कहां थी? वे तो 'भाइयो और बहनो, हमें वोट दो', की रट लगाते ही दिन-रात घूमते थे जैसे उनपर असेम्बली की सीटों के रूप में अगिया बैताल ही चढ़ बैठा हो। पर जनता इस 'आत्मनिवेदन' को पढ़कर बाग-बाग हो उठी और 'युगान्तर' की बिक्री धड़ाधड़ बढ़ने लगी। धनंजय के उत्साह और आनन्द की सीमा नहीं थी। भारत को स्वतंत्र हुए पांच साल हो गए थे, पर उसने आज पहली बार स्वतंत्रता की सांस ली।

पर उसका उत्साह और आनन्द कुल तीन-चार महीने ही टिका। जब चुनाव की हुड़दंग समाप्त हो गई और जोशी-मन्त्रिमण्डल फिर अपनी सत्ता पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हुआ तब उसकी शान्ति पुनः भंग होने लगी, और अब तो उसे नैतिक लांछन लगाकर एक अपराधी के रूप में जेल में भेजने की साज़िश सामने नज़र आने लगी।

उसका हृदय असीम व्यथा और ग्लानि से भर गया और उस दारुण दुःख की अभिव्यंजना में अपनी अन्तरात्मा के भाव से ओतप्रोत एक पत्र उसने जोशी जी को भेजने के लिए लिखा। उसे लिखने में एक दिवस और दो रात्रियां लगीं; पत्र की दीर्घता के कारण नहीं, उसकी गहनता के कारण। पत्र जब समाप्त हो चुका। तब वह बोला:

'गीता, यह पत्र तुम स्वयं जाकर जोशी जी को दे आओ। संघर्ष की भयंकरता और दुष्परिणामों को टालने का यह मेरा आखिरी प्रयत्न है। यह असफल रहा तो फिर हरि की जो इच्छा होगी वही होगा।'

गीता कभी जोशी जी के बंगले पर नहीं गई थी, हालांकि वे उसे कई वर्ष पहले, जब उसके घर आए थे, तब निमन्त्रण दे चुके थे। पर उसे पहली बार उनके यहां इस प्रकार का पत्र लेकर जाना पड़ेगा, यह विधि का विधान उसे बड़ा विचित्र लगा।

यह कोई विशेष आनन्द का कार्य नहीं था, यह वह जानती थी। इससे गलतफहमी भी हो सकती है, यह भी डर था। धनंजय भी यह सब जानता और समझता था। पर केवल कर्तव्य-बुद्धि से ही उसने यह सुझाव दिया और गीता ने स्वीकार किया। वातावरण सर्वथा इसके विपरीत था, पर श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण हमेशा तत्कालीन परिस्थिति के राग-द्वेष और क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर होना चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता थी। यह कदम योग्य था या अयोग्य, इसका निर्णय तो इतिहास करेगा। पर हम क्यों अन्त तक अपने प्रयत्नों में कसर रखें? इतने पर भी प्रयत्न असफल हो जाए तो इसमें किसका दोष है? हमें तो अपना कर्तव्य-कर्म करते रहना चाहिए, फलाफल की ज़िम्मेदारी भगवान पर छोड़ देनी चाहिए।

जब गीता ने स्वयं जोशी जी को टेलीफोन किया कि मैं आपसे मिलने के लिए आना चाहती हूं तो उन्हें आश्चर्य हुआ, और वे सोच-विचार में भी पड़ गए। मुश्किल से एकाध मिनट चुप रहे होंगे कि बोले :

'आइए, कल सुबह नौ बजे।'

'धन्यवाद। मैं कल सुबह नौ बजे ज़रूर आऊंगी।'

२९

गीता ने जोशी जी के कमरे में दाखिल होते ही धनंजय का पत्र दिया। जोशी जी ने उसे खोलकर उसीके सामने पढ़ा। पत्र इस प्रकार था :

'आदरणीय जोशी जी,

'मैं सुन रहा हूं कि दो-एक दिन के भीतर ही झूठे हिसाब और झूठी बैलेंस-शीट रखने के आरोप में मेरी तथा मेरे कुछ सहकारियों की गिरफ्तारी होने वाली है। पता नहीं यह कहां तक सच है। पर यदि यह सच है तो इतनी दुर्भाग्यपूर्ण और खेदजनक घटना और कोई नहीं हो सकती।

'मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि हिसाब की गड़बड़ी से मैं डर रहा हूं। उसका ज़रा भी किसीको शक हो, और राजा साहब जगपुरा को यदि उसका शक है, तो सारी बात उन्हें बखूबी समझाई जा सकती है, बशर्ते कि वे उसे समझने के लिए तैयार हों। जिस सतर्कता, ज़िम्मेदारी की भावना और कर्तव्यदक्षता से मैंने युगान्तर का काम किया है उसमें एक पाई की गड़बड़ नहीं है, इसका मुझे पूरा विश्वास है। मेरी गिरफ्तारी की बात मुझे एक क्षण के लिए भी चिन्तित नहीं करती।

'पर जो बात मुझे अत्यन्त खेदजनक मालूम होती है वह यह कि जिस भद्दे और विद्रूप ढंग से यह सब हो रहा है वह नितान्त अशोभनीय और गर्हणीय है। मैं नहीं समझता कि यह आपकी प्रतिष्ठा और उच्च पद के अनुकूल है।

'विवाद मुख्यतः पत्र की नीति को लेकर चल पड़ा है। आपकी कैबिनेट के एक मन्त्री के दुर्व्यवहार से, भ्रष्टाचार-निर्मूलन के आपके शासन के तौर-तरीके से यह वाद-विवाद उठा था। शासन में जो भ्रष्टाचार व्यापक परिमाण में फैल गया है वह किसी भी राष्ट्रीय शासन के लिए निन्दनीय है। सारे शासकीय तन्त्र में शिथिलता, स्वेच्छाचारिता, नौकरशाही की मनमानी, हस्तक्षेप, और स्वार्थ-सिद्धि बड़े परिमाण पर चली हुई है। राजनीतिक कार्यकर्ता और उनकी देखादेखी सरकारी कर्मचारी भी निन्यानवे के फेर में पड़ गए हैं और जिसे जहां हाथ मारते बनता है वहां वह हाथ मारने से नहीं चूकता। इससे शासन की साख और धाक मिट्टी में मिल रही है, खाऊ-खब्बे वालों की चांदी बन रही है, गुणीजनों का निरादर हो रहा है। समस्त लोक-कल्याण की योजनाओं का प्रारंभ तो ऊंचे तत्वों से होता है पर वास्तविक अमल में उसमें खींचा-तानी, लूट-खसोट, नौकरियों और सुविधाओं के प्रश्न को लेकर हाथापाई मच जाती है। पदों, अधिकारों और सुविधाओं का वितरण न्याय और योग्यता के बल पर नहीं होता, जिसके कारण द्वेष, जलन और संघर्ष की प्रवृत्तियां राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में भी फैल रही है। सच्चे त्यागी सेवकों की कद्र नहीं होती; स्वार्थी, भोगी और खुशामदी लोगों की किस्मत खुल जाती है। लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि जब स्वयं मुख्य मन्त्री ही इन बातों को रोकने में दिलचस्पी नहीं लेते, बल्कि उनके कृतित्व से जाने-अनजाने उनको प्रोत्साहन मिलता है, तो परिस्थिति कैसे सुधर सकती है?

'इसलिए एक ज़िम्मेदार और कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने का प्रयत्न करने वाले नागरिक की हैसियत से मेरे मन में यह प्रेरणा उठी कि अब मैं इन कामों में

शासन का साथ नहीं दे सकूंगा।

'शासकीय पक्ष ही अपने आदर्शों और चरित्र के प्रति, केवल उदासीन ही नहीं, लापरवाह है, तो 'युगान्तर' की पक्षनिष्ठा का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। पक्ष और उसके नेतृत्व के तथा 'युगान्तर' के बीच जोड़नेवाली जो कड़ी थी वह उच्च आदर्शों और स्वप्नों की थी, जिसके लिए परिश्रम करने, जीने और मरने में भी आनन्द था, गौरव था। पर सत्ता की चकाचौंध ने उन आदर्शों और स्वप्नों के सात्विक एवं मांगलिक प्रकाश को ही दबा डाला, और आपको-हमको एकसूत्र में बांधने वाली वह कड़ी ही टूट गई। इसीलिए 'युगान्तर' को निश्चय करना पड़ा कि वह स्वतंत्र नीति का अवलम्बन करे। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह आपका तथा आपके पक्ष का विरोधी हो गया; बिलकुल नहीं। वह आपके प्रत्येक कार्यक्रम को अपनी विवेक-बुद्धि के सिल-बट्टे पर घिसकर देखेगा कि इसमें असली कितना है और नकली कितना है। उसीके मुताबिक निर्णय करेगा कि वह कितना समर्थन कर सकेगा और कितना नहीं।

'हालांकि स्वतंत्र नीति पर चलने का मेरा विचार कई दिनों से था, और चूंकि आपकी-मेरी बातचीत के अनुसार पत्र की नीति सर्वथा सम्पादक के क्षेत्र की ही बात थी, फिर भी मैंने इसकी औपचारिक घोषणा तब तक नहीं की जब तक आपने स्वयं मुझे दिल्ली में बुलाकर 'युगान्तर' से अपना सम्बन्ध विच्छेद न कर दिया। आपने वह जिस परिस्थिति में भी किया हो, पर मैंने सोचा कि आपके-मेरे बीच का मामला समाप्त हो गया है, और मैं जब घर लौटा तो आपके प्रति सद्भावना को छोड़कर और कोई भावना नहीं थी।

'उसके बाद आए आम चुनाव और आप तीन-चार महीने लगातार उन्हीं-में उलझे रहे। इधर मैं अपने पत्र में स्वतंत्र नीति की घोषणा कर चुका था। चुनाव के बाद पुनः आपका मन्त्रिमण्डल बना। उसका मैंने स्वागत भी किया और आशा व्यक्त की कि आपके नये कार्यकाल में पुरानी गलतियों और कमजो-रियों को न दुहराया जाएगा और आप अपने नेतृत्व का नया पृष्ठ खोलेंगे।

'मैं कुछ निश्चिन्त था, पर मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि मैं गलती पर था। जगपुरा के राजा साहब ने ऑडिटर बैठा दिए, और उनकी रिपोर्ट पर अब हमारी गिरफ्तारी होने वाली है। रायसाहब रणदमन सिंह, जिसके द्वारा आप भ्रष्टाचार के निर्मूलन का स्वप्न देख रहे हैं, मुझपर खार खाए बैठा है। उसने

मेरे दफ्तर के रजिस्टर उड़वा दिए हैं, और क्या-क्या पंचायत खड़ा करेगा, कहा नहीं जा सकता।

'आजकल वही रणदमन सिंह आपका मुख्य मित्र, शुभचिन्तक और सलाहकार बन गया है। जो आपके राजनीतिक क्षेत्र के मित्र थे, और जो आपसे कंधे से कंधा भिड़ाकर स्वातंत्र्य-संग्राम में लड़े थे और जिनके सम्बन्ध आपके साथ देशभक्ति और कष्ट-सहन की अग्नि में तपकर घनिष्ठ हुए थे, उनके लिए आपके पास कोई स्थान नहीं है, पर जो अंग्रेज़ों की नाक का बाल था, जिसने देशभक्तों को सच्चे-झूठे मामले में फांसकर तथा देश-द्रोह की हज़ार बातें करके अपना उल्लू सीधा किया वह संदिग्ध चरित्र-व्यक्ति आपके गले का तावीज़ बन बैठा है। इस विचित्र दैव-दुर्विपाक के लिए क्या कहा जाए ?

'खैर, आपको अपने मित्र और सलाहकार चुनने का अधिकार है। इसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है। पर यह नई मित्रता आपको कहां ले जाएगी इसका थोड़ा विचार कीजिए। पुलिस के क्षुद्र और वक्र दिमाग से शासन और प्रदेश की राजनीतिक समस्याएं सुलझाने से क्या अनर्थ हो सकता है इस ओर में इशारामात्र करना चाहता हूं।

'फिर भी, सैद्धान्तिक मतभेद के अलावा, आपके-मेरे बीच व्यावहारिक मामले भी हैं जिनकी चर्चा करना आवश्यक है।

'आपने अपने अखबार 'युगान्तर' कम्पनी को बेचा, उसके लिए आपको एक लाख रुपये मिल गए। मैंने अपना अखबार भी बेचा तो मुझे पन्द्रह हज़ार मिले। चूंकि मेरा अखबार जनता की मदद से चलता था वह रकम मैंने एक सार्वजनिक ट्रस्ट में दान कर दी। मेरे कार्य का क्षेत्र 'युगान्तर' छोड़कर और कोई नहीं था। जिस तरह मैं आपके दैनिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था उसी तरह मैं अपने पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका हस्तक्षेप नहीं चाहता था। मुख्य मन्त्रित्व का क्षेत्र आपका था, पत्रकारिता का मेरा।

'फिर भी, आपका मेरा अठन्नी-अठन्नी का हिस्सा रहा; मेरा मेरे परिश्रम के लिए और आपका आपके प्रभाव के लिए, जिसके ज़रिये पूंजी आई थी।

'यह आठ आना आपने दिल्ली में छोड़ दिया। उसी दिन मैंने भी निश्चय कर लिया कि मैं भी अपना आठ आना छोड़ दूंगा। और उचित समय आते ही इसका ट्रस्ट बना दूंगा ताकि आपको और दुनिया को यह कहने को न रहे कि यह लड़ाई

अठन्नी की या हिस्से की लड़ाई है।

'जिनकी पूंजी लगी हुई है वह सुरक्षित है और उसका एक न्यासी की तरह में उपयोग कर रहा हूं। उन्हें उसका मुआवज़ा मिले, इस ओर मेरा प्रयत्न रहेगा।

'पत्र की नीति की घोषणा कर ही चुका हूं कि वह स्वतंत्र रहेगी, जनताभिमुख रहेगी। प्रत्यक्ष राजनीति से न मेरा सम्बन्ध है, न कभी रहेगा। युगान्तर पत्र अब जनता का पत्र रहेगा, उसका उपयोग कभी मेरे व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं होगा इसका मैं व्रत ले चुका हूं। राजनीति से सर्वथा अलिप्त रहने के कारण यह सवाल ही नहीं उठता। अतः 'युगान्तर' मेरी स्वार्थ-सिद्धि का साधन नहीं हो सकता। और इसके सम्बन्ध में जो भी मैंने किया है उसमें मेरा स्वार्थ नहीं है, यह कम से कम आप तो मानेंगे ही।

'इसके बावजूद आप यदि अपना दिल्ली का निर्णय बदलना चाहते हैं, और वापस अपना आठ आने का हिस्सा लेना चाहते हैं तो उसमें मुझे आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि आप तो जानते ही हैं कि यह झगड़ा अठन्नी लेने या देने का नहीं है। पर शर्त यह है कि पत्र की नीति स्वतंत्र ही रहेगी, जिसकी कि मैं सार्वजनिक रीति से घोषणा कर चुका हूं, और उसका संचालन मेरे ही हाथ में रहेगा। आर्थिक पहलू पर आपकी कोई भी तजवीज़ मानने के लिए तैयार हूं पर नीति और संचालन के मामले में जो सद्यः स्थिति है वही रहेगी।

'मैं अपने संचालन की बात इसलिए कहता हूं कि 'युगान्तर' नामक पत्र का मूल जन्मदाता मैं ही हूं, वह मेरा जीवन का कार्य और मिशन है। उसके प्रतिपालन में मेरा और मेरी पत्नी का रक्त समर्पित हुआ है। राष्ट्र की सेवा करने का वही मेरा एकमात्र माध्यम है। और जिस प्रकार स्वतंत्रता की लड़ाई में अपनी आहुति देकर उसे सफल बनाना मैं अपना कर्तव्य समझता था, उसी प्रकार स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद इस देश में स्वस्थ प्रजातन्त्र की परम्पराएं कायम हों; शासन शुद्ध, दक्ष और लोकाभिमुख हो; और विचार स्वातंत्र्य सुरक्षित रहे ताकि स्वतन्त्र और निर्भीक पत्रकारिता का विकास हो, यह मेरी कामना है। जिस प्रकार एक कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार विदेशियों के द्वारा अपने देश पर किए गए अत्याचारों और अन्यायों को बर्दाश्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार स्वजनों द्वारा किए गए जुल्मों और अन्यायों को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्वतन्त्र देश की स्वतंत्र विचार-प्रणाली और जीवन-प्रणाली का, उसकी सांस्कृतिक मान्यताओं का, उसके

स्वप्नों और आदर्शों का प्रहरी है। वह मेरा कर्तव्य-क्षेत्र है, कर्मक्षेत्र है, और कुरु-क्षेत्र है। इससे मुंह मोड़ने के लिए मैं तैयार नहीं हूं।

'इतना छोड़कर मैं आपकी सब बात मानने के लिए तत्पर हूं। यदि आपको मेरे खिलाफ कोई शिकायत हो या मतभेद हो तो उसे आपस में बैठकर ही निपटना चाहिए, या फिर किसी मध्यस्थ को सौंप देना चाहिए। पर कानून या पुलिस के माध्यम से डरा-धमकाकर निपटाने का यह अभद्र, असभ्य, अशोभनीय तरीका आपको छोड़ देना चाहिए। क्योंकि मैं यह देख रहा हूं कि इसमें मेरा जो कुछ अकल्याण हो सो तो होगा ही, पर आपका भी घोर अकल्याण है। सार्वजनिक जीवन पर इसका विपरीत परिणाम होगा; प्रदेश के भविष्य पर इसका बुरा असर पड़ेगा। मेरी नम्र किन्तु स्पष्ट राय में आपका पक्ष न्याय का पक्ष नहीं है इसलिए उसकी क्षति हुए बगैर नहीं रहेगी। हां, उसमें समय भले ही लगे। मैंने अगर हिसाब में गड़बड़ी की है तो उसका दण्ड तो मुझे भोगना ही चाहिए। पर यदि आप न्याय के पक्ष को छोड़कर केवल आपके हाथ में सत्ता है इसलिए मुझे आपकी ही बात माननी चाहिए अन्यथा परिणामों को भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए, इसी बुनियाद पर डटे हैं तो ईश्वर ही आपका सहायक है।

'चूंकि मुझपर सरकार द्वारा नियुक्त ऑडिटर की इनक्वायरी चल रही है, मैंने स्वयं आपके यहां आना उचित न समझा। इसलिए गीता को भेजना पड़ा। इससे गलतफहमी भी हो सकती है, यह मैं जानता हूं। और सब कीजिए पर ईश्वर के लिए कम से कम इतना तो मत कीजिए कि मैं मुकदमे के डर से यह लिख रहा हूं ऐसी धारणा बना ले, क्योंकि उससे आपको सही निर्णय करने में दिक्कत होगी। और एक बार आप भूल जाइए कि आप मुख्य मंत्री हैं, और स्मरण रखिए कि आप और मैं दोनों ही पुराने मित्र हैं, मित्रों को अपना झगड़ा प्रेम और न्याय के साथ ही मिटाना चाहिए।

'लेकिन आपने यदि इस सभ्य और सुसंस्कृत तरीके से झगड़ा निपटाने की बात त्याग दी तो फिर आपके और मेरे बीच तो भगवान ही न्याय करेंगे, पुलिस और अदालत क्या करेगी? आपके पास सत्ता है, पुलिस है, सम्पत्ति है, राजा-महराजों का समर्थन है। मेरे पास तो ईश्वर को छोड़कर और किसीका सहारा नहीं है। मुझ शक्तिहीन अकिंचन को खत्म कर डालने में आपको ज़्यादा समय नहीं लगेगा। यदि मेरा पक्ष अधर्म और अन्याय का है तो मेरा खत्म हो जाना ही श्रेय-

स्कर है। और यदि आपका पक्ष अधर्म और अन्याय का है, तब आपकी भी वही गति होनी अवश्यम्भावी है।

'पल-पल, क्षण-क्षण समय की घड़ियां बीतती जाती हैं। इसके पहले कि सार्वजनिक रीति से विस्फोट हो, क्या आप सारी परिस्थिति पर शांतिपूर्वक विचार करेंगे? आप बुजुर्ग हैं, और आप ही इस भयंकर काण्ड को बचाने की क्षमता रखते हैं।

आपका विनम्र,
धनंजय'

जोशी जी ने पत्र बड़ी गंभीरता से पढ़ा, एक-एक शब्द ध्यान से पढ़ा। और फिर दुबारा पढ़ा। फिर सोच-विचारकर बोले, 'मैं भी नहीं चाहता कि उनका नाम बदनाम हो, या नुकसान हो। यों तो मुझे अब 'युगान्तर' से कुछ नहीं करना है। उसका काम धनंजय जानें और जो मरजी आए वह करें। पर चूंकि उन्होंने मुझे फिर वापस हिस्सा देने की बात उठाई है तो नौ आने पाए बिना इस मामले में मैं कोई दिलचस्पी नहीं ले सकता। या फिर वे इसके संचालन से इस्तीफा दे दें और जिसे मैं कहूं उसके हाथ संस्था सौंप दे और उसके मुआवज़े में पचास हज़ार ले लें। अपना साप्ताहिक बेचने में उन्हें पन्द्रह हज़ार मिले थे, मैं तिगुनी से भी अधिक रकम दिलाने के लिए तैयार हूं, इससे वे अपना अलग पत्र निकाल लें। चाहें तो इसमें मैं पांच-दस हज़ार और मिलाकर दे सकता हूं। आखिर उन्होंने भी काफी कष्ट भोगे हैं और परिश्रम किया है।'

गीता ने कहा कि इसका जवाब तो मैं उन्हींसे पूछकर दे सकूंगी। कल सुबह नौ बजे तक आपको उत्तर मिल जाएगा।

गीता मामाजी से मिलने आई थी इसकी खबर सबसे पहले गिरधारी को लगी। उसने फौरन रणदमन सिंह को टेलीफोन किया।

रणदमन सिंह बोला, 'बस, सरेण्डर (आत्मसमर्पण) का पैगाम आ गया! सफेद झण्डा दिखा दिया गया है, सो भी पहली घुड़की में। वाह रे बहादुर!'

पांच मिनट बाद उसने गिरधारी को वापस फोन किया, 'यार, ज़रा पता तो लगाओ कि असल में क्या बातचीत हुई? जोशी जी पुरानी परम्परा के आदमी हैं। कहीं उसे कन्या मानकर सभी कुछ दान में तो नहीं दे डाला, जैसे सावित्री को वर मिल गया था? फिर तो यार कोई बात न बनी।'

गिरधारी ने कहा, 'देखिए, कोशिश करता हूं।'

दूसरे दिन सुबह जाकर गीता ने धनंजय का जवाब दे दिया कि दोनों बातें उसे मंजूर नहीं हैं। नौ ग्राने वाली बात इसलिए मंजूर नहीं है कि वह तो फिर जोशी जी की नौकरी हो गई। नौकरी उसने ज़िन्दगी भर किसीकी नहीं की है, ग्रौर ग्रब भी नहीं कर सकेगा।

दूसरी बात इसलिए स्वीकार नहीं है कि ग्राज इस इनक्वायरी के रहते हुए वह इस्तीफा दे देगा, तो दुनिया यही कहेगी कि दाल में कुछ काला जरूर है, उसने रुपया खाया है, ग्रौर ग्रब मुकदमे के डर से ग्रात्मसमर्पण करके भाग गया। चरित्र का यह कलंक तो वह जन्मभर धोए नहीं धुल सकेगा। उसके पास चरित्र को छोड़कर ग्रौर है ही क्या? उसीपर यदि लांछन लग गया तो फिर वह समाज की या देश की क्या सेवा कर सकेगा? ग्रौर उसपर भी वह रुपये ले ले तो भय ग्रौर लोभ दोनों का वह शिकार बन गया ग्रौर रणक्षेत्र से भाग गया, ऐसा ही लोग कहेंगे। इनक्वायरी की पिस्तौल सिर पर तानकर कोई उसे पचास हज़ार नहीं, पचास लाख भी दे दे तो वह स्वीकार नहीं कर सकता। जब तक इस इनक्वायरी में वह निष्कलंक होकर नहीं निकलता है तब तक सौदे की क्या बात हो सकती है?

जोशी जी को बड़ी झुंझलाहट हुई। लगा जैसे कोई सिर पर तमाचा मारकर चला गया हो।

गीता ने नित्य की तरह झुककर उन्हें नमस्कार किया ग्रौर वहां से उठकर चली ग्राई।

ग्राकाश में मेंह गड़गड़ाने लगे। चारों ग्रोर बदली छा गई ग्रौर ग्रंधेरा हो गया। थोड़ी-सी बूंदाबांदी भी हुई। न जाने मेंह बेचारे किसके लिए ग्रांसू बहा रहे थे।

३०

दूसरे ही दिन पुलिस ने युगान्तर प्रेस पर छापा मारा। चार पुलिस के वान ग्राए जिसमें से दो दर्जन के करीब जवान उतरे। सारे प्रेस के ग्रासपास

घेरा डाल दिया। छः सब इन्स्पेक्टर थे। प्रेस और कार्यालय की कसकर तलाशी ली और मजिस्ट्रेट के हुक्म के मुताबिक हरेक कागज़ ज़प्त कर लिया। जिस किसी-पर 'युगान्तर' नाम था, वही आपत्तिजनक चीज़ मानी जाती। कैशमीमो भी ज़ब्त कर लिए, और उस दिन जो रसीदें काटी गई थीं वे भी। विज्ञापन, सर्कुलेशन, प्रेस विभाग के चालू रजिस्टर भी हटा दिए गए। अब बिल बनें तो कैसे बनें, वसूली हो तो कैसे हो? रोज़मर्रा का काम कैसे चले? नीयत साफ थी कि कम्पनी का काम ही ठप हो जाए और दूसरे दिन का अखबार ही न निकले। एक दिन और एक रात तो तमाम कागज़ ढोने में लगे। रात में दफ्तर के आसपास पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। न कोई भीतर जा सकता था न बाहर आ सकता था।

वही किस्सा धनंजय के घर पर हुआ। एक मोटर गई, छः सिपाही और एक इन्स्पेक्टर। इन्स्पेक्टर ज़रा भला आदमी था। बोला, 'साहब, हमें यह अप्रिय काम करना पड़ रहा है, माफ कीजिए। हुक्म है इसलिए उसे तामील तो करना ही पड़ता है। पर अपने घर में आप जो चीज़ इस आर्डर के मुताबिक आपत्तिजनक समझते हैं, वह मुझे दे दीजिए। मैं क्यों तलाशी का तमाशा करूं?'

धनंजय की सूबे में क्या इज्ज़त थी यह वह जानता था, और झगड़ा किस बात का है यह भी थोड़ा-बहुत समझता था।

धनंजय ने कहा, 'नहीं, कोई अप्रियता की बात नहीं। आप अपनी ड्यूटी कीजिए और जो कागज़ आप ठीक समझते हैं, ले जाइए।'

इन्स्पेक्टर ने दो-चार कागज़ उठाए और ज़प्ती का कागज़ लिखने लगा।

इतने में नीचे एक मोटर आई और धड़धड़ाते हुए सीढ़ी चढ़ते हुए दो आदमी आए—एक था भोलानाथ एडवोकेट और दूसरे आदमी को धनंजय पहचान नहीं पाया।

'अरे भोलानाथ, इस समय तुम यहां कैसे?'

'मुझे अदालत में मालूम हुआ कि तुम्हारे खिलाफ तलाशी और गिरफ्तारी का वारण्ट निकल चुका है। भागा-भागा आया और साथ ज़मानतदार ले आया।' और फिर इन्स्पेक्टर की तरफ मुड़कर पूछा:

'क्यों, गिरफ्तारी का वारण्ट भी है न?'

'जी हां', उसने कुछ शरमिन्दा होकर कहा।

'तो वह भी बजा लीजिए। मैं यह ज़मानतदार लाया हूं।'

इन्स्पेक्टर ज़मानतदार को पहचानता था। वह संतरे का बड़ा व्यापारी था, बगीचे थे, दलाली का काम था—एक-एक हज़ार की ज़मानत देने के लिए उसकी जायदाद काफी थी।

इन्स्पेक्टर ने गिरफ्तारी का वारण्ट भी बजा लिया और ज़मानत लेकर धनंजय को रिहा कर दिया, और अपने कागज़ात उठाकर चलता बना।

'तुमने भी गज़ब कर दिया भोलानाथ। जैसे वक्त पर आ गए। ज़मानत के लिए किसीके दरवाज़े तो जाना ही पड़ता, नहीं तो थाने में जाकर बैठना पड़ता।'

'मर गए तुम्हें थाने में भेजने वाले! खुद तो हराम की खा-खाकर मोटे हो रहे हैं और निर्दोष आदमियों पर तोहमत लगाते हैं? लिखकर रख लो, एक हज़म नहीं होगी, एक भी नहीं। टें न बोल दी तो मेरा नाम भोलानाथ नहीं, चमार रख देना...' वह गुस्से से बोला। सात्विक संताप से वह तमतमा उठा था।

रह-रहकर धनंजय को यही लगता कि ऐन मौके पर भोलानाथ कैसे टपक पड़ा—जैसे भगवान की कृपा बरस पड़ी हो, सांत्वना देने तथा हिम्मत बंधाने। एकाएक धनंजय की आंखें भर आईं।

'तुम्हें कैसे पता चला?' उसने अपने आपको सम्हालकर पूछा।

'कल से मैं देख रहा था कि वह हम्बग पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता बड़ी दौड़-धूप कर रहा है, सोहर्नासिंह मजिस्ट्रेट के साथ उसकी बड़ी घुसड़-फुसड़ चल रही थी। मैंने कहा, बात क्या है? जब गुप्ता और डी० वाई० एस० पी० उसकी अदालत से हटे तो मैं सोहर्नासिंह के पास गया और पूछा—क्यों रे, क्या माजरा है? वह मेरा भी दोस्त है। बोला, 'युगान्तर' वालों के खिलाफ 'कम्प्लेण्ट' दायर हो चुकी है और वारण्ट निकल चुके हैं।—मैंने कागज़ देखे तो तुम्हारा भी नाम दिखा। मुंशी को काम सौंपकर फौरन दौड़ा-दौड़ा आया कि ज़मानत की ज़रूरत पड़ेगी। ये हज़रत मेरे मवक्किल हैं। मैंने कहा, तेरा काम बाद में करूंगा, पहले चल मेरे साथ—एक ज़मानत देनी है। अच्छा हुआ जो हम लोग वक्त पर आ गए। वरना तुम्हें परेशानी हो जाती।'

धनंजय भीतर ही भीतर गद्‌गद हो उठा। उसके कल्याण के बारे में कितनी आस्था, कितनी चिन्तना! हज़रत इतने महीनों कहां गायब रहे, भगवान जाने। पर ऐसे मौके पर आ धमके जब आदमी को दोस्त की ज़रूरत होती है। वाह रे भोलानाथ!

धनंजय के दफ्तर से भी फोन आया कि वहां भी ज़प्ती गिरफ्तारी चली है। चार आदमी पकड़े गए––धनशेट्टिवार, युगांतर कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का चेयरमैन और तीन कर्मचारी और। तलाशी भी सबके मकानों की हुई। कम्पनी का चेयरमैन धनशेट्टिवार पुलिस वालों पर बमक उठा। वैसे उसका 'युगान्तर' के दैनिक काम-काज से कोई सम्बन्ध नहीं था पर रणदमन सिंह ने पुरानी दुश्मनी चुकाने के लिए उसे भी फांस लिया। धनशेट्टिवार आई० सी० एस० से रिटायर हो चुका था। अब रोज़गार-धन्धे में लग गया था, पेट्रोल की एजेन्सी, बिजली के ठेके, रबर की फैक्टरी आदि मुतफरकात काम करता था और अब युगान्तर कंपनी का चेयरमैन बन गया था। राजनीति में थोड़ी-बहुत दिलचस्पी रखता था और समाजवादी पार्टी का मेम्बर बन गया था। जब वह किसी ज़िले में डी० सी० था तब वहीं रणदमन सिंह पुलिस कप्तान था। रणदमन तो अपने तुर्रे में किसीको कुछ नहीं समझता था, तो धनशेट्टिवार ने उसकी एक दिन क्लब में अच्छी परेड ली। हंसी-हंसी का तो मामला था, पर इतने लोगों के सामने उसे नीचा देखना पड़ा इससे रणदमन जल उठा और भीतर ही भीतर खार खाने लगा। उसने महीने भर के भीतर ही वहां से अपना तबादला करवा लिया। बात कोई आठ-दस साल पुरानी थी। इस बीच गवर्नमेंट बदली, अंग्रेज़ चले गए, भारतीयों का शासन शुरू हुआ और धनशेट्टिवार ने अवकाश ग्रहण कर लिया। 'युगान्तर' से सम्बन्ध होने के कारण रणदमन को अच्छा मौका मिला। इसने उसको भी रगड़ दिया। इस समय तो सरकारी पक्ष की तरफ से वही युद्ध-संचालन का सिपहसालार था और पुलिस के पैंतरों का निर्देशन वही कर रहा था। शाम को जब रणदमन सिंह को दिन भर की ज़प्ती और गिरफ्तारियों की रिपोर्ट मिली तो खुशी के मारे नाच उठा। एक ही पत्थर से दो पक्षी मारे गए—धनंजय और धनशेट्टिवार। अरे यार, हम तो पुराने अखाड़िये हैं। हमारे सामने ये कल के लौंडे क्या टिकेंगे? फौरन 'युगान्तर' के प्रतिस्पर्धी सभी अखबारों को फोन किया—ज़रा फ्रंट पेज पर छापना इस सनसनीखेज़ घटना को। प्रायः सभी प्रेस में उसके आदमी थे ही। सिर्फ 'युगान्तर' प्रेस में उसकी पहुंच नहीं थी। सो उसकी नाड़ी इस तरह ठंडी की।

दूसरे दिन सुबह ही अखबारों में ज़ोरदार हरफों में 'युगान्तर'-केस का समाचार छपा। 'युगान्तर' ने भी छापा। शहर भर में सनसनी मच गई। मन्त्रिमण्डल के क्षेत्रों में तो उत्सव का-सा वातावरण था। गिरधारी तो उचका-उचका फिरता

था। प्रतिस्पर्धी अखबार भी खुश थे, कि यह अच्छा गड्डे में आया। उसकी लोकप्रियता से जलन जो हो रही थी। कुछ लोगों को शक हुआ कि जोशी जी और धनंजय वगैरह दोनों मिलकर खाते थे। अब उनमें फूट हो गई है तो एक दूसरे पर उखड़ पड़े। भुगतेंगे। चालान पढ़कर कई लोगों के कान खड़े हो गए। बिना आग के धुआं नहीं निकलता। धनंजय सीधा-सादा आदमी है, कहीं न कहीं जरूर फंस गया होगा। वह बूढ़ा मुख्य मन्त्री बड़ा घाघ है। बेचारे को अनजाने में किसी खंदक में उतार दिया। चालान में हमेशा ही अभियुक्त के खिलाफ सबसे काला चित्र रंगा जाता है, क्योंकि उसीपर तो सारे केस की दारोमदार रहती है। पर जनमत का एक बहुत बड़ा हिस्सा धनंजय और 'युगान्तर' के साथ सहानुभूति रखता था। धनंजय को इस शहर ने उसके कॉलेज-जीवन से देखा था। त्याग और तपस्या में तथा सचाई और राष्ट्रीयता में उसका सानी मिलना मुश्किल था। पुराने 'युगान्तर' का अंग्रेज़ों के साथ का संघर्ष उन्होंने देखा था। उसका जेल जाना, प्रेस को आग लगने का प्रसंग, और फिर सार्वजनिक ट्रस्ट को सर्वस्व दान। रुपये-पैसे के बारे में इतना खरा और निरिच्छ आदमी ऐसा काम कैसे कर सकता है? असम्भव है। चार-पांच महीनों से पत्र की नीति स्वतन्त्र हो गई थी, उसके कारण भी उसके पक्ष में कुछ अधिक सहानुभूति हो गई थी। यह दल मानता था कि यह शासकीय गुट के पैंतरेबाज़ों की चाल है। देखें, क्या गुल खिलता है? पर भीतर ही भीतर वे 'युगान्तर' और धनंजय के कल्याण की कामना करने लगे। उनको किसी तरह आंच न लगे। यही उनकी ईश्वर से प्रार्थना थी।

३१

धनंजय ने गीता से कहा, 'देखो, समय की कैसी बलिहारी है। इसके पहले अंग्रेज़ों के हाथ से देशभक्ति के लिए जेल गया था। अब अपने ही देशवासियों के हाथ से नैतिक अपराध के फौजदारी मामले में जेल भेजने की तैयारी हो रही है।'

'होने दो! पहले उसे भी हंसते हुए बर्दाश्त किया। इसे भी करेंगे। हमारी

आत्मा यदि शुद्ध है और हमें विश्वास है कि हमने कोई गलत काम नहीं किया है, तो भगवान हमें कभी नहीं बिसारेंगे।' गीता ने दृढ़ता से कहा।

'तुम्हें इससे चिन्ता तो नहीं होती, गीता रानी ?'

'रत्ती भर नहीं। चिन्ता क्यों होगी ? मुझे तो तुमपर अटूट और अखण्ड विश्वास है। और मैं यह भी मानती हूं कि जो होता है, अच्छे के लिए ही होता है। इस घटना से भी कुछ कल्याण होने वाला है, तभी तो यह ज़हर का घूंट पीना पड़ रहा है।'

'सो विश्वास तो मेरा भी है। असत्य और अधर्म पर टिकी हुई सत्ता राक्षसी होती है। वह विवेक-अविवेक का भेद नहीं करती, और अपने खिलाफ तनिक-सी भी चुनौती बर्दाश्त नहीं कर सकती है। पाशविक शक्ति पर उसका चरम विश्वास रहता है। कोई भी सिर उठाए तो उसे कुचल डालने का विचार उसके दिमाग में सबसे पहले आता है। पर सत् और असत् की लड़ाई तो दुनिया में हमेशा से चली आई है। सत् को बहुत कष्ट भोगना पड़ता है, अग्नि भक्षण करना होता है, रक्त का स्नान करना होता है, पर अन्त में चलकर सत् की ही विजय होती है। पर उसके पहले उसे इस स्थिति में से गुज़रना ही पड़ता है। दुःख इसी बात का है कि मेरे साथ तुम्हें भी कष्ट होगा…'

'ऐसी बात क्यों करते हो मेरे देव ? अग्नि की साक्षी में जब हम-तुम एक हो गए तो यह मेरे-तेरे का विभेद कैसा ? तुम्हारे सुख में मेरा सुख है, तुम्हारे दुख में मेरा दुख। मेरे कष्ट की तनिक भी चिन्ता मत करो। मुझे सिर्फ इतना बता दो कि इस मुकदमे में तुम्हें अधिक से अधिक कितनी सज़ा हो सकती है ? क्योंकि यह मानकर चलना चाहिए कि जो इतने नीचे उतर आए हैं वे कहीं भी रुकेंगे नहीं। पुलिस उनकी, अदालत उनकी। नीचे तो वे सज़ा ठोके बिना रहेंगे नहीं ऊपर चाहे भले ही छूट जाओ। तब तक धब्बा लगा रहेगा। यही क्या कम तसल्ली है ?'—गीता बोली।

'तीन साल। इसमें अधिक से अधिक तीन साल की जेल हो सकती है।' धनंजय ने कहा।

'बस ! इससे ज्यादा तो तुम पहले जेल में रह चुके हो। कोई बात नहीं है। तुम जेल में लिखना-पढ़ना, खूब अध्ययन करना, और मैं यहां बाहर अर्चना को अच्छी तरह संभाले रहूंगी। हम दोनों मां-बेटी को आखिर लगता ही कितना है ?

किसीके महज़ 'क्रिमिनल' कह देने से हम 'क्रिमिनल' थोड़े ही हो जाते हैं ? दुनिया के सामने सत्य नहीं छिप सकता। यदि हमारा दिल साफ है, और विवेक-बुद्धि शुद्ध है तो हमें चिन्ता नहीं कि हमारे आक्रामक क्या सोचते हैं ? सब लोग जान जाएंगे कि यह भारतीय स्वतन्त्रता की शुद्धता और पवित्रता की लड़ाई है, और पत्रकारिता की स्वतन्त्रता की लड़ाई है। महज़ उनके लांछन लगाने से क्या होता है ? सत्य के सूर्य पर धूल फेंकने से वह अपने आप ही पर उड़ती है। तुम मेरी रंचमात्र फिक्र मत करो। माता वसुन्धरा के लिए हम दो मां-बिटिया भारी नहीं हैं।'

धनंजय की आंखों में आंसू आ गए। यह कौन-सा जन्म-जन्मान्तर का पुण्य था कि ऐसी जीवन-संगिनी मिली जो कमजोरी का नहीं शक्ति का स्रोत है। और कोई स्त्री होती तो कहती कि मुख्य मन्त्री से क्यों उलझते हो ? वे पचास हज़ार दे रहे हैं। ले लो और कोई दूसरा काम-धन्धा देख लो।

पर यह गीता है, जो सीता-सावित्री की वंशजा है और दुबारा उनके साथ वनवास जाने के लिए तैयार है। दुबारा ही क्या जन्मभर भी उसे पति के साथ अरण्य में रहना पड़े तब भी वह उसका भूषण है, आनन्द है। धन्य है गीता, तुम धन्य हो। तुम्हारे रहते हुए मैं एक नहीं अनेक आततायियों का मुकाबला कर सकता हूं। तुम नारी नहीं, जगज्जननी की शक्तिस्वरूप हो। धनंजय का हृदय अभिमान से फूल उठा।

घण्टे भर बाद अर्चना स्कूल से आई। अर्चना, जो धनंजय और गीता की प्रीति का प्रतीक थी। अगस्त क्रान्ति में धनंजय जेल गया उसके महीने भर बाद अर्चना का जन्म हुआ था। उसीके सहारे गीता ने पति के वियोग के और 'युगान्तर' के संघर्ष के पहाड़-से दिन काटे थे। जब धनंजय घर लौटता तो बाहरी दुनिया के समस्त संघर्ष, अपमान, कटुताओं और चिन्ताओं को अर्चना के एक आलिंगन में भूल जाता। धनंजय ने उसे पहली बार जेल से छूटने के बाद देखा जब वह तीन-साढ़े तीन साल की हो गई थी। उसके पिता देश की सेवा में जेल में गए हैं इसका उसे बड़ा अभिमान था। स्कूल में १५ अगस्त का स्वतंत्रता-दिन मनाया जाता, राष्ट्रीय झण्डियां लगतीं, मिठाई बांटी जाती, खुशियां मनाई जातीं, तो गर्व से उसकी छाती फूल जाती कि इस दिन को लाने के लिए बाबूजी की भी थोड़ी-सी आहुति अर्पित हुई है। अम्मा ने तो यह बताया ही था, पर एक दिन स्वतंत्रता-दिवस के भाषण में जब स्वयं उसकी अध्यापिका ने इसका उल्लेख किया तब तो

उसके गर्व का कोई ठिकाना न रहा। स्कूल की अध्यापिका ने उसे एक हार दिया, वह घर लाकर अपने बाबूजी को पहना दिया और एक पेड़ा बचाकर लाई सो उसके तीन हिस्से करके अपने हाथ से बाबूजी और अम्मा के मुंह में डाले। अर्चना के कारण उनका घर घर नहीं नन्दन वन था।

सो आज जब अर्चना स्कूल से आई तो घर में घुसने के पहले ही पड़ोस की बच्ची ने उसे बताया कि दोपहर को तुम्हारे यहां पुलिस आई थी।

घर में कदम रखते ही उसने देखा कि बाबूजी और अम्मा गंभीर चेहरा बनाए हुए बैठे हैं। यह वक्त तो बाबूजी के दफ्तर में रहने का है। इस समय घर कैसे ?

अर्चना ने बस्ता पटक दिया और मां के गले से लिपटकर बोली :

'अम्मा, आज अपने घर पुलिस आई थी ?'

'हां, बिटिया।'

'क्यों ? अब तो अंग्रेज़ अपने देश से चले गए हैं न ? अब क्यों पुलिस बाबूजी को सताती है ?'

मां ने अपने भरे हुए कण्ठ को सम्भालकर कहा, 'पुलिस बाबूजी का क्या बिगाड़ेगी बेटी ? उस बार भी पुलिस उनका कुछ न बिगाड़ सकी। इस बार भी कुछ न कर सकेगी। उस बार भी उनकी जीत हुई थी, इस बार भी उन्हींकी जीत होगी। तेरे बाबूजी के पीछे तो भगवान की शक्ति है।'

अर्चना का चेहरा खिल उठा। वह उत्साह से बोली, 'मैं अभी कृष्ण भगवान से कह देती हूं कि बाबूजी की ही जीत कराना।'

और वह उठी, बस्ता और जूते ठिकाने से रखकर हाथ-पैर धोकर ठाकुर जी के सामने बैठ गई। कपूर और ऊदबत्ती जलाई, वह हाथ जोड़कर और आंख मूंदकर न जाने अपने कमल-दल जैसे पवित्र ओठों से क्या पुटपुटाती रही। माता-पिता अत्यन्त कौतुक से उसकी ओर देखते रहे। दो मिनट में ही वह उठकर आई और पिताजी के गले में दोनों हाथ डालकर बोली, 'बाबूजी, भगवान कहते हैं कि आपकी जीत होगी।'

धनंजय ने अर्चना को छाती से लगा लिया और उसका चेहरा अपने वक्ष में दबा लिया ताकि वह उसके आंसुओं को न देख सके।

अर्चना एकदम निश्चिन्त हो गई। अम्मा से बोली कि भूख लगी है। खाना खाकर कूदती-फांदती खेलने चली गई।

धनंजय ने मुस्कराते हुए कहा, 'लो गीता, भगवान का आशीर्वाद तो प्रारंभ में ही मिल गया।'

'बस, फिर क्या देखना है ? बजने दो, पांचजन्य शंख बजने दो, फिर एक बार कुरुक्षेत्र को धरती पर आने दो।' वह बोली।

'खेद यही है कि अपने आपस के लोगों से ही लड़ना पड़ रहा है।'

'अब यह खेद-विषाद छोड़ो। अपने-पराये का भेद छोड़ो। यह सब रण-विभीषिका बचाने के लिए ही तो कभी न जाने वाली मैं तुम्हारा अन्तिम पत्र लेकर गई थी। पर जब सत्ता-मोह के अंधत्व ने उस पत्र का सही-सही मूल्यांकन न होने दिया, और पहला तीर उधर से छूटा तो अब क्या देखना है। अब तो सिवा लड़ने के, अन्त तक लड़ने के, और आवश्यकता पड़े तो लड़ते-लड़ते मर जाने के और कोई चारा नहीं है।'

'तुम ठीक कहती हो गीता। आज के इस पुलिस-काण्ड के बाद तो कुछ सोचने-विचारने को रह ही नहीं जाता है। अब तो दो हाथ देना और दो हाथ लेना यही बचा है। होने दो, एक बार फिर महाभारत मच जाने दो। मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं कि अब मेरा हाथ एक बार भी नहीं कांपेगा।'

दोनों उठे, और ठाकुर जी की मूर्ति के पास गए। अर्चना का प्रज्वलित किया हुआ धूप-दीप अब भी जल रहा था। दोनों हाथ जोड़कर बोले, 'हे चक्रपाणि योगेश्वर! हमारी लाज रखना, अब सर्वतः तुम्हारे ही हाथ में हैं।'

३२

इन जप्ती और गिरफ्तारियों से 'युगान्तर' प्रेस के कर्मचारी घबड़ा गए। अखबारों के समाचार पढ़कर सब लोग पूछते कि यह क्या हो गया, आगे क्या होगा ? उन बेचारों को अपने भविष्य की चिन्ता होने लगी। मुख्य मन्त्री और उसके समूचे शासन से पाला पड़ा है, सारी हुकूमत की ताकत उनके साथ है, पुलिस है, धनिक वर्ग है, सरकारी वकील हैं, सरकार का खजाना है। और यहां तो कुछ भी नहीं है। कैसे नैया पार लगे ? कहीं संस्था बैठ तो नहीं जाएगी ? फिर उन सौ

परिवारों का क्या होगा जो उसके कारण अपना चरितार्थ चला रहे हैं ?

धनंजय को वास्तव में उन्हींकी चिन्ता थी। एक आदमी ही ऐसा निकला कि जिसने रमज़ान खां के प्रलोभन में आकर रजिस्टरों की चोरी करा दी। पर जब उसने देखा कि बात इतनी बढ़ गई कि उसके 'मालिक' की गिरफ्तारी तक हो गई तो उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। कर तो कुछ सकता नहीं था क्योंकि नई जगह नौकरी कर ली थी। पर जिस दिन उसने गिरफ्तारी का समाचार पढ़ा उसी रात एकाउंटेन्ट के घर जाकर उन रजिस्टर के नाम और उसमें दर्ज किए हुए हिसाब का मुख्य-मुख्य ब्यौरा बता दिया। बोला, 'धनंजय बाबू को तो अब मैं मुंह नहीं दिखा सकता। तुम्हीं मेरी ओर से मेरे लिए मुआफी मांग लेना। मैंने कभी नहीं सोचा था कि उनके जैसे देव पुरुष पर ही यह फन्दा लगाया जाने वाला है।'

एकाउन्टेन्ट तो यों भी उस चोरी से चिन्तित नहीं था। क्योंकि उन रजिस्टरों में ही क्या, कहीं भी ऐसी कोई बात नहीं थी कि जिसके लिए लज्जित होना पड़े या खोट सहनी पड़े। सब मामला साफ था। यदि ग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिए आंकड़े बढ़ाए गए थे तो वे आमद और खर्च दोनों ओर बराबरी से बढ़ाए गए थे। यह भी मैनेजर ने जोशी जी की सलाह से ही किया था क्योंकि वे पत्र के भागीदार थे, पत्रकारिता में उनका भी कुछ अनुभव था। अधिक विज्ञापन प्राप्त करने का, यह आसान तरीका था। कई प्रकार के समाचारपत्र यह साधारण तौर पर करते हैं। सवाई-डयोढ़ी बिक्री तो हर कोई बताने की कोशिश करता है। जो किया वह न किया जाता तो उचित था। पर जो हुआ उसमें बेईमानी की कोई बात नहीं थी और हेतु में कोई दोष नहीं था। हेतु था तो यही कि ज्यादा बिज़िनेस बढ़े और भागीदारों को अधिक फायदा मिले तथा कम्पनी का हित हो। व्यक्तिगत हित की तो कोई बात नहीं थी।

बहुत साधारण-सी बात थी। अपने माल के गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बताने जैसा मामला था। पर मुख्य मन्त्री से मतभेद हुआ तो उसीका फायदा उठाकर मुकदमा दायर कर दिया गया। य आंकड़े किसीको न समझाए जाएं तो गलतफहमी होना स्वाभाविक है। ज़रूर पैसे खाए गए होंगे इसलिए हिसाब-किताब के आंकड़े में हेर-फेर किया गया। और चूंकि संस्था के संचालन की ज़िम्मेदारी धनंजय की थी, उसके चरित्र पर ही सबसे अधिक लांछन लगता। असल में शासकीय दल का सारा घटाटोप यही था कि किसी न किसी तरह धनंजय पर कलंक लगे। तभी छाती

ठंडी होगी। उन्हें 'युगान्तर' से कोई सरोकार नहीं। वे चाहते तो 'युगान्तर' जैसे दस दैनिक निकाल सकते थे। रुपये-पैसों की कमी नहीं थी। बस, आग लगी थी वह इसी बात की कि हमारे भ्रष्टाचार पर उंगली उठाने वाला यह होता कौन है? इसकी इतनी हिम्मत और जुर्रत! एक बार इसपर कलंक का धब्बा लगा दिया कि ब्रह्मानन्द प्राप्त हो जाएगा। रणदमन सिंह, रमजान खां और उसकी तमाम पुलिस-सेना इसी काम में ज़मीन-आसमान के कुलावे एक कर रही थी।

धनंजय का एकाउन्टेन्ट बड़ा होशियार कर्मचारी था। ईमानदार था, बहुत बुद्धिमान भी था और हिसाब-रोकड़ की बारीकियों को अच्छी तरह समझता था। उसने हिसाब इतनी स्पष्टता और दक्षता से रखा था कि किसीको मीन-मेख निकालने की गुंजाइश नहीं थी। वह व्यक्तिगत रूप से धनंजय का आदर करता था, और उसके प्रति बड़ा वफादार था। उसने कई बार धनंजय को आश्वासन दिया था कि आप हिसाबों के बारे में एक क्षण की भी चिन्ता न करें। कोई दोष निकाल दे तो मैं हाथ कटा दूं। धनंजय आश्वत हो गया। मुकदमों के फौजदारी पहलू में कोई दम नहीं। अब केवल कानूनी और राजनीतिक पहलू बचा था। सो उसने भी तय कर लिया था कि अब ठन गई है तो ठन कर ही रहेगी। लड़ाकुओं का रक्त था। एक बार हाथ उठा तो फिर सीधा पड़ता था, एक घाव दो टुकड़े। जो होना होगा सो होगा। देखी जाएगी।

पर 'युगान्तर' प्रेस के कर्मचारियों को भला यह सब पृष्ठभूमि कैसे मालूम हो? वे चिन्तित हो उठे। घबड़ाकर उसके पास दौड़े आए, 'महाराज, अब क्या होगा?'

उसने कहा, 'तुम सब लोग इकट्ठे होकर आ जाओ तो बताऊं।'

सब विभागों के कर्मचारी आ गए। करीब-करीब अस्सी आदमी थे। रात-पाली के लोग भी समाचार सुनकर घबड़ाए हुए आए थे। उनसे धनंजय ने कहा, 'यह हमारी कठिन परीक्षा का समय है। इस संस्था पर ऐसा भयंकर वार पहले कभी नहीं पड़ा था। यह तो हमारी संस्था के अस्तित्व पर ही सीधा और करारा हमला है, और हमारे चरित्र पर लांछन है।

'इस संस्था की मैंने गत कुछ वर्षों से सेवा की है, उसको पालने-पोसने में अपना रक्त दिया है, ठीक उसी तरह जैसे मां अपने शिशु का पालन करती है। मां आखरी दम तक अपने शिशु को मरने नहीं देती। मैं भी इस बात पर दृढ़ प्रतिज्ञ हूं कि संस्था

को मरने नहीं दूंगा। वह मेरे लिए अपनी मृत्यु से बढ़कर है।

'पर इसका संरक्षण अकेले मेरे हाथ में नहीं है। सबसे पहले तो वह भगवान के हाथ में है, और बाद में आपके हाथ में, जिनका रक्त-पसीना इस संस्था को बनाने में लगा है।

'यदि हमारा पक्ष न्याय, सत्य और धर्म का पक्ष है तो भगवान हमारी सहायता किए बगैर नहीं रहेंगे। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ सकता। मेरी यह श्रद्धा अटल है। चन्द्र टल जाए या सूरज टल जाए, पर मेरी यह श्रद्धा विचलित नहीं हो सकती।

'इस लड़ाई को टालने की मैंने कितनी कोशिश की और मैं कितना झुका इसकी कहानी शीघ्र ही आप लोगों को मालूम हो जाएगी। पर मैं इतना ही कह सकता हूं कि यह लड़ाई हमारे किए की नहीं है, हमपर लादी गई है।

'पर इस संस्था को जीवित बचाए रखने में सबसे बड़ा हाथ आपका होगा। आपने अपना कर्तव्य बिना किसी डर या घबड़ाहट के पालन किया तो संस्था के संरक्षण में तथा हमारी विजय में कोई सन्देह नहीं।

'अपना यह 'युगान्तर' जनता का पत्र है, उसके सुख-दुख का प्रहरी है। हमारा अन्नदाता 'युगान्तर' है और 'युगान्तर' की अन्नदात्री जनता है। हम अपने अन्नदाता से, जो हमारा पालन-पोषण करता है, कभी बेईमान न हों, उसकी निष्ठा और वफादारी से सेवा करते रहें, तो वह हमें कभी भूखों मरने नहीं देगा। हमारे अन्नदाता का प्रतीक वह सर्वसाधारण जन है जो रोज़ इकन्नी खर्च करके हमारा दैनिक पत्र लेता है। वही हमारा पंच परमेश्वर है जिसकी हमें निस्सीम भाव से सेवा करनी है।

'उसका राजनीति से या और दूसरे लड़ाई-झगड़ों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो एक ऐसा अखबार चाहता है जो स्वतंत्र हो, निर्भीक हो, सत्य, न्याय और धर्म का पक्ष लेकर चले। जो हमेशा जनता के कल्याण और मांगल्य के लिए, सुख-समृद्धि के लिए, जागृति और सेवा के लिए ही जीता है, जो किसी दल-विशेष का, व्यक्ति-विशेष का समर्थक नहीं है, और जिसके दरवाज़े सबके लिए खुले हों, जिस किसीपर सार्वजनिक अन्याय या दुख-दर्द छाया हो, 'युगान्तर' उसका मित्र और सेवक है। अन्याय और अत्याचार का वह शत्रु है। व्यक्तियों से उसकी दोस्ती या बैर नहीं है, सिद्धान्तों और सार्वजनिक कार्य की रीति से ही है। आज उसकी शासन

से लड़ाई है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शासन की हर चीज़ को कोसता ही रहेगा। नहीं, इस लड़ाई का पत्र की नीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। पत्र तो अब भी शासन के शुभ और विधायक कार्यों का समर्थक रहेगा, अमंगल और अन्याय के कार्यों का कठोर आलोचक रहेगा। हमारे व्यक्तिगत या संस्थात्मक संघर्ष के कारण पत्र की नीति में तनिक भी कटुता नहीं आने पाएगी।

'प्रजातन्त्र में पत्रकारिता का स्थान सर्वोपरि है। सफल प्रजातन्त्र के लिए निर्भीक और निस्स्वार्थ पत्रकारिता अत्यन्त आवश्यक है। जब सत्ताधारी दल के लोग पथभ्रष्ट हो जाते हैं, कर्तव्य-विमुख हो जाते हैं, और प्रजा के त्रास और पीड़ा के निमित्त बन जाते हैं तो अत्यन्त स्पष्ट और निर्भीक शब्दों में उनकी भर्त्सना कर उन्हें सन्मार्ग पर लाने की कोशिश करना यह समाचारपत्र का कर्तव्य है। समाज में सत्प्रवृत्तियों का प्रचार करने में जो भी व्यक्ति या संस्था कार्य करती है, फिर वह शासन ही क्यों न हो, उसका समर्थन करना, उसकी ताकत बढ़ाना हमरा धर्म है। हमें बिना किसी राग-द्वेष के अपना कर्तव्य-कर्म करते जाना चाहिए, और यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि प्रजातन्त्र में जनता की प्रभुसत्ता ही सार्वभौम है, और जनता की आवाज परमेश्वर की वाणी है। उसकी हम निष्ठापूर्वक सेवा करते रहें तो हमारी विजय निश्चित है।

'मुकदमों के इन सत्रों के कारण संभव है कि मुझे उनकी तरफ अधिक ध्यान देना होगा। पर आप लोग, युगान्तर प्रेस और कार्यालय के कर्मचारीगण मेरी सेना हैं। आप यदि अपना काम यन्त्रवत् करते रहें, और उन आदर्शों के प्रति विमुख न हों जो कि हमारी संस्था की नीति का निर्धारण करते हैं, तो मुझे भविष्य के बारे में तनिक-सी भी चिन्ता नहीं है।

'अदालतों में कुछ भी होता रहे, पर हमारा दैनिक पत्र नियमपूर्वक समय से निकलता रहे, उसका प्रकाशन और उत्पादन व्यवस्थित ढंग से हो, उसके स्टैंडर्ड में किसी प्रकार की कमी न आए, हमारे ग्राहकों, विज्ञापनदाताओं और आश्रय-दाताओं की हम ईमानदारी से चोख सेवा बजाएं, तो इस संस्था को नष्ट करने वाला कोई नहीं है।

'प्रजातन्त्र में पत्रकारिता को मन्दिर की तरह शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। स्वार्थ या अर्थ-साधन के लिए उसका उपयोग उसकी पवित्रता और मांगल्य को नष्ट करना है। विचारों की शुद्धता, न्याय-निष्ठुरता और सत्यधर्म का प्रचार ये

उसकी पूजा के साधन हैं। हम पत्रकार-जगत के निष्ठावान सेवक, शब्द-शक्ति के उपासक हैं, शब्द को ब्रह्म मानते हैं, और उसीके द्वारा जनता-जनार्दन की सेवा करते हैं। ऐसे सेवकों का अमरपद अक्षय है, अक्षुण्ण है, सुरक्षित है। इसलिए मुझे अपनी विजय में किंचिन्मात्र सन्देह नहीं है—बशर्ते कि मेरी सेना मेरा साथ दे, मेरे साथी मेरे साथ खड़े रहें।'

सभी कर्मचारियों ने उठकर उत्साह के साथ आश्वासन दिया कि हम अन्त तक संस्था का और आपका साथ देंगे। आप कोर्ट-कचहरी में लड़ते रहिए, जो चाहे कीजिए, पत्र के प्रकाशन में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ेगा!

धनंजय ने नम्रतापूर्वक हंसकर सबको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। सब कर्मचारी उत्साह के साथ चिल्ला उठे—युगान्तर की जय! धनंजय बाबू की जय!!

घर जाकर उसने गीता से कहा, 'अपना भीतर का किला तो मज़बूत हो गया है; अब हमें केवल अपने शत्रु की तरफ ही देखना है···'

पर अभी एक अंग उसका कमज़ोर था। प्रत्यक्ष किले से तो उसका उतना सम्बन्ध नहीं था, जितना उसकी बाहरी शोभा से था। वह उसी तरह था जैसे कि बाहर मिट्टी के या संगमरमर के शोभा के हाथी रहते हों। वे न खाते हैं, न काम करते हैं, सिर्फ महल की शोभा बढ़ाते हैं। पर उनका स्वरूप सुन्दर, सुशोभित और अखण्डित बना रहना भी उतना ही ज़रूरी होता है।

वह कमज़ोर अंग था—धनशेट्टिवार—युगान्तर कंपनी का चेयरमैन। और उसीकी तरफ अब धनंजय का ध्यान गया।

३३

धनशेट्टिवार चार-पांच साल से युगान्तर कंपनी का चेयरमैन था। भीतर से वह समाजवादी पार्टी का सदस्य था, पर चूंकि युगान्तर शासकीय दल का समर्थक था, वह अपने मतों का आग्रह नहीं रखता था, और न उन्हें लादने की कोशिश ही करता था। यों पत्र की नीति सर्वथा संपादक के अर्थात् धनंजय के हाथ में थी। डायरेक्टरों के कुछ भी मत-मतान्तर हों, उनका इस नीति-निर्धारण

ग्रौर संचालन से कोई सम्बन्ध नहीं। वे केवल उसका ग्राथिक बाजू ही देखा करते थे ग्रौर चूंकि ग्राथिक मामले में धनंजय बड़ा चोख था, कंपनी का कार्य बड़े सुचारु रूप से चलता था। धनशेट्टिवार को 'युगान्तर' की चेयरमैनी काफी फली थी। सबसे प्रभावशाली समाचारपत्र का चेयरमैन होने के कारण उसे बिजली के, रबर के माल के तथा ग्रन्य धन्धों के काफी सरकारी कामकाज मिलते थे। कमाई ग्रच्छी थी, समाज में प्रतिष्ठा थी, ग्रपने क्लब, सिनेमा, होटल, मित्र-परिवार में बड़ी साख थी। सब तरफ से चांदी ही चांदी थी।

जब धनंजय का जोशी जी से मतभेद हुग्रा तो वह मन ही मन खुश हुग्रा कि यह ग्रच्छा मौका है जब पत्र की नीति समाजवादी पक्ष के ग्रधिक ग्रनुकूल बन सकेगी। उस संघर्ष में उसने काफी दिलचस्पी ली।

पर जब एक फौजदारी मामले में उसकी गिरफ्तारी हो गई तो वह सन्न रह गया। ग्राई० सी० एस० की परम्परा में पला हुग्रा ग्रादमी—इस तरह की गिरफ्तारी से तो उसकी होटल-क्लब की सामाजिक दुनिया ही तितर-बितर हो गई! चूंकि उसकी कंपनी का मुख्य मन्त्री से झगड़ा हो गया था, सभी सरकारी ग्रधिकारी ग्रब उसे टालने लगे। ग्राखिरकार वही उसकी ग्रसली दुनिया थी, क्योंकि यद्यपि वह नौकरी से ग्रवकाश-प्राप्त कर चुका था, उसी दुनिया में रमा हुग्रा था ग्रौर उसीके बीच मंडराया करता था।

ग्रब जब यह दुनिया ही खत्म होने पर ग्राई तो वह भीतर ही भीतर घबड़ा गया, हालांकि ऊपर से बताने को बड़ी बहादुरी छांटा करता कि मैं क्या परवाह करता हूं? जंगल में ग्रकेला ग्रादमी ग्रपना डर भगाने के लिए जिस तरह सीटी बजाया करता है उसी तरह उसकी बक-झक थी पर भीतर से तो उसकी पतलून ढीली हो गई थी। उससे भी ज्यादा ग्रसर उसकी पत्नी पर पड़ा जो ग्रब भी लिपस्टिक, पुरुषों की तरह कटे बाल, शॉपिंग ग्रौर खानसामा-बावर्ची की दुनिया में रहती थी। वह ग्रपने पति से बोली, 'यह क्या हो गया? तुम इसमें कैसे फंस गए? यह तो बड़ी मुसीबत हुई।'

धनशेट्टिवार ने ग्रपने घबड़ाए हुए चेहरे से यही बात जब धनंजय से कही तो वह तुरन्त समझ गया कि यह ग्रादमी शेर का चमड़ा ग्रोढ़े बहादुरी छांटता था, पर जब ग्रसली शेर की वीरता दिखाने का मौका ग्राया तब लटपटा गया।

धनशेट्टिवार को लगा कि धनंजय या उसके कर्मचारियों ने कहीं न कहीं हिसाब

में ज़रूर गड़बड़ की होगी तभी यह नौबत आई। शक्की आदमी था, इसलिए सोचता था कि लाखों रुपयों का लेन-देन हुआ है, कभी थोड़ा-बहुत मोह हो भी गया होगा। उसने भी कुछ कम्पनियां खोली थीं, और संचालक गण कानून की गिरफ्त से बचकर किस तरह पैसा बनाते हैं यह वह जानता था। धनंजय ने भी स्वाभाविकतः ऐसा ही किया होगा, ऐसा भीतर ही भीतर उसे संदेह था, पर ज़ाहिर नहीं कर पाता था।

उसका सचमुच रोज़मर्रा के हिसाब-किताब से कोई सम्बन्ध नहीं था, और उसको इस केस में फंसाना निहायत ज़्यादती थी, यह धनंजय जानता था। रण-दमन सिंह का सारा व्यापार ज़ुल्म-ज़्यादती पर ही तो चलता है, फिर मौका आने पर वह अपनी पुरानी दुश्मनी चुकाने का लुत्फ क्यों छोड़े ?

धनशेट्टिवार ने धनंजय को फोन किया कि भई, ज़रा फ़ुर्सत हो तो आ जाओ। सारी परिस्थिति पर विचार कर लें। उसकी आवाज़ में डर का कंपन था।

धनंजय समझ गया कि यही कच्ची गोटी है, इसे ज़रा सम्हालना होगा। इस जानलेवा लड़ाई में एक भी कड़ी कमज़ोर रही तो सर्वनाश निश्चित है।

वह जब धनशेट्टिवार के बंगले पर पहुंचा तो देखा कि वहां मुर्दनी छाई हुई है। वह और उसकी पत्नी बरामदे में बैठे थे, हाथ पर हाथ धरे, हताश होकर। ऐसे लगता था कि जैसे घर में कोई मर गया हो। हां, जिस विश्व में वे विचरण करते थे उसकी इज्ज़त और प्रतिष्ठा तो सचमुच मरने पर आ गई थी, फिर उन्हें शोक न हो तो किसे हो ?

'क्यों भई, हिसाब-किताब की क्या गड़बड़ है ? अब इस परिस्थिति में क्या किया जाए ?' धनशेट्टिवार ने पूछा।

'धेले की भी गड़बड़ नहीं है, इसका मुझे पूरा विश्वास है। मैं अपने आदमियों को जानता हूं। पर अब उन्होंने राजनीतिक कारणों से हमें फांसा है तो उसमें झूठा-सच्चा कौन देखता है? ज़बर्दस्ती का ठेंगा जो है ! वही भेड़िये का किस्सा हुआ कि तूने गाली नहीं दी तो तेरे बाप ने दी होगी, इसलिए मैं तो तुझे खाऊंगा। जो खा डालने पर उतारू है वह न्याय-अन्याय की बात थोड़े ही सोचता है ?'

'फिर ? अब क्या होगा ?'

'क्या, क्या होगा ? हमें लड़ना होगा, और डटकर लड़ना होगा !'

'पर हमारे पास साधन ही क्या है ? उनके पास तो तमाम सत्ता है, पुलिस

है, सरकारी वकील हैं, सरकारी पैसा है। यह तो एक राक्षस और बौने की लड़ाई है, इसमें हम क्या टिकेंगे ?'

'क्यों नहीं टिकेंगे ? उनका पक्ष अधर्म का पक्ष है, असत्य का पक्ष है, अन्याय का पक्ष है, वे हर्गिज़ नहीं जीत सकते।' धनंजय ने दृढ़ता से कहा।

धनशेट्टिवार प्रत्यक्ष व्यावहारिक जगत का आदमी था, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को या आदर्शों की भाषा उसकी समझ में नहीं आती थी। बोला, 'धर्म-अधर्म को कौन पूछता है धनंजय बाबू ? यह तो ताकत और रिसोर्सेज़ (साधनों) का सवाल है। उसमें तो उनका-हमारा कोई मुकाबला नहीं।'

धनंजय समझ गया कि उन दोनों के विश्व में दो ध्रुवों का अंतर है। असमानों का साथ या असंगों का संग करने में यही अड़चन होती है। जोशी जी के साथ यही हुआ, और इधर धनशेट्टिवार के साथ भी यही हो रहा है। अभी तो लड़ाई की पहली सलामी हुई है, और यह पहले ही से हाथ-पांव ढीले कर रहा है।

पर वह जानता था, कि एक चेयरमैन के नाते कानूनी दृष्टि से वह बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक सहअभियुक्त के नाते उसने कमज़ोरी में या घबराकर कोई उल्टा-सीधा बयान दे दिया तो नाहक निर्दोषों को फांसी लग जाएगी और जीतने वाली बाज़ी हारी जाएगी। इसको मज़बूत करना पहला काम है।

'उन्होंने आपको नाहक इसमें फंसाया, यह मैं मानता हूं—आपका तो दैनिक हिसाब-किताब से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसके लिए तो दफ्तर ज़िम्मेदार है—मैं ज़िम्मेदार हूं।' धनंजय बोला।

धनशेट्टिवार को यह सुनकर तसल्ली हुई, कुछ ढाढ़स बंधा। उसको तो यही डर लग रहा था कि अब जो लोग फंसे हैं वे अपनी निर्दोषिता साबित करने के लिए एक दूसरे पर ज़िम्मेदारी डालने की कोशिश करेंगे। यदि धनंजय ने अदालत में कह दिया कि सब चेयरमैन के हुक्म से हुआ है तो मैं तो बिना मौत के मरा !

यही एक डर था जो उसे धनंजय के साथ बांधे हुए था, वरना वह तो कब का कूद-फांदकर अलग हो गया होता।

'हां-हां, आप ठीक कह रहे हैं,' धनशेट्टिवार बोला। 'आप तो जानते हैं कि मैं तो सिवा बोर्ड की मीटिंग के और कभी आपके कामों में ध्यान ही नहीं देता था ?

सोचता था कि आप लोग ज़िम्मेदार व्यक्ति हैं, कामकाज संभाल रहे हैं, मैं क्यों बीच में पड़ूं? पर यहां बिना मतलब के फंसा दिया गया।'

'देखिए मिस्टर धनशेट्टिवार, आपका इसमें कोई दोष नहीं है, यह मैं मानता हूं और इसका खुले आम इज़हार भी कर सकता हूं। यदि दोष कोई है ही तो वह मेरा है, हालांकि मैं जानता हूं कि मेरा भी कोई दोष नहीं है। युगान्तर कम्पनी में ऐसी कोई बात नहीं हुई है, जिसकी सफाई नहीं दी जा सकती हो या जिसके लिए नीचा देखना पड़े। यह बिलकुल तय है। पर आपको अभियुक्त बनाना तो मेरे हाथ में नहीं था, वह तो उनकी चाल है। इसके लिए भला मैं क्या कर सकता हूं? फिर आपकी पोज़ीशन साफ करने के लिए आप जो कहें वह करने के लिए तैयार हूं।'

धनशेट्टिवार इस बात से बहुत आश्वस्त हुआ। उसकी तथा उसकी पत्नी के चेहरे की मायूसी कुछ कम हुई और ज़रा-सी मुस्कराहट खिल उठी। शिष्टाचार के खातिर बोला :

'अमुक करो या तमुक करो, यह मैं नहीं कहता। आप जो ठीक समझें वह करें। पर यह लड़ाई है बड़ी 'सीरियस' और हमें बहुत सोच-समझकर ही कदम उठाना चाहिए।' वह बोला।

'यह भी भला कोई बताने की ज़रूरत है? आपका तो इसमें बहुत ही सीमित हित अटका हुआ है। जिस वक्त मैं कह दूंगा कि दोष सर्वथा मेरा है, आपका नहीं है, उसी क्षण आपका चरित्र तो निष्कलंक हो ही जाता है, मुकदमा भले ही चलता रहे। पर मेरा तो यहां सारा जीवन और चरित्र ही दांव पर लगा है। एक भी कदम उलटा पड़ा कि मेरा तो सारा खेल खतम हो जाएगा और 'युगान्तर' बैठ जाएगा। सौ परिवारों की रोजी नष्ट हो जाएगी और उसके लिए मैंने जो रक्त दिया है वह अकारथ जाएगा। और फिर एक निर्भीक स्वतन्त्र पत्र के मर जाने से सार्वजनिक जीवन का जो नुकसान होगा वह तो अलग है ही। इसलिए इसे मैं भला 'सीरियस' क्यों न मानूंगा? यह तो जीवन-मरण की लड़ाई है, यह मैं जानता हूं और यह भी जानता हूं कि किन भयंकर दुश्मनों से पाला पड़ा है।' धनंजय ने आवेश में कहा।

'यही मेरा कहना है,' धनशेट्टिवार ने कहा, 'उनका सारा रोष अखबार ही पर है। उसे ही यदि जब तक केस खतम नहीं होता तब तक के लिए बन्द कर दिया

जाए, तो क्या हर्ज है ? संस्था का सारा खर्च घट जाएगा और जो बचेगा उससे मुकदमा मज़े में लड़ा जा सकेगा…'

धनशेट्टिवार ने यह प्रस्ताव इसलिए किया कि धनंजय डरा-धमकाकर दबने वाला आदमी नहीं है। शासन के आक्रमण का जवाब, ईंट का जवाब पत्थर से देगा। उसकी लेखनी में लोहा है, और अब तो वह आग बरसाएगा। इस आग में घी डालने का काम होगा, और उसमें जो दावानल भड़केगा उसमें मैं भला टिक सकूंगा ? मैं, मेरे उद्योग-धन्धे, जिनमें पचास बार सरकार से काम पड़ता है, मेरा शराब का परमिट, मेरी सारे सुख और आराम की दुनिया ! !

धनंजय और धनशेट्टिवार के विचारों में ज़मीन-आसमान का अंतर था। और फिर यह तीन पैरों की लंगड़ी दौड़ ! यह कंपनी क्या हुई जी का जंजाल हो गई। इस आंवले की मोट को बांधे-बांधे वह कहां तक फिरता रहेगा ? अब तक वह अपने आपपर बहुत नियंत्रण कर रहा था, पर अखबार बन्द करने की बात सुनते ही वह भड़क उठा, 'अखबार क्यों बन्द किया जाए ? वह क्या मेरी या आपके बाप-दादा की जायदाद है ? या मुख्य मंत्री की ? वह तो जनता का पत्र है, जनता के साथ द्रोह करे तभी वह बन्द हो सकता है। आपके हाथ-पांव ढीले पड़ गए हों, मेरे तो नहीं पड़े हैं। मेरे और मेरे सहयोगी कर्मचारियों का इसमें खून लगा है। वे सब कहां जाएंगे ? आपको क्या लगता है कहने को कि अखबार बन्द कर दिया जाए ! हमारे दुश्मन भी तो यही चाहते हैं ?'

'नहीं-नहीं, मैंने उस मतलब से नहीं कहा, केवल लड़ाई की सुविधा की दृष्टि से कहा।' धनशेट्टिवार ने नरमाकर सफाई पेश की।

'लड़ाई की सुविधा के लिए ही अखबार का चलना निहायत ज़रूरी है और वह चलेगा। वह तो मेरे लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अर्जुन के लिए गाण्डीव धनुष। मैं जेल में चला जाऊं तब भी वह चलेगा—मेरे साथी उसे चलाएंगे। अखबार यदि बन्द कर दें तो हमारे दुश्मन तो हमें नोच-नोचकर खा डालेंगे, जनता के कानों तक खबर तक नहीं पहुंचेगी। जब हमारे और शासन के बीच युद्धपर्व चल रहा है तो उसका इन्साफ तो जनता ही करेगी न ? आखिर जनता शासन की भी मालिक है और हमारी भी।'

'पर अपने खिलाफ सरकारी चालान से जो वातावरण बिगड़ गया है वह कैसे सुधरे ?'

'वह सब मैं सुधार लूंगा, बशर्ते कि आप घुटने न टेक दें और मैं जो करता हूं, उसमें दस्तंदाज़ी न करें।'

'वह मैं नहीं करूंगा, पर मुझे व्यक्तिगत रूप से मेरी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए जो-जो करना पड़े उसमें आप भी मत पड़िएगा।'

'उसे मैं भला कैसे रोक सकता हूं? आपको जिस तरह अभियुक्त बनने से नहीं बचा सका उसी तरह आपके अभियोग को धोने के लिए आप जो करना चाहें उससे मैं आपको मना भी नहीं कर सकता, बशर्ते कि उससे हम सबके कॉमन डिफेन्स (बचाव) में फर्क न पड़े।'

'नहीं, उसमें फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि 'डिफेन्स' की बुनियाद तो आपके स्टैण्ड पर ही रहेगी।' धनशेट्टिवार ने आश्वासन दिया।

'तो ठीक है, मैं अब चलता हूं। आप चिन्ता मत कीजिए मिसेज़ धनशेट्टिवार।' धनंजय ने उठते हुए कहा, 'तीन दिन के भीतर ही हमारे खिलाफ का सारा वातावरण बदल जाएगा। मैं खुद चाहता हूं कि आपके पति इस बला से सबसे पहले छूटें!'

मिसेज़ धनशेट्टिवार अपने काजल लगे नेत्रों को विस्फारित कर उसकी ओर देखने लगीं, मानो पूछ रही थीं कि यह सब कैसे होगा? अब उनके चेहरे पर मायूसी नहीं थी, कुछ उत्साह ही आ गया था। धनंजय की कार्यशक्ति के बारे में अपने पति से उसने जो सुन रखा था उससे उसे विश्वास तो हुआ कि वह जो कहता है सो करेगा। पर कैसा करेगा इसका कुतूहल बना रहा।

पर अब दोनों पति-पत्नी आश्वस्त थे, और उनकी हिम्मत लौट आई थी। धनंजय के जाते ही मिसेज़ धनशेट्टिवार ने अपनी सहेली मिसेज़ आर्डेशर को फोन किया कि 'आओ डियर। अपने हज़बैण्ड को लेकर आ जाओ। आज यहीं ब्रिज पार्टी उड़े।'

३४

धनंजय सीधा घर गया और बोला, 'गीता, वह धनशेट्टिवार अच्छा डरपोक निकला। वह तो सारे हथियार डालकर बैठा था। पर उसे अब थोड़ा गरम करके आया हूं इसलिए लगता है घोड़ा कुछ दूर तक अब चलेगा। जब तक इस केस के कारण उत्पन्न वातावरण नहीं बदलता तब तक शायद वह घर से नहीं निकलेगा।'

'वातावरण बदलने के लिए अब तुम क्या करोगे ?'

'एक स्टेटमेंट लिखूंगा, जिसमें मुझे 'युगान्तर' कम्पनी की स्थापना, प्रगति और संघर्ष का पूरा इतिहास देना होगा और जोशी जी के बारे में वे सब तथ्य देने पड़ेंगे जिन्हें मैं टालना चाहता हूं। उसीके लिए मैंने तुम्हें शान्ति-दूत बनाकर भेजा था। पर उन्होंने तुम्हारा जाना मेरी कमज़ोरी समझा और अपमानास्पद शर्तें पेश कीं जो मैं कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता था। उसका जवाब मेरी गिरफ्तारी से दिया। अब जब उन्होंने मुझे अपराधियों और खयानतदारों की श्रेणी में बिठालने का प्रयत्न कर ही डाला है, और पहला गोला भी चला दिया है, तो अब मुझे पूरा-पूरा सत्य उघाड़कर ही रखना होगा कि कौन अपराधी और कौन खयानतदार है। अगर मैं हूं तो, चूंकि वे मेरे पार्टनर हैं, वे कैसे इस इलज़ाम से बच सकते हैं ?'

'हां, अब तो तुम्हें दूसरा कोई चारा भी नहीं है। उन्होंने तो तुम्हारे लिए एक चीज़ भी नहीं रख छोड़ी और सारे दरवाज़े बन्द कर दिए। अब तुम जो करना चाहो, उसे कौन रोक सकता है ?'

धनंजय भोलानाथ के यहां गया और धनशेट्टिवार के यहां जो किस्सा हुआ था, वह जाकर कह सुनाया।

'तुम भी अजीब आदमी हो धनंजय। कैसे-कैसे चुगद लोगों का तुमने साथ किया ? न जोशी जी तुम्हारी वृत्ति के आदमी हैं न यह धनशेट्टिवार ! असमानों की दोस्ती कभी सुखदायी नहीं होती।'

'सो तो ठीक कहते हो भोला। पर अब गलती तो हो गई। यह कंपनी का कारोबार कुछ अजीब होता है जिसमें दस जनों की लकड़ी ढोनी पड़ती है। मेरा पुराना 'युगान्तर' बना रहता तो मैं खूब मज़े में रहता। न उधो का लेना न माधो

का देना। अपनी झोपड़ी में बादशाह बना रहता। पर फिज़ूल आदर्शों की मरीचिका में यह कर गया, सो अब भुगतना तो होगा ही।'

'तुम्हारे और इनके आदर्शों में कोई समानता भी है ? जोशी जी आदर्शों का नाम लेकर चले तो सत्ता के लोभ और मोह में अपने आदर्शों को ही भूल गए हैं; उन साथी-संगियों को भी, जिनकी साधना और तपस्या से वे उस पद पर जा बैठे हैं। जिन्होंने कंधे से कंधा भिड़ाकर काम किया, उन्हें ही, ज़रा-से मतभेद पर, जेल की हवा खिलाने पर उतारू हो गए, और वह भी घृणित जुर्म में। वाह री दुनिया ! और यह धनशेट्टिवार ! ज़िन्दगी भर अंग्रेज़ी सरकार की नौकरी की और स्वराज्य मिलते ही रोज़गार-धन्धे में घुस गया और टकसाल बनाने लगा। एक फूटी कौड़ी का भी त्याग उसका नहीं है, आदर्श की बात तो छू तक नहीं गई है। उसकी क्या औकात है कि वह तुम्हारे जैसे साधु पुरुषों की कंपनी का चेयरमैन बने। और एक तुम हो कि उसे सिर पर लेकर नाचते हो।'

'क्या करूं भोला ? तुम जो कहते हो सो ठीक कहते हो। सीधेपन के कारण कहो, या अत्यधिक विश्वास कर लेने के कारण कहो, या आदमियों को परख न कर सकने के कारण कहो, जो गलती हुई है उसका दण्ड तो भोगना ही होगा। यह लांछन शायद उसीका परिणाम हो।'

'अरे छोड़ो इस गलती-वलती को। जो तुम्हें जेल का रास्ता बता रहे हैं उनसे तो पूछो कि वे कितने चूहे खा चुके हैं ? कोई फिक्र की बात नहीं। लड़ाई सिर पर आ ही गई है तो कहना कि लड़ लेंगे। तुम भी अब क्यों छोड़ते हो ? दो एक बत्ती। सिर्फ एक बात पर अटल रहना कि एक क्षण के लिए भी सत्य से मत डिगना, सज़ा भले ही हो जाए। जो सत्य है वही भगवान का स्मरण करके सही-सही कहना। न अपनी ओर से रंग मिलाना और न नमक-मिर्च। सत्य कभी छिपा नहीं रह सकता, एक नहीं हज़ार मुख्य मन्त्री सिर पटक के मर जाएं तब भी सत्य की विजय हुए बिना कभी नहीं रह सकती। यह ब्रह्मवाक्य लिख लेना···'

धनंजय ने भोलानाथ को छाती से लगा लिया। गद्गद होकर कहा, 'इतने दिन कहां छिपे थे मेरे दोस्त ? मेरे सुख और प्रभाव के दिनों में कहीं नहीं दिखे और मेरे दुर्दिनों में अकस्मात् मेरा साथ देने चले आए, जैसे अकस्मात् भगवान की कृपा बरस पड़ी हो।'

'दुर्दिन-उर्दिन कुछ नहीं है धनंजय। अत्याचारी को कभी फायदा नहीं होता,

श्रौर जो निर्दोष श्रादमी को सताता है उसका कल्याण कभी नहीं होता। संतों का वचन है :

'दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय। बिना जीव की स्वांस तें, लोह भस्म ह्वै जाय। अरे, रावण का राज्य नहीं रहा तो जोशी जी का क्या रहेगा? तुम एक मिनट के लिए भी चिन्ता मत करना। मैं तुम्हारे साथ हूं, श्रौर बाबा जी मेरे साथ हैं।'

'बाबाजी ? कौन बाबाजी भोलानाथ ?'

'ये एक अपने इलाके के ही संत हैं। कृष्ण भगवान के परम भक्त हैं। बहुत पहुंचे हुए हैं। उन्होंने यदि तुम्हारी पीठ पर हाथ रख दिया तो समझ लो कि तुम तर गए। मैं तुम्हें ले चलूंगा उनके दर्शन को।'

'ज़रूर, भोला, मैं तुम्हारा बड़ा ग्रहसान मानूंगा। इस समय तो मेरे पास सिवा ईश्वर की कृपा के श्रौर कोई सहारा नहीं है।' धनंजय बोला।

'वही सबसे बड़ा सहारा है। अठारह अक्षौहिणी सेना एक तरफ है श्रौर चक्र-धारी कृष्ण एक तरफ। जिस श्रोर कृष्ण है, उस श्रोर विजय निश्चित है। यह हज़ारों वर्षों का पुराना कथन है। बाबाजी कृष्ण भगवान का ही अंश हैं। वे तुम्हारा साथ अवश्य देंगे, क्योंकि तुम्हारा पक्ष न्याय का पक्ष है, श्रौर तुम अन्याय श्रौर जुल्म के शिकार हो।' भोलानाथ ने कहा।

धनंजय को बड़ी सांत्वना मिली श्रौर उसकी हिम्मत दुगनी हो गई। उसका हृदय भोलानाथ के लिए कृतज्ञता से भर गया।

वह सीधा घर आया श्रौर ठाकुर जी के सामने धूप-दीप जलाकर उनका आशी-र्वाद लेकर अपना बयान लिखने बैठा :

लिखने बैठा तो लिखता रहा, लिखता ही रहा। न खाने की सुध न पीने की। न सोने की इच्छा न आराम करने की। जैसे उसका हृदय कचोट रहा हो, पीड़ा से मर्माहत हो रक्त का एक-एक कतरा बहाकर लिख रहा हो, जैसे रक्त श्रौर आंसुश्रों से मिलकर ही उसकी स्याही बनी हो।

चरित्र पर इतना बड़ा लांछन ! पैसे खाने का अभियोग, झूठे हिसाब श्रौर दस्तावेज़ बनाने का, जालसाज़ी का इलज़ाम !

स्वप्न में भी कभी नहीं सोचा था कि उसे विष का यह प्याला पीना पड़ेगा, वह भी जोशी जी के हाथ, जिन्हें एक बार उसने पितृ-तुल्य मानकर अपने हृदय का

सारा स्नेह और आदर समर्पित किया था ! और आज वे सत्तात्मक राजनीति के नशे में मदहोश होकर उसके सत्व की हत्या करने के लिए ही तुल पड़े हैं ? कहां तो वे उसे अपनी पहली नम्बर की सरकारी मोटर में बराबर में बिठाकर घूमाया करते थे, और अब चूंकि मतभेद हो गया है, वे उसे एक दरोगा के हाथ हथकड़ी लगवाकर पुलिस की काली मोटर में जेल की हवा खिलाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं !

एक बार वह जेल गया था, उसी तरह की पुलिस की काली मोटर में बैठकर, जब अंग्रेज़ों का राज था, और वह उनका विद्रोही था, जिसका उसे गर्व था।

पर आज की यह जेल ! स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता के संग्राम में कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़ने वाले मित्रों का मित्रों के प्रति यह व्यवहार !

उसका यह कहना नहीं था कि यदि उसने कोई जुर्म किया हो तो उसके साथ इसलिए रियायत की जाए कि वह राष्ट्रीय संग्राम का सैनिक था। पर कोई जुर्म भी तो हो। जिनके हाथ कृष्णकृत्यों से काले रंगे हुए हों, वे दूसरे पर उंगली उठाएं, जो स्वयं कांच के मकान में रहते हों वे दूसरे के मकान पर पत्थर बरसाएं, इससे बढ़कर विडम्बना क्या हो सकती है ?

क्या उसने कभी यह भी सोचा था कि जिस स्वतंत्रता के लाने में उसने आंसुओं और रक्त का अर्घ्य दिया था, उस स्वतंत्रता में उसे स्वर्ण विहान देखने की बजाय घृणित अपराध का अभियुक्त बनकर कारा की दीवारें देखनी पड़ेंगी ?

यह विचित्र छलना क्यों ? ऐसा दण्ड किसलिए ? और विधि की यह अकल्पित और अनपेक्षित लीला क्यों ?

इसीलिए कि सत्ता-सुन्दरी के बाहुपाशों ने हमारे विवेक को हर लिया है और कामातुरों की तरह हमें न भय और न लज्जा रह गई है।

हमारे पास सत्ता है, इसलिए हम जो कहते हैं वह मानो, वरना हम तुम्हें चौपट कर देंगे। इसमें योग्यायोग्य का, न्याय-अन्याय का कोई सवाल ही नहीं उठता।

पर यह तो सीधी हिंसा हुई, क्रूर, नग्न, अभद्र। इसके सामने, धनंजय, यदि तू और तेरा अखबार युगान्तर दब गया तो एक सर्वसाधारण नागरिक की बिसात ही क्या ? उसकी चटनी बनने में क्या देर लगेगी ? फिर मदान्ध सत्ता का हौसला कितना बढ़ जाएगा ? उसका रौरव नृत्य किस पाशविकता से चिंघाड़ उठेगा ?

नहीं धनंजय, नहीं। इस अशोभन पाशविकता के लिए, इस निर्मम अत्याचार

के लिए, ताकत के इस निर्लज्ज प्रदर्शन के लिए स्वतंत्रता नहीं चाही थी। लक्ष-लक्ष शहीदों का रक्त मुट्ठी भर लोगों के भोग-विलास और अहं की तृप्ति के लिए नहीं गिरा था। हां, एक बार इन लोगों ने भी त्याग का नाटक खेला था, इनमें से कुछ लोगों ने तो यथार्थ में त्याग का यज्ञ ही किया था, पर अधिकांश तो परिस्थिति की मजबूरी से और अपनी अनिच्छा से ही इस त्याग के नाटक में खींचे गए थे, और उसमें इसीलिए चिपके रहे कि न चिपकने से मुंह काला होगा। गांधीजी की कृपा कि थोड़े ही से त्याग से देश स्वतंत्र हो गया। पर गांधी जी का प्रयत्न तो दो शताब्दियों की बलिदान-परम्परा के पाये पर बने हुए रक्तरंजित मन्दिर का कलश बना। समय की गति से जो कलश पर जा बैठे उन्हें क्या मालूम कि पाये के भरने के लिए कितनी मांगों का सिन्दूर पुंछा, सौभाग्य की कितनी चूड़ियां टूटीं, शहीदों की कितनी आहें और कराहें निकलीं, शोणित की कितनी नदियां बहीं ? जो बन्ध्या है वह प्रसव-वेदना क्या जाने ? जो किराये के मकान में रहता है उसे क्या चिन्ता कि इस मकान में आग लगती है, या नहीं । पर जिसने अपने हाथ से अपने पसीने से मकान बनाया है वह उसमें आग कैसे लगने देगा, भले ही वह घर का चिराग ही क्यों न हो ? जिसने जीवन की समस्त श्रद्धा, समस्त निष्ठा, समस्त परिश्रम, समस्त स्वप्नों और आदर्शों की आहुति देकर भारतीय स्वतंत्रता के गगनचुम्बी मन्दिर को बनाया है, वह उसे आततायियों के हाथ से भग्न और खण्डित कैसे होने देगा ? यह मन्दिर केवल इसी पीढ़ी की विरासत नहीं है, यह तो आने वाली असंख्य पीढ़ियों की धरोहर है जिसकी हमें अपने प्राणों के साथ रक्षा करनी है।

माना कि इन आततायियों में वे लोग भी शामिल हो गए हैं, जिन्होंने कल कष्ट भोगा था, त्याग किया था। तब हमने उनकी पूजा की, और उन्हें सिरपर लेकर हम नाचे।

पर आज जब वे स्वार्थ और भोग में लिप्त हैं, और उस त्याग की पूंजी पर अपना घर भरने का अनाचार कर रहे हैं तो उन्हें सिर से उतारकर उन्हें दण्ड देना भी हमारा कर्तव्य है। वे स्वजन हों या परजन हों, हमें इस मोह में पड़ना ही नहीं है। जिन्हें धर्मरूपी राम और सेवारूपी वैदेही प्रिय न हों उन्हें तो—'तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।' क्योंकि,

तज्यों पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितनि, भये मुद-मंगलकारी !!

इसलिए धनंजय, तुम्हारा मार्ग स्पष्ट है ! कर्तव्य-कर्म तुम्हें फिर बुला रहा है। उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! उठो, जागो ! और श्रेष्ठ पुरुषों ने जो मार्ग बताया है उसका असनुरण करो।

३५

तीन दिन और तीन रात के समुद्र-मंथन के बाद धनंजय का बयान तैयार हुआ। तीन दिन और तीन रात तक उसके लिए सारी बाहरी दुनिया बन्द हो गई थी। वह अकेला था, उसके साथ उसका आत्मदेवता था, और शब्दों के माध्यम से वह उससे बोल रहा था।

बयान लेकर भोलानाथ एडवोकेट के घर गया, 'भोला, इसे आज ही कोर्ट में दाखिल करना है।'

'आज ही ? क्यों, इतनी जल्दी क्या पड़ी है ? वह तो जब अभियुक्त का बयान फाइल करने की स्टेज आएगी तभी किया जा सकता है।'

'नहीं भोला, यह कानून के प्रोसीजर की बात नहीं है। इसे तो अब अविलम्ब जनता के सामने जाना ही चाहिए। यदि यह आज अदालत में पेश नहीं किया जा सकता तो मैं कल सुबह इसे 'युगान्तर' में प्रकाशित कर दूंगा। फिर भले ही कंटेम्प्ट ऑफ कोर्ट (अदालत की मानहानि) हो। वह मुकदमा लड़ लेंगे क्योंकि मेरा मंतव्य अदालत का मानभंग करने का थोड़े ही है, सत्य का उद्घाटन करने का है।'

'यार धनंजय, तुम बड़े ज़िद्दी हो। कानून-वानून तो जानते नहीं, न जाने कहां घपला कर दोगे।'

'भोला, ये बातें कानून की किताबें पढ़कर नहीं होतीं। ज्वालामुखी का स्फोट ज्योतिषियों के पंचांग की बाट नहीं देखता। मन का उबाल यदि बाहर न निकले तो मेरा तो दम घुटकर ही मरण हो जाएगा।'

भोलानाथ समझ गया कि यह बात ही कुछ दूसरी है। बोला, 'दिखाना तो अपना स्टेटमेंट।'

धनंजय ने उसे निकालकर दिया। अपना चश्मा लगाकर, जिसकी एक डण्डी

टूट गई थी, भोलानाथ ने उस वक्तव्य का एक-एक शब्द प्रस्तर मूर्ति बने दत्त-चित्त होकर पढ़ा। धीरे-धीरे भोलानाथ की काया ही पलटने लगी, उसका शरीर कांपने लगा, ओठ थरथराने लगे, क्रोध और विषाद की मिश्रित भावनाओं से उसका हृदय भर आया। स्टेटमेंट समाप्त होते ही उसने एक दीर्घ वाष्पोच्छ्वास लिया और बोला, 'यह स्टेटमेंट क्या है, यह तो तुम्हारे अन्तरात्मा की आवाज़ है, भगवान की वाणी है, इसे मैं कैसे रोक सकता हूं ?'

भोलानाथ उठा, और बाबाजी के चित्र के सामने कपूर और अगरवत्ती लगाकर वह वक्तव्य उनके सामने रखकर बोला, 'संत शिरोमणि देवाजी महाराज ! मेरे मित्र की लाज रखना !'

फिर दोनों मित्रों ने सलाह की और उसके मुताबिक अपराह्न को साढ़े चार बजे के करीब धनंजय सोहर्नासह मजिस्ट्रेट की अदालत में हाज़िर हुआ। साथ में भोलानाथ था।

अदालत पांच बजे बन्द होती थी, और सोहर्नासह थका हुआ घर जाने की तैयारी कर रहा था। उसे शाम की बोतल की याद आ रही थी। शहर में शराबबन्दी थी इसलिए वह चोरी-छिपे देशी शराब या ठर्रा पीता था। पर 'युगान्तर' केस के फाइल होते ही पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता ने दौड़-धूप करके उसे एक परमिट दिला दिया था। उसीकी खुशी में सोहर्नासह मस्त था।

धनंजय को देखते ही सोहर्नासह पहचान गया। जोशी जी के साथ कई बार सभा-सोसाइटियों में उसे देखा था। थोड़ा सहम गया, और सहमकर बैठ गया। आदर के साथ बोला :

'कहिए ?'

'साहब, धनंजय बाबू एक स्टेटमेंट फाइल करना चाहते हैं ?' भोलानाथ ने अदालत से कहा, 'इनका 'युगान्तर' वाला मुकदमा आपकी अदालत में पेश है।'

'सो तो है। पर यह स्टेटमेंट फाइल करने की कौन-सी स्टेज है ? अभी तो अभियुक्त अदालत में भी पेश नहीं हुए हैं—महज़ गिरफ्तारी ही तो हुई है।'

'लेकिन अभियुक्त को तो किसी भी समय कोई भी कागज़ फाइल करने का हक है। आप उसपर क्या राय बनाते हैं, यह अलग बात है, और वह तो सर्वथा आपके अधिकार की बात है। पर कागज़ लेने से तो इन्कार नहीं किया जा सकता।' भोलानाथ ने बहस की। सोहर्नासह मजिस्ट्रेट भोलानाथ की बुद्धिमानी और अनुभव के

सामने जरा दवता था। भोलानाथ ने उसे कई बार अड़चनों से वचाया था। जो गैर-कानूनी ढंग से शराब पीते हैं, और उसके विना एक दिन भी नहीं रह सकते, उनकी अड़चनों का क्या पूछना ? पर शराव पीने वाले लोगों में अक्सर एक प्रकार की उदारता और हृदय की विशालता रहती है, तवीयत का फक्कड़पन रहता है।

सोहनसिंह ने धनंजय का स्टेटमेंट हाथ में लिया और सरसरी तौर पर उलट-पुलटकर देखा।

'यह तो वहुत वड़ा है।' वह वोला।

'जी हां,' धनंजय ने कहा। 'आखिर मुकदमा भी तो बहुत वड़ा है। मुझे उसकी सारी पृष्ठभूमि समझानी पड़ी। इसमें कुछ आत्मस्वीकृति भी है। संभव है इससे आपका काम भी आसान हो जाए।'

'अच्छी वात है। आप इसके प्रत्येक पृष्ठ पर अपने दस्तखत कर दीजिए।' मैजिस्ट्रेट ने कहा।

धनंजय के दस्तख़त होते-होते घड़ी ने पांच वजा दिए। मजिस्ट्रेट ने एक ऑर्डर-शीट ली और लिखा कि अभियुक्त ने आज एक वयान पेश किया। वह रिकॉर्ड पर ले लिया जाए। मुंशी को बुलाकर केस की फाइल में इसे लगाकर बस्ता कसकर वांधा और कहा:

'इसे ताले में वन्द कर दो और चाबी मुझे दे दो।'

धनंजय ने मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया और नमस्कार करके वाहर निकल आया।

भोलानाथ ने थोड़ी देर तक सोहनसिंह की हलचलों पर नज़र रखी, और जब उसे भरोसा हो गया कि वह केस का वस्ता घर नहीं ले गया, और वह अदालत की अलमारी में ही वन्द है, तव वह भी वहां से चल दिया।

धनंजय सीधा प्रेस में गया, और उस स्टेटमेंट की प्रति कम्पोज़ करने के लिए दे दी। प्रेस के आसपास अपने ही विश्वासी आदमियों का पहरा लगा दिया कि कुछ भी हो जाए, अगली प्रातःकाल के 'युगान्तर' में यह वक्तव्य प्रकाशित होने में कोई फर्क न पड़े।

रात भर वह आंखों में तेल डालकर कम्पोज़िंग और छपाई की देख-रेख करता रहा।

पुलिस को इसकी खबर तक न लगी। उसके सर्वेसर्वा और युद्ध-संचालक राय-

साहब रणदमन सिंह इस समय सुरा-सुन्दरी के पाशों में मदहोश पड़े थे। धनंजय को जेल में भिजवाने की साज़िश में उन्हें जो प्रारंभिक विजय मिली थी उसकी खुमारी अब तक उतरी नहीं थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुंह अंधेरे ही अखबार बेचने वाले लड़कों ने शहर की गली-गली में चिल्लाना शुरू किया—'मुख्य मंत्री पूरणचन्द्र जोशी मेरे साथ अभियुक्त के कटघरे में खड़े हों!'

'युगान्तर के सम्पादक श्री धनंजय का अदालत में सनसनीखेज बयान!!'

'मदान्ध सत्ता के नग्न प्रदर्शन की रोमांचकारी कहानी!!'

'ताज़ा युगान्तर एक आना! लीजिए नया समाचार पढ़िए! ताज़ा युगान्तर एक आना!!!'

गली-गली में, कूचे-कूचे में, घर-घर में, बाज़ार-बाज़ार में, होटलों में, मोटर-बसों में, सब जगह यह आवाज़ गूंज उठी।

'मदान्ध सत्ता के नग्न-प्रदर्शन की रोमांचकारी कहानी!'

'ताज़ा युगान्तर एक आना!!'

३६

धनंजय ने फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट श्री सोहनसिंह की अदालत में जो बयान दाखिल किया था उसमें उसने अपने और जोशी जी के सम्बन्धों की पूरी पृष्ठभूमि दी थी और स्वातंत्र्य संग्राम के ज़माने में जेल की मैत्री का उल्लेख किया था। आदर्शों की पृष्ठभूमि पर वे कैसे निकट आए, उन दिनों जोशी जी कैसे उदार-चरित और उज्वल गुणों के व्यक्ति थे, कैसे उन्होंने साथ मिलकर प्रदेश की सेवा करने का व्रत लिया था, स्वातंत्र्योत्तर भारत में किस प्रकार नव निर्माण के कार्य में, प्रजातन्त्र की स्वस्थ एवं शुद्ध परम्पराओं को डालने में, तथा देश और प्रदेश की सुख-संपन्नता के विधायक कार्य में सहयोग देने की बात तय हुई थी, और किस प्रकार यह निर्णय हुआ था कि दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में इन ध्येयों के अनुसार कार्य करेंगे—जोशी जी शासन के क्षेत्र में; और धनंजय पत्रकारिता के क्षेत्र में।

धनंजय का आदर्श और मार्ग बिलकुल स्पष्ट था, इसलिए कैसे उसने विधानसभा या पार्लमेण्टरी जीवन में जाने से इन्कार कर दिया, और किस तरह वह तन-मन से पत्रकारिता के क्षेत्र में कूद पड़ा आदि बातें थीं।

बाद में यह बताया गया कि किस प्रकार युगान्तर कम्पनी की स्थापना हुई, कैसे जोशी जी के व्यक्तिगत पत्र का तथा धनंजय के साप्ताहिक का सौदा हुआ, क्या-क्या रकमें उन्हें मिलीं, उनका कैसे विनियोग हुआ, और नई संस्था के संचालन की कैसी व्यवस्था निश्चित की गई, और किस प्रकार जोशी जी का आर्थिक हित नई संस्था में भी सुरक्षित रखा गया। बाद में यह बताया गया था कि उसकी पूंजी का संचय कैसे हुआ, किन्होंने किन कारणों से पैसा लगाया और धनंजय ने कम्पनी के लिए किस वृत्ति से उसे स्वीकारा।

फिर यह बताया गया कि कैसे धीरे-धीरे सत्ता के सान्निध्य में और उसका उपभोग करने में जोशी जी की आदर्शवादिता शिथिल होती गई और किस प्रकार स्वार्थी और सुखासीन खुशामद करने वालों की सलाह और प्रभाव के कारण वे शासकीय भ्रष्टता को न केवल संरक्षण ही देने लगे लेकिन जाने-अनजाने उसे प्रोत्साहन भी देने लगे। और किस प्रकार धीरे-धीरे उनके निष्कलंक चरित्र को तपोभ्रष्टता का ग्रहण लग गया, ठीक उसी तरह जैसे राहु चन्द्रमा को धीरे-धीरे ग्रस लेता है।

शैतान का हमेशा यही तरीका रहा है कि वह पहले प्रलोभनों से मन आकर्षित करता है, फिर बुद्धि-भ्रंश करता है, विवेक-शक्ति को क्षीण बना देता है, ताकि हम अपनी फिसलन को देख नहीं पाते, और देखते हैं तो उसको न्यायोचित और अनिवार्य मानने के लिए दलीलें खोजा करते हैं। यह आत्मवंचना और अपने आपको धोखा देने की वृत्ति हमें रसातल की ओर ले जाती है। उसमें फिर अधिकार के मद के कारण और भी बुराई आ जाती है। खुशामद की आदत पड़ जाती है, मधुर असत्य आकर्षक लगने लगता है, अप्रिय सत्य सुनने की इच्छा नहीं रहती, विरोध बर्दाश्त नहीं होता, और विरोध यदि शांत नहीं होता तो उसका सिर किसी भी मार्ग से कुचलने का लालच आ जाता है, और क्षुद्र और स्वार्थी आदमियों के प्रभाव के कारण सत्ता का दुरुपयोग कर अपने विरोधियों को नष्ट करने की प्रेरणा होने लगती है।

सत्ता के कारण आसपास इन स्वार्थी, खुशामदी और क्षुद्र लोगों की एक ऐसी

मज़बूत दीवाल खड़ी हो जाती है, जिसके कारण निःस्वार्थी, स्पष्टवक्ता श्रौर श्रादर्शवादी लोगों को वहां पहुंचने की न तो क्षमता होती है न रुचि। धीरे-धीरे होता यह है कि समाज का जो स्वस्थ, सात्विक श्रौर उच्च श्रंग है, जो समाज का भूषण है, जिसका चरित्र श्रौर चिंतन समाज को धारण करता है, वह शासन से खिंचकर दूर चला जाता है, श्रौर इस तरह संत् श्रौर श्रसत् शक्तियों के बीच की खाई श्रौर भी श्रधिक चौड़ी श्रौर गहरी होती जाती है।

नतीजा यह होता है कि शासन का स्तर गिरता जाता है, सज्जनों श्रौर संतों का उसे समर्थन नहीं मिलता, श्रौर राज-काज का राजसी गुण तामस की तरफ झुकने लगता है श्रौर जनता को त्रास होने लगता है, उसकी पीड़ा बढ़ जाती है, श्रौर प्रजा दुखी हो जाती है।

प्रजा की पीड़ा सज्जनों श्रौर संतों से देखी नहीं जाती, वे इसका प्रतिकार करते हैं, शासन उनके साथ छल करता है, जिसके कारण उसके नैतिक मूल्यों में श्रौर भी क्षति होने लगती है। इस पतन के कारण वह श्रौर भी चिढ़ता है, क्रोधित हो जाता है, मूढ़ हो जाता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है श्रौर उसका विनाश होने लगता है।

शासन-तन्त्र की इसी उत्थान श्रौर पतन की प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में मुख्य मंत्री श्रौर युगान्तर की लड़ाई है। इस पृष्ठभूमि को समझ लेने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि कैसे जोशी जी ने युगान्तर को दबाने की, हथियाने की, उसे बर्बाद करने की कोशिश की श्रौर जब कोई भी बात न जमी तो फिर श्रपना श्रन्तिम श्रस्त्र निकाला—युगान्तर श्रौर उसके सम्पादक के चरित्र की हत्या।

'इसी प्रसंग में, न्यायाधीश महोदय, मैं श्रापके सामने श्रभियुक्त बनकर खड़ा हूं।' धनंजय ने श्रपने बयान में कहा, 'मुझपर झूठे हिसाब-किताब रखने का जालसाज़ी श्रौर फरेबी का इलज़ाम है। पर मुझे यह कहना है कि यदि मैंने झूठे दस्तावेज़ बनाए हैं, श्रौर जालसाज़ी श्रौर फरेब किया है तो मेरे बराबरी के साझे-दार जोशी जी कैसे इस इलज़ाम से बच सकते हैं? इसलिए, न्यायाधीश महोदय, सचाई श्रौर इन्साफ तो यही कहता है कि श्राज उन्हें भी कटघरे में खड़ा होना चाहिए। जिस समय मेरे मकान की तलाशी ली गई उस समय उनके बंगले की भी तलाशी ली जानी चाहिए थी, श्रौर जब मैं गिरफ्तार किया गया तब उन्हें भी गिरफ्तार कर इस न्यायालय में पेश किया जाना चाहिए था।

'पर यह इसलिए नहीं हुआ कि वे मुख्य मन्त्री के पद पर बैठे हैं और मैं एक सर्वसाधारण नागरिक हूं। उनके पीछे शासन की शक्ति है, मेरे पास सत्य की शक्ति के सिवा और कोई शक्ति नहीं है।

'उसी सत्य को स्मरण कर मैं स्वीकार करता हूं कि अधिक विज्ञापनों की प्राप्ति के लिए मेरे कार्यालय के कर्मचारी ने जो किया वह अवांछनीय है, और उसकी ज़िम्मेदारी सर्वथा मैं अपने कन्धों पर लेने के लिए तैयार हूं। वह न होता तो अच्छा होता। पर उसमें किसीकी नीयत गैरकानूनी या नाजायज तरीके से लाभ उठाने की नहीं थी, और उसके कारण कम्पनी के हिसाब में एक पाई की गड़बड़ी भी नहीं हुई है। फिर भी वह गलत कार्य था जिसके लिए मैं जनता से और इस न्यायालय से सार्वजनिक रूप से क्षमा मांगता हूं।

'पर इसमें भी मज़ा यह है कि यह सब कार्रवाई जोशी जी के कहने से हुई, क्योंकि वे ही मेरे व्यावसायिक भागीदार थे, और समाचारपत्र की आर्थिक एवं व्यावसायिक स्थिति दृढ़ बनाना उन्हींका उत्तरदायित्व था। मेरे ऊपर तो मुख्यत: सम्पादन की ज़िम्मेदारी ही थी।

'जो बात उन्हें एक भागीदार के नाते मालूम थी उसका उपयोग उन्होंने एक मुख्य मन्त्री के नाते किया, और वह भी अपने भागीदार के खिलाफ। व्यक्तिगत राग-द्वेष को शासन की मशीनरी के ज़रिये शमन करने का यह कौन-सा तरीका है? क्या इससे हमारे नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की, राजनीतिक या शासकीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बढ़ती है?

'मुझे खेद है कि मुझे इन सब बातों का स्फोट करना पड़ रहा है, और इसके लिए मुझे घोर लज्जा है। व्यक्तिगत मतभेदों की लड़ाई को बाज़ार के चौराहे पर लाना अच्छा नहीं। व्यक्तिगत रूप से मेरे ही चरित्र की बात होती तो सम्भवत: मैं बर्दाश्त कर लेता और अदालत में अपने आपको निर्दोष साबित करने की कोशिश करता, और कुछ न करता।

'पर यहां तो जनता के प्रिय समाचारपत्र पर ही सीधा मरणान्तक प्रहार किया गया है, जो यदि सफल हुआ तो जनता का प्रहरी सो जाएगा और वे सारे परिवार जो उसके कारण अपनी आजीविका चला रहे हैं, निराश्रित हो जाएंगे। इस पत्र का प्रतिपालन करने में मैंने अपने रक्त और घर्म-बिन्दुओं का अर्घ्य दिया है। उसकी हत्या मैं खुली आंखों कभी नहीं देख सकता। उसका संरक्षण करना मेरा आद्य

कर्तव्य है और उसी हेतु से मुझे आज यह वक्तव्य देना पड़ रहा है।

'मैं फिर कहता हूं कि मुझे यह कहते हुए बड़ा क्लेश हो रहा है क्योंकि एक समय था जब जोशी जी के तथा मेरे सम्बन्ध बड़े घनिष्ठ और मीठे थे, और वे मेरे लिए पितृतुल्य आदरणीय थे। आज भी मेरे मन में उनके प्रति इसी प्रकार की भावनाएं हैं।

'पर आज अधिकारों के नशे में तथा अपने हलके सलाहगीरों के कान भरने के कारण ये अपने मित्रों को ही शत्रु मान बैठे हैं, और जिनकी सलाह उन्हें सर्वनाश के गर्त में ले जा रही है, उन्हें मित्र मान रहे हैं। भगवान ही उन्हें योग्यायोग्य का निर्णय करने की शक्ति दे।

'जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरी आत्मा स्पष्ट है, मेरा हृदय निष्कलंक है, और मेरी विवेक-बुद्धि निर्दोष है। मुझे नहीं लगता कि मैंने ऐसा कोई कार्य किया है जिससे नैतिक अधःपतन की कोई बात हो या जिसकी योग्य और उचित सफाई न दी जा सके।

'फिर भी चूंकि यहां मैं एक क्रिमिनल के नाते घसीटा गया हूं तो फिर आपके सामने हाजिर हूं ही। जो-जो सबूत आपके न्यायालय के सामने आएगा उसका जवाब देने के लिए मैं तैयार हूं।

'पर मैं अपने पुराने दोस्तों को आगाह करना चाहता हूं कि बने हुए झूठे केस अन्त तक कभी नहीं टिकते और सत्य का कितना भी विपर्यास करो, वह छप्पर फाड़कर बाहर निकल पड़ता है और सर पर चढ़कर बोलता है।

'गांधीजी के चरणों के पास बैठकर नम्रतापूर्वक मैंने उनके सिद्धान्तों का अध्ययन करने की कोशिश की है, और अपनी अल्पबुद्धि और शक्ति के साथ मैं उनका अनुसरण करने का प्रयत्न करता हूं। उनकी दो बातों का मुझपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। एक तो यह कि सत्य का पथ कभी मत छोड़ो और दूसरा यह कि अपनी गलतियां स्वीकार करने का साहस रखो, और उन्हें प्रांजलतापूर्वक कुबूल करने के बाद उनका परिणाम भोगने की तैयारी रखो। उसी सीख का स्मरण करके मैंने आपके सामने यह वक्तव्य पेश किया है। गांधीजी का यह आश्वासन मुझे भगवान का आश्वासन मालूम पड़ता है कि तुमने यदि सत्य का पथ नहीं छोड़ा तो ईश्वर भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है। न्यायाधीश

महोदय, मैं आपको नमस्कार करता हूं और अपने भाग्य का निर्णय आपके हाथों सौंपता हूं। धन्यवाद।'

३७

धनंजय का स्टेटमेंट प्रकाशित होते ही सारे शहर में तहलका मच गया। वाह रे बहादुर! शाबाश! गजब की हिम्मत दिखाई इसने कि खुद मुख्य मन्त्री को डंके की चोट कह दिया कि मेरे साथ कटघरे में खड़े हों। यदि इसके पक्ष में सचाई न होती तो इसे हर्गिज़ ऐसा कहने का साहस नहीं होता। स्टेटमेंट का एक-एक शब्द दिल की गहराई से निकला है। साफ दिखता है कि यह आदमी निर्दोष है। जो कुछ रोज़गार-धन्धे के लिए किया वह सब करते हैं। पर एक छोटे-से तिल का ताड़ बनाकर सत्ताधारी उसे मटियामेट करने पर आमादा है। क्या अन्धेर है!

शासकीय दल के अधिकांश लोग भी भीतर ही भीतर खुश थे। वे जानते थे कि धनंजय जो कह रहा है वह सच है, हालांकि खुले तौर पर वैसा कहने की उनकी हिम्मत नहीं थी। आखिर जोशी जी की ज़्यादतियों से वे भी तंग आ गए थे। पर चूंकि उनके हाथ में सत्ता थी, कुछ कर नहीं पाते थे।

स्वयं जोशी जी तो एकदम सन्न रह गए। उनकी तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि यह झगड़ा ऐसा अनपेक्षित स्वरूप ले लेगा। धनंजय ने जो बात कही थी वह नितांत सच है यह भीतर ही भीतर वे भी जानते थे, पर उसका ऐसा भण्डाफोड़ होगा और वह इस तरह हिम्मत दिखा सकेगा, ऐसी उन्हें उम्मीद नहीं थी। उनकी नैतिक पोज़ीशन को इससे गहरा धक्का लगा और वे भीतर ही भीतर तिलमिला उठे। पर अब किसे दोष दें? एक निकटवर्ती मित्र की घृणित अपराध में गिरफ्तारी हो जाए और वह अपने बचाव में यह सब कह डाले तो इसमें क्या आश्चर्य? अब तो निकला हुआ तीर वापस नहीं आ सकता। जो होना होगा सो होगा।

रणदमन सिंह और गिरधारी तो गुस्से के मारे पागल हो गए, पागल। न

खाना सूझता था, न पीना। रणदमन सिंह को लगा कि ऐसे आदमी को तो शूट कर डालना चाहिए। एकाध बार उसका हाथ पेण्ट की पिछली जेब की तरफ भी गया जिसमें पिस्तौल रखी थी। ऐसी लड़ाई तो उसने जनम भर नहीं देखी थी। एक आदमी इतना साहस कर सकता है, इसकी उन्हें स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। यह तो ऐसे दिखता है जैसे सिर से कफन बांधकर मैदान में कूद पड़ा हो। ऐसे आदमी से पेश आना भी तो मुश्किल है।

गिरधारी को लगा कि उसके गाल पर किसीने कसकर तमाचा मारा हो। राजनीतिक क्षेत्रों में, सरकारी अधिकारियों में, पत्रकारों में, सब जगह लोग तो यही कहते थे कि धनंजय की सफाई पुख्ता और मज़बूत है और जोशी जी का पक्ष एकदम कमज़ोर और असमर्थनीय है। पर वे ज़बान से कुछ नहीं कहते। गिरधारी का जोश भी इस वातावरण में ठंडा होने लगा। ऐसी परिस्थिति की तो उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। अजीब आदमी से पाला पड़ा है!

उधर पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता ने सोहनसिंह के घर जाकर उसका गला धर दबाया, 'यह स्टेटमेंट ऐसे कैसे तूने ले लिया? स्टेटमेंट लेने की भी यह कोई स्टेज थी?'

उसने हाथ जोड़े और कहा, 'क्या करूं गुप्ता। कानून में तो ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि अभियुक्त का कोई भी स्टेटमेंट लेने से हम इन्कार कर सकते हैं। हां, उसपर विश्वास करना या न करना यह हमारा काम है, पर उसे बयान देने से कैसे रोका जा सकता है?'

गुप्ता को भी इसका जवाब नहीं सूझा, पर वह तो इसलिए आया था कि अदालत के मोर्चे का वह नायक था। जोशी जी ने पूछा तो कम से कम यह तो कह सकेगा कि सोहनसिंह को डांट-फटकार कर आया।

सोहनसिंह मन ही मन मौज में था, और तमाशा देख रहा था। वह इसीमें खुश था कि इस मुकदमे के कारण उसका महत्व बढ़ गया है और लोग अब उसके घर के चक्कर काटने लगे हैं।

वह अदालत में पहुंचा तो चपरासी भेजकर भोलानाथ को बुलवाया और कहा, 'अरे हज़रत! वह स्टेटमेंट तो आग का पूला निकला। बाप रे! मुझे क्या मालूम था कि उसमें इतना डायनामाइट भरा है। तहलका मच गया। लोग मुझसे पूछने आए कि ऐसा कैसे कर दिया? मैंने साफ-साफ कह दिया कि मैं कानून के

खिसाफ कैसे जा सकता हूं ? कानून बताग्रो···'

'तुम यार बड़े बहादुर हो सोहनसिंह । ग्राखिर ठाकुर ही तो ठहरे ।' भोलानाथ ने उसे ताव पर चढ़ाने के लिए कह दिया।

दिन भर ग्रदालत में, बार-रूम में उसकी चर्चा चलती रही। ग्रधिकांश की सहानुभूति 'युगान्तर' के साथ थी। जो सीधे शासकीय पक्ष के थे वे भीगी बिल्ली-से चुपचाप बैठे थे, ग्रौर चर्चा टालते थे। ग्रभी उनके हाई कमाण्ड से इशारा नहीं मिला था कि क्या रुख ग्रख्त्यार किया जाए।

एक सीनियर एडवोकेट ने कहा, 'इस स्टेटमेंट के बाद वकीलों का काम ज़रा मुश्किल हो जाएगा क्योंकि वे, ग्रभियुक्त ने जो पोज़ीशन स्वीकार कर ली है उसके बाहर नहीं जा सकेंगे। डिफेंस प्ली (बचाव की दलील) के बाकी के सब दरवाज़े उनके लिए बन्द हो गए।' फिर उसके व्यावहारिक पहलू के बारे में गंभीर होकर बोले, 'जोशी बड़ा खतरनाक ग्रादमी है। ग्रब 'युगान्तर' ग्रौर धनंजय की खैरियत नहीं। वह इनका भुरता बनाकर छोड़ेगा भुरता ! ग्रौर ये बेचारे कुछ नहीं कर पाएंगे। इस दृष्टि से तो यह स्टेटमेंट बड़ा रॅश (उतावला) है।'

धनशेट्टिवार ग्रौर उनकी मिसेज़ का हाल क्या पूछना है ? खुशी के मारे उचक-उचक रहे थे। बाप रे ! यह धनंजय टेरिबल (भयंकर) है। हमने तो सोचा भी नहीं था कि वह इस तरह का स्टेटमेंट देगा। ग्रब तो बाज़ी उलट गई है। ग्रब हम शान के साथ ग्रपना सिर ऊंचा रख सकेंगे। फिर एकाएक धनशेट्टिवार ने ग्रपनी ग्रौरत से कहा, 'चलो हनी, हम लोग धनंजय के यहां कॉल कर ग्राएं।'

वे जब धनंजय के घर ग्राए तो रातभर के जागरण के बाद वह खुर्राटे लेता सो रहा था। दिन के नौ बजे थे, फिर भी नहीं जागा था। सुबह से बधाई के पचीसों टेलीफोन ग्राए, सब गीता ने ही लिए। धनशेट्टिवार-दम्पति का भी स्वागत उसीको करना पड़ा। वे दांत निपोर-निपोरकर उसकी तारीफ कर रहे थे, उसकी बहादुरी के लिए उसका ग्रभिनन्दन कर रहे थे। 'सोना उनका वाजिब है, बड़ा स्ट्रेन (दबाव) पड़ा होगा। परसों हमारे यहां ग्राए थे, बड़े एजिटेटेड (उत्तेजित) थे, फिर हमने ज़रा शांत किया ग्रौर वहीं यह स्टेटमेंट पेश करने की सलाह पक्की हुई। फिर एक सफेद टोपी वाले ग्रागन्तुक को ग्राया देखकर वे चलते बने।

गीता ने बाद में जब धनंजय के सामने उनके ग्राने का ग्रौर उनके उत्साह का वर्णन किया तो बोला, 'परसों तो दब्बू ग्रौर कायर बनकर बैठे थे। ग्रब फालतू

उछल-कूद कर रहे हैं। उनकी तारीफ में कोई मतलब नहीं।'

धनंजय के एक साहित्यकार मित्र आए तो बोले, 'इस वक्तव्य को पढ़कर तो मुझे सॉक्रेटीस (सुकरात) की याद आ गई, 'ट्रायल ऐण्ड डेथ ऑफ सॉक्रेटीस' हमारे कोर्स में था।'

दूसरे एक सज्जन ने फ्रांस के एमिल ज़ोला और ड्रेफस केस से इसकी तुलना की।

गीता भी खुश थी। बोली, 'तुम्हारी नैतिक पोज़ीशन साफ हो गई, यह सबसे बड़ी बात है।'

'हां गीता, मन भीतर ही भीतर घुटन अनुभव कर रहा था। वह सब निकल गई और जी हल्का हो गया। अब जो भी हो उसकी मुझे परवाह नहीं।'

'हां, सच बात है। होगा क्या, अब जोशी जी के लोग चिढ़कर और भी तेज़ कदम उठाएंगे, भारी यन्त्रणाएं देंगे पर दुनिया जान लेगी कि यह सब क्यों हो रहा है। अब जो कष्ट होने वाला है उसके लिए तो हम तैयार बैठे हैं। माथे पर कलंक तो नहीं रहेगा? लांछन लेकर तो महलों में रहना भी चुभता है, और निष्कलंक होकर कांटों की शय्या में भी असीम सुख है।'

धनंजय गीता की ओर कौतुक से देखकर मुस्करा दिया। अभी नींद से उठा था, आंखें लाल थीं, भरी हुई थीं। पर उनमें एक अजीब किस्म की तृप्ति झलक रही थी। गीता अनिमेष नेत्रों से बड़े प्यार से उसकी ओर देखती रही।

पर सबसे खुश था भोलानाथ। दिनभर कचहरी की प्रतिक्रियाएं लेकर वह धनंजय के घर आया। अपनी हमेशा की तरह की फक्कड़ता से बोला, 'बड़ी कस-कर पड़ी धनंजय। सब म्यां बैठकर सेंक रहे हैं। बाप जनम में ऐसी नहीं घली होगी। सारा निष्पक्ष ज्यूडिशियल ओपिनियन (अदालती विचार) तुम्हारे साथ है। सुना है कि तुम्हारे स्टेटमेंट की कॉपियां दिल्ली भेजी गई हैं, और हाई कमाण्ड से कहा गया है कि देखो अपने लाड़लों के कारनामे।'

भोलानाथ के आने से दोनों को बड़ी खुशी हुई। हिम्मत का वह बड़ा ज़बर्दस्त आधार था। मनुष्य के जीवन में ऐसी भयंकर स्थिति अक्सर आ जाती है, ऐसी 'क्राइसिस' जब एक सच्चे मित्र या सखा का सहारा आदमी को छिन्न-विच्छिन्न होने से बचा लेता है। जब धनंजय पर आपत्ति आई तब वही सबसे पहले मदद का प्याला लेकर दौड़ा। सच है, सच्चे मित्रों की पहचान तो विपदा में ही होती

है। वाह रे भोला ! उसके अच्छे दिनों में जाने कहां दुबका बैठा था, और बुरे दिनों में हमेशा साथ रहता है। यह भी कोई पूर्वसंचित पुण्य होगा जो ऐसा मित्र मिला।

३८

भोलानाथ के जाने के बाद गीता ने पूछा, 'ये तुम्हारे पुराने मित्र हैं। पर इतने दिन कहां गायब रहे ? अभी-अभी दिखने लगे हैं।'

'हां गीता। है तो बहुत पुराना मित्र। पर बीच में ऐसा कुछ संयोग हुआ कि वर्षों का खण्ड पड़ गया और मुलाकात ही नहीं हुई। जैसे एक दूसरे की दुनिया से कोई ताल्लुक ही नहीं। पर बड़े मज़े का आदमी है। तुम इसके बारे में अधिक जानोगी तो ताज्जुब करोगी।'

इतने में टेलीफोन आ गया तो बात वहीं रुक गई। दफ्तर से सोल एजेण्ट ने संदेशा भेजा कि आज जितनी प्रतियां ज्यादह निकाली थीं वे हाथों हाथ बिक गईं। पांच हज़ार प्रतियों की और ज़रूरत है। कल सुबह मिल जाएं तब भी बिक जाएंगी।

धनंजय ने छपाई विभाग को फोन करके तुरन्त इसका इन्तज़ाम कर दिया।

और फिर बैठकर उसने भोलानाथ का किस्सा सुनाया :

'भोलानाथ एक बड़े मालगुज़ार का बेटा था। खासी जायदाद थी, घर में घी-दूध की नदियां बहती थीं। पिताजी ने देहाती स्कूल में डाला जो उनके गांव से दो मील दूर था। पर स्वभाव से नटखट था, इसलिए पढ़ने की बजाय बेर और इमली खाने में, लौंडों को पीटने में, कुश्ती खेलने में उसे ज्यादा दिलचस्पी थी। मास्टर शिकायत करते कि हफ्ते के सात दिन में से मुश्किल से दो दिन उसकी हाज़री लगती थी, बाकी वक्त आम के दरख्त के नीचे या खेतों-खलिहानों में कटता। यह सुनकर पहले पिताजी ने अच्छी तरह पीटकर मरम्मत की फिर एक आदमी देकर खच्चर पर उसे स्कूल भेजने लगे। आदमी बस्ता और लगाम लेकर आगे चलता और ये बादशाह की तरह पीछे बैठते। जब कहीं पगडंडी गहरी हो जाती

ग्रौर दोनों पैर ज़मीन पर लगने लगते, तो वे चुपचाप पैरों के बल ज़मीन पर खड़े हो जाते ग्रौर खच्चर चुपचाप खिसककर ग्रागे बढ़ जाता। खच्चर के ज़बान नहीं थी इसलिए वह साईस को बता न पाता कि उसका बोझ उतर चुका है। साईस को देर तक पता न लगता। जब स्कूल में पहुंचकर साईस पीछे मुड़कर देखता तो भैया नदारद। उस ग्रादमी को काटो तो खून नहीं क्योंकि जानता था कि मालिक बिगड़े मिजाज़ हैं, घोड़े के हंटर से मरम्मत किए बग़ैर रहेंगे नहीं। मास्टर साहब भी मजाक करते कि ग्रच्छा, ग्राज भैया की जगह खच्चर जी बस्ता लेकर पढ़ने ग्राए हैं! बेचारा साईस ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वापस लौटता तो भैया के न दिखने से परेशान हो जाता। ज़ोर-ज़ोर से बड़बड़ाता कि 'इन भय्यन के मारे तो हमारे नाक में दम है। उतैं दद्दा हमें चमकाउत हैं, ग्रौर इतैं जे भय्यन हमें परेसान करत हैं। ग्रब हमारी नौकरी जैहे कि रैहे कह नहीं सकत। इन भय्यन के मारे तो हमें भूखन मरने की नौबत ग्रा गई है——सांची!'

''भूखन मरने' की संभावना से भैया का दिल पसीज जाता तो वे ऊपर से ग्राम की डाल पर से चिल्लाते——'कूकी।'

'साईस को खुशी भी होती ग्रौर गुस्सा भी ग्राता। 'ग्रब उतै बंदरन की नाईं का कर रहे हो? उतरो, ग्रौर घरे चलो ग्रब्बई दद्दा से तुम्हें पिटवाउत हैं।'

'कहने को तो वह कह गया पर ग्रसली डर खुद के पिटने का था।

'स्कूल में दद्दा ने समझ लिया कि जनाब पढ़ेंगे नहीं तो घर में एक मास्टर लगा दिया। कुछ दिन यह सिलसिला चलता रहा। पर एक दिन विचित्र घटना हुई:

'भोला की उम्र उस समय दस-ग्यारह साल की होगी। घोड़े का शौक भी था। उसके किसी दोस्त ने बताया कि पांच मील दूरी पर जो बड़ा कस्बा है वहां रामलीला होने वाली है। रात ग्रंधेरी थी ग्रौर जंगल का रास्ता था। बीच में एक नाला पड़ता था जिसे खूनी नाला कहते थे। यहां कई बार लूट-मार ग्रौर खून के कारनामे हुए थे। वहां भूत-प्रेत भी रहते हैं, ऐसी धारणा थी। भोला ने यह सब सुन तो रखा था पर सोचा कि हमारे पास क्या धरा है जो हमें कोई लूटेगा ग्रौर हमारा खून करेगा? ग्रौर भूत-प्रेत का देखा जाएगा। रामचन्द्र जी की लीला देखने जा रहे हैं तब वे क्यों सताएंगे? दद्दा जब ऊपर सोने चले गए तब जनाब धीरे से उठे ग्रौर चुपचाप घुड़साल से एक घोड़ा छुड़ा लाए। ज़ीन घर में थी। निकालते खड़बड़ होती, इसलिए सिर्फ उसकी नाक में रस्सी बांधकर उसकी नंगी

पीठ पर बैठ गए और चले उस कस्बे की तरफ। उस घुप्प अंधेरे में कुछ सूझता नहीं था पर घोड़ा बेचारा अपने रास्ते से जा रहा। जब उस खूनी नाले का उतार आया और वह ढलान के सबसे निचले हिस्से में पहुंचा तो ऐसा लगा कि अकस्मात सामने से आग की लपटें उठी हों? घोड़ा अड़ गया और पिछली दो टांगों पर सीधा खड़ा हो गया। भोला ज़ोर से चिल्लाकर नीचे ज़मीन पर गिर पड़ा और घोड़ा भागकर वापस घर आ गया। उसका चिल्लाना सुनकर सामने एक साधू दिखा और बोला, 'बस ठहर जाओ! आगे मत बढ़ो! खतरा है!'

'भोला तो ज़मीन पर पड़ा था। डर के मारे कांप रहा था। इतने में सामने से चार-पांच आदमियों की आवाज़ें आईं—'कौन है रे भैया। घबड़ाना मत, हम लोग आ रहे हैं।' इतने में साधू गायब हो गया, और भोला वहीं हिम्मत बांधे पड़ा रहा। वे आदमी आए और चिलम पीने के लिए चकमक जलाई तो बोले, 'अरे, जे तो पटेल साहब के भय्यन आंय। इतनी रातै अकेले इतें कैसे आए भय्यन?'

'भोला ने अपनी रामभक्ति की कथा कह सुनाई ताकि उनकी हिमाकत पर कुछ परदा पड़े। वे लोग उन्हें साथ लौटा लाए और दद्दा को जगाकर सब हाल बताया। भय्यन सकपकाकर खड़े थे और डर के मारे अपनी चोटों को छिपाते रहे। दद्दा ने धोती और कुरता उघाड़कर देखा तो बदन छिल गया था। गुस्सा तो खूब आया पर उसके ज़ख्म देखकर कुछ नहीं बोले। सेंका-सांकी का इन्तज़ाम कराकर वे फिर सोने चले गए और पास दो आदमियों को सुला गए।

'तीन-चार दिन के भीतर ही भोला का गांव से टीन कस गया और वे अपने बड़े भाई के यहां भेज दिए गए जिन्हें हाल ही सरकारी नौकरी लगी थी। शहर में उनका मन कुछ ज़्यादा रमा। बुद्धिमान तो थे ही, बिना खटके मैट्रिक पास हो गए—दूसरे दर्जे में।

'भोला हॉकी का बहुत अच्छा खिलाड़ी था और अच्छा तैराक था। रंग तो काला-सांवला था पर खासा अच्छा जवान था। हमेशा ही ज़रा सनकी-सा रहा है। हॉकी खेलेगा तो लगातार दिनभर खेलता रहेगा। तैरने की शर्त लग जाए तो चौबीस घण्टों तक पानी में पड़ा रहेगा—फिर झील में सांप हों तो, मगर हों तो। बड़ा दिलेर था और अक्सर खतरों से खेलने में उसे मज़ा आता था। मैट्रिक पास होकर घर गया तब गांधीजी का सन् बीस-इक्कीस का असहयोग आन्दोलन छिड़ा तो जनाब सिर पर गांधी टोपी का गट्ठा लेकर बेचने निकलते। राष्ट्रीय

वृत्ति बचपन से ही थी।

'मैट्रिक का रिज़ल्ट आने के बाद साइन्स कोर्स में भरती हो गए। पर साल भर पढ़ाई कम की, खेलकूद में ज़्यादा दिलचस्पी ली। इधर पिताजी ने उनकी शादी तय कर दी जो फर्स्ट इयर की परीक्षा के एक महीना पहले हुई। शादी करके लौटे तो सामने परीक्षा देखकर उनकी हवाइयां उड़ने लगीं। ठण्ड का मौसम तो टूर्नामेण्ट्स खेलने में बीता। पढ़ाई कहां से करते? और अब इधर तीन सप्ताह शादी की बरात-पंगतों में बीत गए। उन्हें भरोसा हो गया कि उनका अंग्रेज प्रिंसिपल सख्त है, एक भी विषय में फेल हुए कि 'डिटेन' कर देगा। फिजिक्स और केमेस्ट्री में तो किसी तरह निकल जाने की उम्मीद है, पर गणित में कोई आशा नहीं। फेल हो जाऊंगा तो लड़के मज़ाक उड़ाएंगे कि ले, और कर ले शादी! ससुराल वालों के सामने तौहीन होगी सो अलग। पिताजी पर झल्लाहट भी हुई कि शादी करने की इतनी जल्दी क्या पड़ी थी? पर लड़की अच्छी मिली थी, मुहूर्त भी फलता था, और यह भी मालूम था कि इस वर्ष तो यूनिवर्सिटी की परीक्षा नहीं है—विवाह कर डाला गया। पर मुसीबत तो हमारी हो गई—भोला ने सोचा।

'सोमवार को गणित का पेपर था तो उन्हें एक अक्ल सूझी। गणित का पेपर उनके एक बंगाली प्रोफेसर मिस्टर बैनर्जी निकालने वाले थे जो शहर से नौ मील दूर एक उपनगर में रहते थे जहां से वे रोज़ लोकल ट्रेन से आते और जाते थे। भोलानाथ साइकिल पर उनके यहां रविवार को पहुंचे। प्रोफेसर साहब की शादी हुए चार-पांच साल हुए थे। वे बड़े दयालु प्रकृति के आदमी थे। भोला ने सोचा, उन्हींके सामने रो-गाकर काम चला लें। फेल होने के कलंक से तो बचें! पर दुर्भाग्य से प्रोफेसर साहब घर नहीं थे। वे पेपर साइक्लोस्टाइल कराने के लिए कॉलेज गए हुए थे। भोला अपना रुआं-सा मुंह लेकर प्रोफेसर साहब की पत्नी के सामने खड़े हो गए। उसने पूछा, 'तुम कैशे आया?'

''मां, मैं प्रोफेसर साहब से मिलने के लिए आया था। वे कब आएंगे?'

'भोला ने कहीं पढ़ा था कि बंगाल में सभी स्त्रियों को मां कहने की परिपाटी है। मिसेज़ बैनर्जी यह संबोधन सुनकर प्रसन्न हो गईं। वे भी अपने पति की तरह बड़ी सहृदय और दयालु थीं। बोलीं, 'प्रोफेसर शाहब तो शाम तक आएगा।'

'तो मां, मैं शाम तक यहीं बैठा रहूंगा।' भोला ने कहा।

''क्यों? प्रोफेशर शाहब से काम है?'

''हां मां, मैं बड़ी तकलीफ में पड़ गया हूं।'

''क्या तोकलीफ है ?'

''मां, पिछले महीने ही मेरी शादी हुई है। इसलिए मैं कुछ पढ़ाई नहीं कर सका। गणित में फेल हो जाऊंगा। प्रिंसिपल साहब बहुत सख्त आदमी है, डिटेन कर देगा। फिर मैं अपना मुंह ससुराल वालों को कैसे दिखाऊंगा ? उससे तो मैं मर जाना ज़्यादा पसंद करूंगा। मैं फेल हो गया तो आत्महत्या कर लूंगा मां।'—उसने रोनी सूरत बनाकर कहा।

''ओ बाबा ! तुम ऐशा काहे बोलता है ? खुदकशी कोरने शे ओ खोकी विधवा नॉय हो जाएगा ? ना बाबा, ऐशा कैशे होने शकता है ?' ऐसा कहकर उस बेचारी महिला ने अपने दोनों गालों पर तमाचे मार लिए।

''तो आप ही बताइए मां, मैं यह काला मुंह किसको दिखाऊंगा ?'

''तो तुम किया चाहता है ?'

''मां, प्रोफेसर साहब पास होने लायक दो-चार सवाल बता दें, तो मेरा उद्धार हो जाएगा।'

''अच्छा, हाम देखता है कि शाब ने तोमारा पेपर घोर में रोखा है या नॉय।'

'मिसेज़ बैनर्जी ने पति का ड्रावर खोला तो पेन्सिल से लिखे हुए तीन-चार पेपर निकले। भोला को बुलाकर कहा कि 'देखो तो। इशमें तोमारा पेपर हाय कि ?'

'भोला ने देखा तो उसका पेपर सचमुच था। और खोजा तो उसकी एक टाइप की हुई कार्बन कॉपी भी मिली, जिसकी मूल प्रति शायद प्रोफेसर साहब ले गए थे।

'भोला ने पूरा पेपर कॉपी कर लिया और मिसेज़ बैनर्जी को झुककर चरण छूकर प्रणाम किया। वे दयार्द्र होकर बोलीं, 'इतनी दूर जाएगा, तो भूख लगेगा। हाम तुमको दो ठो रशोगुल्ला देता हाय।'

'रसगुल्ले बड़े थे। भोला ने बड़े प्रेम से खाए। इम्तिहान की अब फिक्र नहीं रही थी।

'जाती बार मिसेज़ बैनर्जी से कहा कि इसका हाल प्रोफेसर साहब को मत बताना। उसने कसम खाकर वादा किया।

'पर मिसेज़ बैनर्जी ने शाम को पति के आते ही सब हाल बता दिया। बोली कि उसकी पत्नी पर तरस खाकर पेपर बता दिया। दोनों का एक दूसरे से बड़ा स्नेह था, किसी बात का आड़-पर्दा नहीं था। प्रोफेसर साहब बोले कि बड़ा चालाक लड़का

है। होशियार तो है, पर पढ़ता नहीं। नहीं तो फर्स्टक्लास में पास होता। खैर कोई बात नहीं। वैसे में भी उसके प्रमोशन पर ज़ोर तो देता ही।

'भोला ने रात भर में पेपर अच्छी तरह तैयार कर लिया और दूसरे दिन परीक्षा के हाल में पहुंचा तो प्रोफेसर बैनर्जी ने कहा, 'तुम बड़ा मिश्चीव्स (शरारती) लड़का हाय। तुम हमारा घोर में जाकर क्या-क्या किया, ओ शब हमको मालूम है। अब ऐशा करेगा तो तुमको हम फेल कर देगा।'

'कहना न होगा कि उस पेपर में भोला को डिस्टिंक्शन के मार्क मिले जिसके बल पर उसने अपने भाई तथा ससुराल वालों पर धौंस जमाई।

'उन्हीं दिनों भोलानाथ के जीवन में एक विचित्र रोमान्स आ गया। वह हॉकी का बहुत अच्छा खिलाड़ी तो था ही पर उसे पता भी न था कि उसके खेल पर एक पारसी लड़की फिदा है जो उसका कोई भी मैच देखने से नहीं चूकती। भोला के खेल में चपलता थी, फुर्ती थी और बड़ी स्टाइल थी। वह सेंटर फॉरवर्ड खेलता था और देखते-देखते गेंद विरोधी टीम के रिंग में पहुंचा देता, उनके सम्हलने के पहले ही गोल कर देता। वह जिस तरफ रहता उस टीम की विजय प्रायः निश्चित थी।

'यह पारसी लड़की, मिस शिरीन कप्तान भी हॉकी की बहुत अच्छी खिलाड़ी थी, और लड़कियों की टीम का नेतृत्व किया करती थी। वह भी भोला के कॉलेज में ही पढ़ती थी। उन दिनों पूरे कॉलेज में चार-पांच लड़कियों से अधिक नहीं थी, जिनमें क्रिश्चियन, ऐंग्लो इण्डियन और पारसी लड़कियां ही अधिक थीं। कभी भूले-भटके एकाध हिन्दू लड़की निकलती। शिरीन गौर वर्ण की अनिंद्य सुन्दरी थी।

'शिरीन जब कभी मैच देखने आती तो दर्शकों को लगता कि हॉकी में उसकी दिलचस्पी है इसीलिए वह आती है। पर असल में शुरू से आखिर तक उसकी आंखें भोला पर ही गड़ी रहतीं। उसकी एक-एक अदा पर वह फिदा थी और भोला को पता तक नहीं था।

'एक रोज़ प्रैक्टिस देर तक चली। शाम हो रही थी, अंधेरा बढ़ने लगा था। सब देखने वाले भी उठकर जा रहे थे पर शिरीन बैठी ही रही। भोला को भी नल पर हाथ-पैर धोने में कुछ देर लगी और वह ताज़ा-तवाना होकर आया तब तक भी शिरीन का ध्यान उसीकी तरफ था। शिरीन ने उसकी तरफ देखकर स्मित किया और अंग्रेज़ी में बोली, 'आप तो वंडरफुल (अद्भुत) हॉकी खेलते हैं।'

'भोला को तो पसीना आ गया। यह उसका पहला मौका था कि किसी लड़की से प्रत्यक्ष बात करे, और वह भी ऐसी सुन्दर लड़की से जिसपर सारा कॉलेज जान देता था। वह छुई-मुई-सा हो गया। अब तक तो वह अपनी औरत से भी बात न कर सका था। उसकी शादी तो हो गई थी, पर गौना नहीं हुआ था इसलिए लड़की सालभर और मायके ही रहने वाली थी।

'शिरीन ने उसे चॉकलेट का एक पैकेट देते हुए कहा, 'तुम बहुत थक गए होगे इसलिए तुम्हारे लिए यह लाई हूं।'

'भोला को लगा कि उसके आसपास की धरती घूम रही है।

'शिरीन ने अपनी लेडी साइकिल उठाई और भोला के साथ निकल पड़ी। दोनों पैदल ही अपनी-अपनी साइकिलें हाथ से ढकेलते हुए बातें करते जाते। प्रेम और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के बारे में शिरीन भोला से ज़्यादा परिपक्व थी क्योंकि उसके घर का रहन-सहन और वातावरण ही वैसा था; अंग्रेज़ों का राज्य था, पारसी लोग यों भी अपने को आधा अंग्रेज़ समझते थे और उन्हींके अनुसार रहा करते। सिनेमा, लव स्टोरी मैगज़ीन, डान्स पार्टियां आदि के कारण शिरीन रोमान्स क्या है यह जानती थी और वह भोला पर आकर्षित हुई तो फिर अपने को न सम्हाल सकी। भोलानाथ बेचारे निपट देहात से आए थे, शिरीन के अग्रेसत्व के कारण अपने आपको कितने दिन रोक पाते? जब ऋषि विश्वामित्र मेनका के कोमलांगों के प्रलोभन से अपने आपको बचा नहीं सके तो बेचारे भोलानाथ की क्या कथा, जो मुश्किल से उन्नीस-बीस वर्ष का अनुभवी युवक था? सो वह शिरीन के साथ सुख-सरिता में बह गया।

'भोलानाथ तो डेअर डेविल (दुस्साहसी) था ही। वह रात को अपने होस्टल से साइकिल उठाकर, दीवाल कूद-फांदकर भाग निकलता और शिरीन के बंगले के पास आकर हलकी सीटी बजाता। शिरीन का सोने का कमरा अलग था। वह भी चुपचाप भीतर का बोल्ट लगाकर अपने बाथरूम के दरवाज़े से सटक जाती। भोला उसे अपनी साइकिल के डंडे पर बिठाकर पांच-पांच सात-सात मील तक जाता, कभी जंगली पहाड़ी पर तो कभी झील के किनारे। कई घण्टों तक चन्द्रमा और तारों की साक्षी में उनका प्रेमालाप चलता और रात को एक-दो बजे वह शिरीन को वापस बंगले पर छोड़ आता और उसी प्रक्रिया से वह भी वापस होस्टल में आ जाता था। भोला का यह पहला प्रेम-प्रकरण था और उसकी मिठास और कसक

वह ज़िन्दगी भर नहीं भूल सका।

'साल भर बाद उसकी पत्नी आ गई तो शिरीन के यहां का आना-जाना बिलकुल टूट गया। क्योंकि कुछ भी हो जाए, भोलानाथ में उसकी उद्दण्डताओं और उच्छृंखलताओं के बावजूद चरित्र का एक विशिष्ट प्रकार का बल था, एक बुनियादी नैतिकता थी।

'पांच साल तक उसका विवाहित जीवन चला कि अकस्मात् उसकी पत्नी एक छोटी-सी बीमारी के बाद चल बसी। भोला फिर अकेला का अकेला रह गया। शिरीन ने फिर उसका पीछा किया और उसे अपने प्रभाव-क्षेत्र में खींच लिया। यह प्रकरण भी पांच-सात वर्ष तक चलता रहा। इस दरमियान भोलानाथ ने प्रस्ताव किया कि हमलोग शादी क्यों न कर लें? पर शिरीन की हिम्मत नहीं पड़ी क्योंकि पारसी समाज में हिन्दुओं से विवाह करने के प्रति भयंकर विरोध था। हाल ही एक घटना हुई थी जिसमें एक पारसी लड़की जो एक पंजाबी युवक से प्रेम करती थी, अपने माता-पिता का विरोध न सहन कर सकी जिसके फलस्वरूप उन दोनों प्रेमियों ने हाथ-पैर बांधकर झील में कूदकर आत्महत्या कर ली थी। कवियों ने उनके लिए कविताएं लिखीं, युवक-युवतियों ने उनके चित्र अपनी किताबों में रखे और उनके आदर्श की दुहाइयां दीं, पर उनका विवाह तो जीते जी नहीं हो सका, मरने के बाद ही हुआ। चूंकि वह लड़की पारसी समाज ही की थी, शिरीन जानती थी कि उसे क्या-क्या प्रताड़ना और मनस्ताप भोगना पड़ा। उसकी यादमात्र से वह कांप उठती थी।

'इस बीच फिर से गांधीजी की आंधी चली। साइमन कमीशन आया। भोला राष्ट्रीय वृत्ति का था ही, भावुक भी था, साइमन कमीशन के बॉयकाट में शामिल हुआ तो पुलिस का एक डण्डा पीठ पर पड़ा। खैर, कोई बात नहीं। लाला लाजपतराय की छाती पर पुलिस की लाठी पड़ी तो अपनी पीठ पर भी पड़ी, इसीकी उसे तसल्ली थी। बाद में गरमी की छुट्टियों में धुन सवार हुई तो अपने एक दोस्त को लेकर गांधीजी के साबरमती आश्रम में दाखिल हुए। वहां बड़े प्रेम से दो महीने रहे। गांधीजी से खूब प्रभावित थे, चरखा, प्रार्थना आदि में शामिल होते थे। आश्रम का यह नियम था कि वहां प्रत्येक को बारी-बारी से पाखाना साफ करना पड़ता था। एक दिन अकस्मात् उन्होंने नोटिस बोर्ड पर पढ़ा कि अगले दिन की टोली में उनका और उनके साथी का नाम है तो रात की गाड़ी से ही डरकर

भाग निकले और घर पहुंचने के बाद गांधीजी को एक लम्बा माफी-पत्र लिखा। गांधी जी ने अपने ही हस्ताक्षर से एक कार्ड लिखा :

'प्यारे भोलानाथ,

तुम एक बड़े कायर आदमी हो।

तुम्हारा सस्नेह—
बापू

'भोलानाथ खिल उठे कि डांट-फटकार में भी बापू का स्नेह अक्षुण्ण है। उस कार्ड को भोलानाथ बरसों तक जतन से रखे रहे।

'इस बीच भोलानाथ ने वकालत पास करके प्रैक्टिस शुरू की। काफी उठा-पटक करने वाले आदमी थे सो अच्छी कमाई कर लेते थे। पर सारी दिनभर की कमाई रात को शिरीन ले जाती। वे दिल से इतने उदार थे कि किसीको नाही करना तो जानते ही न थे। अदालत से ही उनकी कमाई का बंटवारा शुरू हो जाता। मुंशी को देते, तांगे वाले को देते, होटलों में खर्च करते, कोई गरीब मांगता तो उसे देते, विद्यार्थियों की मदद करते, अड़ोस-पड़ोस में कोई दीन-दुखिया हो तो उसका भी ध्यान रखते। इतना सब होने के बाद जो रकम बचती वह शिरीन ले जाती, क्योंकि उसका हाथ-खर्च भी काफी बढ़ गया था, वह अच्छे स्टैंडर्ड से रहती और अच्छे खान-पान व रहन-सहन का उसे शौक था। शिरीन की शादी की बात-चीत भी कई बार चली। एक बड़े पारसी बैरिस्टर ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया, एक बर्फ के कारखाने का मालिक उसपर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार था, फिर टाटा कम्पनी का एक मैनेजर भी उसपर अपना दिल फेंक चुका था। पर शिरीन का मन इनमें से किसीपर नहीं रमा। उसे तो बस भोलानाथ ही पसन्द था, पर उससे शादी करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। अच्छी जोड़ी जमी।

'इधर भोलानाथ के भाई को शिरीन-प्रकरण की खबर लगी तो वे दुबारा भोला की शादी करने पर तुल पड़े। भोला की तनिक भी इच्छा नहीं थी, क्योंकि उसका भी मन यही था कि यदि वह शादी करेगा तो शिरीन से। उधर शिरीन के माता-पिता को भी शक हो गया कि उनकी लड़की का भोलानाथ के साथ अनुचित सम्बन्ध है। उनकी देखरेख सख्त हो गई। शिरीन का बाहर निकलना भी मुश्किल हो गया। उसका त्रास शुरू हुआ। कई दिनों से शिरीन नहीं मिली थी इसलिए उनके वार्षिक दिवस 'पटेटी डे' पर भोलानाथ एक बड़ी केक लेकर उन्हें

भेंट करने गया तो शिरीन की बड़ी बहिन उसपर बिगड़ पड़ी और उसका अपमान-कर उसे घर से निकालने लगी। शिरीन को यह बर्दाश्त नहीं हुआ तो वह अपनी बहिन पर झपट पड़ी और दोनों में इतनी हाथापाई और बालों की खींचातानी हुई कि भोलानाथ महाराज वहां से चुपचाप खिसक गए। बात उसमें यही थी कि बड़ी बहिन की भी शादी नहीं हुई थी, और वह खुद भी भोलानाथ को चाहती थी, पर भोलानाथ उसकी तरफ फूटी आंख से भी नहीं देखता था इसलिए वह शिरीन से भी जलती थी।

'भोलानाथ को यह कॉम्प्लिकेशन (उलझन) तो बाद में मालूम हुआ पर इतना पक्का था कि शिरीन के घर का दरवाज़ा अब उसके लिए बन्द हो गया था। शिरीन पर ज़बर्दस्त पहरा लग गया जिसके कारण उनका मिलना-जुलना भी कम हो गया।

'इतने में भोला के ससुराल में एक शादी हुई, उसकी स्वर्गवासिनी पत्नी के भाई की। उसके बूढ़े ससुर खुद उसे निमन्त्रण देने आए। बोले, 'लाला जी, बिटिया तो अपने भाग से भगवान के घर चली गई पर यह रिश्ता थोड़े ही टूटता है? मेरे घर में लड़के का पहला कार्य है। आपकी सासू जी और सालियों की बड़ी इच्छा है कि आप इसमें ज़रूर शरीक हों।'

'भोला ने फिर थोड़ी बहुत टाल-मटोल की पर उसे अपनी छोटी साली का एक पत्र मिला कि आप किसीकी नहीं सुनते और हम लोगों से अलग-अलग रहा करते हैं जिसका हमें बड़ा दुःख होता है। दीदी तो चली गई पर आपका-हमारा जो सम्बन्ध है वह तो नष्ट नहीं होता। मैं आपसे आग्रह करती हूं कि आप भैया के विवाह में अवश्य आएं। हम सब लोग आपकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे।

'यह उसकी पत्नी की पीठ की बहिन थी, कुसुम! वह अब काफी सयानी हो गई थी। न जाने क्यों भोला उसका आग्रह नहीं टाल सका। वह शादी में शरीक होने चला गया। उन लोगों ने उसका उसी स्नेह और आत्मीयता के साथ आदर-सत्कार किया जैसा कि जेठे दामाद का किया जाता है। इस पारिवारिक प्रेम को पाकर भोला को सुख हुआ। भावुक था, स्नेह का भूखा था, कुछ तसल्ली पा गया।

'भोला ने देखा कि कुसुम अब बड़ी हो गई है और सुन्दर दीखती है। वह भोला की ओर विशेष ध्यान देती थी। जीजा-साली का मज़ाक भी काफी चलता था। भोला एक सप्ताह वहां रहा पर चलते-चलते उसे पक्का भरोसा हो गया कि कुसुम उससे प्रेम करती है और उससे विवाह करने को उत्सुक है। कुसुम की माता को

भी यह सम्बन्ध पसन्द था। भोलानाथ पर उनका बड़ा प्यार था और इस नाते वह और भी दृढ़ हो जाता। पर भोला ने कुछ नहीं कहा और वापस चला आया। उसके जीवन में यह एक विचित्र बात थी कि प्रेम के बारे में हमेशा पहला कदम स्त्रियों ने ही उठाया था। उसकी भावुकता, सहृदयता और वफादारी के प्रति शायद उन्हें सहज आकर्षण हो जाता था।

'महीने भर के बाद ही कुसुम का पत्र आया जिसमें उसने अपना मन्तव्य स्पष्ट रीति से व्यक्त किया था और कहा था कि आप यदि अपने चरणों में मुझे स्थान नहीं देंगे तो मुझे जीने में कोई आकर्षण नहीं रहेगा। इस निराशा की जिन्दगी से तो मर जाना ही अच्छा।

'भोला बड़ी मुसीबत में पड़ गया। किसी कदर खट्ट-पट्ट करके शिरीन से मिला और यह पत्र दिखाया। शिरीन ने एक गहरा निःश्वास लिया और अपनी वही पुरानी असमर्थता जाहिर की कि अभी माता-पिता जिन्दा हैं, वे बड़े दकियानूस हैं, पुराने ख्यालों के हैं, वे अपनी शादी की इसलिए इजाज़त नहीं देंगे कि उनका सोशल बायकॉट (सामाजिक बहिष्कार) हो जाएगा और बुढ़ापे में उन्हें जो दुःख होगा वह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूंगी। उनकी दस लाख की जायदाद में से मुझे कुछ भी हिस्सा नहीं मिलेगा, सो अलग।

'उधर कुसुम के पिता ने भोलानाथ के बड़े भाई को भी इस नये सम्बन्ध के बारे में लिखा। वे अब सीनियर असिस्टेंट कमिश्नर हो गए थे, और इस बात के इच्छुक थे कि भोला की यदि दुबारा शादी हो जाए तो उस पारसी लड़की के साथ की गिट-पिट बन्द हो जाए। भोला भी कुसुम के पत्र से प्रभावित था, और उधर शिरीन की परिस्थिति में भी कोई फर्क नहीं पड़ा। बड़े भाई का ज़ोर भी पड़ा, और भोलानाथ ने दूसरी बार विवाह कर लिया।

'इस पत्नी से भोलानाथ को जितना सुख मिला उतना उसे जीवनपर्यन्त किसी भी व्यक्ति से नहीं मिला। वह सचमुच भोला को जी-जान से प्यार करती थी, और जो नारी इस तरह प्यार करती है वह अपने प्रिय पात्र के लिए क्या-क्या नहीं करती? अपने सर्वस्व का होम करके भी वह उसे सुखी बनाने का निरन्तर प्रयत्न करती रहती है। अपने 'स्व' को, 'अहं' को सर्वथा शून्य बनाकर अपने पति के व्यक्तित्व में पूर्णतः विलीन हो जाने में ही उसे जीवन का परमानन्द प्राप्त होता है।

'कुसुम को भी शिरीन-प्रकरण का हाल मालूम हुआ। भोला ने उससे कुछ न छिपाया। कुसुम ने पूछा कि जब आप लोगों में इतना प्रेम था तो विवाह क्यों नहीं किया ? भोला ने शिरीन के कारण बताए—वही समाज की कट्टरता, माता-पिता का विरोध, सामाजिक बहिष्कार का भय, और पिता की जायदाद का हिस्सा खो जाने का डर।—तो कुसुम ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा कि हिन्दू स्त्री के सामने तो ऐसे कारण किंचिन्मात्र भी महत्व नहीं रखते। वह जिसको हृदय से चाहती है उससे विवाह कर वह तो उसके लिए परम दारिद्र्य को भी खुशी से स्वीकार करती है और दुनिया की बड़ी से बड़ी सुख-सुविधाओं का भी त्याग कर डालती है क्योंकि पति का प्रेम ही उसका सर्वोच्च सुख है। भोला भी नहीं कह सका कि कुसुम गलत कहती है। सचमुच शिरीन और कुसुम में कितना विशाल अन्तर है ?

'कुसुम ने अपने पति के साथ ऐसा बर्ताव-व्यवहार किया कि उसे शिरीन की याद ही न आने पाए। छाया की तरह वह उसके साथ रहती और उसकी इतनी-इतनी-सी सुख-सुविधा का ध्यान रखती।

'भोला बार-बार कहता कि कुसुम के कारण स्वर्ग ही उसके घर में उतर आया था। पर दुर्भाग्य की बात थी कि यह स्वर्ग-सुख केवल बारह वर्ष तक ही टिका और कुसुम बीमार पड़ गई। उसे अंतड़ियों का टी० बी० हो गया। उसी ज़माने में भोलानाथ की मुझसे मुलाकात हुई।

'कुसुम का प्रेम पाकर भोलानाथ आदमी बन गया था, उसे जीवन में रस मिल गया था। दूसरे महायुद्ध का ज़माना था, रोज़गार-धन्धा खूब चलता था, चांदी की नदियां बहती थीं, उसकी प्रैक्टिस अच्छी थी। रोज़ पचहत्तर रुपये से लेकर सौ रुपये तक कमा कर लाता। कमाने में, और, कुसुम पर ही नहीं, सारे परिवार पर खर्च करने में उसे बड़ा उत्साह रहता। घर में अच्छा फर्नीचर था, मोटर थी, सोने के ज़ेवर थे। सभी प्रकार की सम्पन्नता थी।

'कुसुम की बीमारी में भोलानाथ ने पेंतीस हज़ार से भी अधिक खर्च किए। रुपये पानी की तरह बहाए। भुवाली ले गया, मदनापल्ली भी हो आया, सब कुछ किया, पर वह घुलती ही गई। कुसुम को यही चिन्ता थी कि मेरे बाद इनकी देख-भाल कौन करेगा ? शिरीन से उसे कोई आशा नहीं थी क्योंकि उसकी धारणा थी कि वह एक स्वार्थी किस्म की औरत है, और उसके समाज की प्रेम की कल्पना बिलकुल अलग है। उलटे वह भोलानाथ को ही चाट जाएगी, अपने आपको कोई

आंच न लगने देगी।

'भोला भी कुसुम की गिरती हुई हालत देखकर बच्चों-सा रोता। रात-रात भर उसके पलंग के पास जागता बैठता। और झपकी आती तो कुसुम के पैरों के पास ही सिर टिकाकर दस-पांच मिनट को सो लेता। कुसुम गद्गद हो जाती, धन्य हो जाती। मैं अपने पूर्ण सौभाग्य को लेकर अपने पति की गोद में अपना शरीर छोड़ रही हूं इस आनंद में ही वह डूबती-उतराती रहती। मृत्यु का जैसे उसे कोई भय ही नहीं है। सदा-सर्वदा उसके चेहरे पर परम शान्ति और परम आनन्द की दीप्ति ही आलोकित रहती।

'और एक दिन कुसुम ने अपने पति के समस्त परिवार के लोगों को नमस्कार कर सबको रोता-रुलाता छोड़, पति के चरणों में सिर रखकर ही अपना शरीर त्याग दिया। भोलानाथ के जीवन की लक्ष्मी चली गई। उसके घर का दीपक बुझ गया और वह अंधकारभरे संसार में अकेला का अकेला रह गया।'

जब धनंजय से उसकी भेंट हुई, उन दिनों भोलानाथ बहुत निराश था। उसके भाई-भतीजे और परिवार के लोग सब उसे छोड़कर चले गए थे। उसे प्रैक्टिस में कोई दिलचस्पी नहीं रह गई। पत्नी की बीमारी के कारण कई महीनों तक वह अदालत से गैरहाज़िर रहा। उसके मुवक्किल सब तीन-तेरह हो गए। उन्हें वह वापस बुलाना चाहता तो वे जरूर आ जाते क्योंकि वह सचमुच बहुत बुद्धिमान वकील था, क्रिमिनल साइड में उसका हाथ पकड़ने वाला नहीं था, और उसके हाथ में यश था। पर उन्हें वापस बुलाने की उसे कोई इच्छा नहीं थी। प्रैक्टिस में ही क्या, जीवन में ही उसे अब कोई दिलचस्पी नहीं बची थी। मोटर बिक गई थी। जेवर और दूसरा सामान उसके रिश्तेदार ले गए थे। दिल से कर्ण जैसा उदार था, जिसने जो मांगा सो उसे दे दिया। घर से बाहर नहीं निकलता, पागल-सा भीतर ही भीतर चक्कर काटता। कभी कुर्सी पर बैठता, तो पांच मिनट के बाद उठकर टहलने लगता। फिर पांच मिनट बाद बिस्तर पर बैठ जाता, फिर उठता, फिर बैठता। क्या करे क्या न करे कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। उसकी स्त्री का और सर्वस्व का नाश हो जाने के बाद फिर जीवन में बच ही क्या रहा? इतने बड़े मकान में अकेला का अकेला बैठा रहता। बिजली कट गई तो उसे दुबारा लगाने की इच्छा भी नहीं। बस एक मिट्टी का टिमटिमाता दिया जलाकर अकेला ही बैठा रहता।

उसकी यह दशा देखकर धनंजय की आंखों में आंसू आ गए। सोने सरीखा आदमी इस तरह बर्बाद हो रहा है यह देखकर उसका दिल कचोटता। पर वह क्या कर सकता था ? हां, उसे अपना पूरा स्नेह और सहानुभूति देता। दुनिया में जब सब कोई उसे छोड़ गए थे तब भोला को लगा कि धनंजय ही अकस्मात न जाने कहां से टपक पड़ा जो उसे अपने स्नेह की स्निग्धता से जीवन-दान दे रहा है, उसके टिमटिमाते हुए, बुझते हुए दीपक में प्राण-रस डाल रहा है। भोलानाथ ने कई बार कहा, 'उन दिनों तुम न मिलते धनंजय, तो मैं तो खतम हो चुका था। तुम्हारे ही कारण मुझे जीवन में कुछ इंटरेस्ट लौटा। और अब तो यह मुकदमा आ गया है—तुम्हारा और जोशी जी का संघर्ष ! जब साधुत्व और पाशविकता का इतना भयंकर रणक्रंदन मचा हुआ है तो भला मैं कैसे चुप बैठ सकता हूं ? मेरी सहानुभूति तो ज़िन्दगी पर पीड़ितों, त्रस्तों और अभिशप्त व्यक्तियों के साथ ही रही है। खुद भी दुखिया हूं, इसलिए दुखी हृदय के लिए ही मुझे दर्द होता है। अहंकारियों और दुराचारियों से तो मेरी मिनट भर भी नहीं पटती।'

और युगान्तर-केस की पृष्ठभूमि में, धनंजय का स्नेह और ममता पाकर भोलानाथ अपनी व्यथा और विरह-वेदना के अज्ञातवास से निकल पड़ा। और इस युद्ध में ऐसा जूझ पड़ा जैसे जोशी जी ने प्रत्यक्ष उसीपर वार किया हो। इस युद्ध को वह धर्मयुद्ध मानता था, और उसमें धर्मपक्ष का समर्थन करना वह अपना कर्तव्य समझता था।

धनंजय को भी सहारा मिला। वह भी आततायियों के अत्याचारों का शिकार था। एक से दो हुए। सम दुखी साथ मिले और उनकी मित्रता ने एक अपूर्व दिव्यता का स्वरूप ले लिया। और यह दिव्यता अधिक पावन हुई संत देवाजी महाराज के कारण, जिनके चरणों में भोलानाथ ने अपना सारा शोक और दुःख समर्पण करके शान्ति पाई थी। संत देवाजी महाराज को, जो महाराष्ट्र के संतों की परम्परा के एक पहुंचे हुए पुरुष थे, सब लोग बाबाजी कहते थे।

धनंजय स्वतः भी बाबाजी के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठा। पर इन मुकदमों की दौड़धूप के कारण तो उसे दम मारने की फुर्सत ही नहीं थी। उसके स्टेटमेंट ने तो जैसे उसपर चारों तरफ से आग बरसाना शुरू कर दिया।

३९

दिल्ली के नेताओं ने जोशी जी से पूछा कि यह सब क्या माजरा है ? आपके खिलाफ इस तरह का स्टेटमेंट क्यों ?

जोशी जी ने इसका कानूनी उत्तर दिया कि मैं तो इस स्टेटमेंट का मुंहतोड़ जवाब दे सकता हूं और इसकी धज्जियां उड़ा सकता हूं क्योंकि यह शुरू से आखिर तक सरासर झूठ है। पर क्या करूं ? मामला अदालत में विचाराधीन है इसलिए मेरा कुछ कहना गलत होगा। ये लोग सख्त अपराधों में फंस गए हैं इसलिए इतनी चिल्ल-पों मचा रहे हैं। इसमें मेरा तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है—कानून अपना काम स्वयं कर रहा है।

पर दिल्ली को इससे संतोष नहीं हुआ। जोशी जी के राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी भी खामोश नहीं थे। वे आग्रह कर रहे थे कि अभियुक्त धनंजय के वक्तव्य में बहुत सत्यांश है और उसकी यदि जांच की जाए तो असलियत मालूम हो जाएगी।

दिल्ली का दबाव कुछ अधिक हुआ तो जोशी जी के कानूनी सलाहकारों ने एक चाल चली। उन्होंने सोहनसिंह की अदालत में एक अर्ज़ी दी कि चूंकि युगान्तर-केस में एक अभियुक्त ने मुख्य मन्त्री पर गंभीर रूप के आरोप किए हैं, वे उनका जवाब देना चाहते हैं। लिहाज़ा उन्हें इजाज़त दी जाए।

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने सोहनसिंह के कान में यह कहलवा ही दिया था कि इस तरह की दरख्वास्त मंज़ूर हो जाए तो फिर वाद-विवाद का अन्त नहीं होगा। यह तो सिर्फ दिल्ली वालों की तसल्ली के लिए है। जोशी जी की दरख्वास्त तुरन्त नामंज़ूर कर दी गई। उन्होंने फौरन उस ऑर्डर की नकल लेकर दिल्ली भेज दी कि देखिए साहब, मैंने तो अदालत से भी प्रार्थना की थी कि मुझे अपनी सफाई देने का मौका दिया जाए, तो उसने भी इजाज़त नहीं दी। अब बताइए, मैं क्या करूं ?

धनंजय को जब यह मालूम हुआ तो उसने भी एक दरख्वास्त श्री सोहनसिंह मजिस्ट्रेट की अदालत में दी कि आपने मुख्य मन्त्री जोशी जी की प्रार्थना शायद इसलिए अस्वीकार कर दी कि संभवतः उससे अभियुक्त के अर्थात् मेरे बचाव में बाधा पड़े। आपकी यह चिन्ता स्वाभाविक है क्योंकि मैं आपकी अदालत में अभियुक्त हूं और मेरे हितों की रक्षा करना आपका कार्य है। पर मैं आपको इस

उत्तरदायित्व से मुक्त करना चाहता हूं और आपसे निवेदन करता हूं कि आप श्री जोशी जी को जवाब देने की इजाज़त अवश्य दें, बशर्ते कि उसका प्रत्युत्तर देने की छूट मुझे भी हो। मैंने जो लिखा है वह सत्य है और मैं उसकी रक्षा करने के लिए सब समय तैयार हूं।

यह दरख्वास्त भी नामंज़ूर कर दी गई पर उसने जोशी जी के नैतिक बाज़ू को थोड़ा और कमज़ोर कर दिया और धनंजय के पक्ष को कुछ पुष्टि दी। यह दरख्वास्त युगान्तर में छपी। केस की छोटी-छोटी बात भी उसमें छपती। लोगों को उन समाचारों में बड़ी दिलचस्पी रहती। युगान्तर की बिक्री क्रमशः बढ़ती चली। जोशी जी अब चिढ़ गए, झुंझला उठे। आए दिन उन्हें दिल्ली को किसी न किसी बात की सफाई देनी पड़ती। जो मामला अदालत में नहीं था उसकी शिकायतें भी उनके खिलाफ दिल्ली भेजी जाने लगीं और धनंजय के वक्तव्य की पृष्ठभूमि पर उन्हें कुछ महत्व भी मिलने लगा। गिरधारी ने मामाजी की परेशानी देखकर कहा, 'मैं तो आपसे पहले ही कह रहा था कि आप सांप को दूध पिला रहे हैं। पर आप सुनें जब तो?'

रायसाहब रणदमन सिंह भी जोशी जी की परेशानी से ज़रा उद्विग्न थे। भीतर ही भीतर क्रोध से जल रहे थे। बोले, 'अब बदनामी तो हो ही गई है। अब कुछ न करो तो बदनामी है और करो तो बदनामी है। सबसे बड़ी बात तो यही है कि किसी तरह से किसी भी अदालत से धनंजय को किसी जुर्म में सज़ा मिल जाए तभी जोशी जी की पोज़ीशन में कुछ ताकत मिलेगी। या फिर उसे इतना तंग किया जाए कि वह त्राहि-त्राहि पुकार उठे और अपना स्टेटमेंट वापस लेने के लिए तैयार हो जाए। इस काम में लाख रुपया भी लग जाए तो कोई बात नहीं।'

धनंजय के कानों में भी इन रुपयों की भनक पड़ी। उसके एक सहअभियुक्त, जो घर बैठकर अपनी अक्ल छांटा करते थे, इस मोह में पड़ भी गए। वे ज़रा कच्ची मिट्टी के बने थे। रायसाहब रणदमन सिंह के साथ उनकी थोड़ी-बहुत मेल-मुलाकात थी। उन्हींके ज़रिये यह प्रस्ताव आया कि किसी तरह से धनंजय यह स्टेटमेंट वापस ले ले तो एक लाख रुपया मिल सकता है, और हो सकता है कि उसके बाद मुकदमा वापस लेने का मार्ग भी निकल जाए।

धनंजय ने जवाब दिया कि रुपये-टके की कोई बात नहीं है। शासन मुकदमा वापस ले ले तो फिर उस स्टेटमेंट का कोई कारण ही नहीं रह जाता है।

शासन इसके लिए तैयार नहीं था, क्योंकि उससे यही साबित होता कि वक्तव्य सही है, और उसीसे घबड़ाकर मुकदमा वापस लिया गया है। दिल्ली तो इस तरह छाती पर चढ़ बैठेगी।

बड़ी मुश्किल है। ऐसी अंधी गली में फंस गए हैं कि न आगे जाते बनता है न पीछे। यह कम्बख्त धनंजय तो इतना सिरफिरा निकला कि अपना भला-बुरा भी नहीं समझता। उससे कोई निपटे तो कैसे निपटे ?

फिर इसके सिवा और कोई चारा नहीं दिखता कि हमला और भी कड़ा कर दिया जाए और दुश्मनों की कमर तोड़ने की भरसक कोशिश की जाए। फिर वह जिस किसी भी सूरत से हो।

राजा साहब जगपुरा को बुलाकर डिस्ट्रिक्ट जज के इजलास में एक दरख्वास्त और दिलाई गई कि कंपनी के व्यवस्थापकों को काम पर से अलग कर दिया जाए क्योंकि उनके खिलाफ सरकार ने जालसाज़ी, फरेबी और झूठे हिसाब-किताब रखने के लिए मुकदमा चलाया है। और जब तक इस मुकदमे का फैसला नहीं होता तब तक कंपनी की व्यवस्था एक रिसीवर के हाथ में सौंप दी जाए। उनका सारा प्रयत्न इसी बात का था कि किसी तरह अखबार धनंजय के हाथ से निकल जाए। इन मुकदमों के बारे में जो प्रोपेगैण्डा हो रहा है उससे शासन की जितनी बदनामी हो रही है उतनी तो किसी बात से नहीं हो रही है। उसके बल पर युगान्तर पक्ष के लोग जनता की, जाग्रत जनमत की, सरकारी कर्मचारियों की, अदालतों की सहानुभूति बड़ी तेज़ी से प्राप्त कर रहे हैं। अदालत में दरख्वास्त बाद में पेश होती पर उसकी चर्चा पहले अखबार में हो जाती। जिस अदालत में वह दरख्वास्त पेश होती वह भी युगान्तर का पाठक था और उसका मत भी पहले ही से बन जाता था।

धनंजय ने जगपुरा के राजा साहब की इस दरख्वास्त का जवाब दिया कि महज़ मुकदमा दायर करने से कोई गुनाह साबित नहीं हो जाता। जब तक गुनाह साबित नहीं हो जाता तब तक अभियुक्त को निर्दोष ही समझना चाहिए। इसलिए इस दरख्वास्त का कोई प्रयोजन नहीं, और रिसीवर की मांग का तो कोई आधार ही नहीं है। बस, मुकदमा चल निकला, और रिसीवर की बात भी आसमान से टपकी तो बबूल में अटककर रह गई।

इधर रमज़ान खां तमाम युगान्तर प्रेस के रिकार्डों की छानबीन में लगा थ कि किसी तरह और मुकदमों का मसाला मिल जाए। हुज़ूर की मंशा यह थी कि

जितने अधिक मुकदमे बन सकें उतना ही अच्छा और इसी काम पर रमज़ान खां का इनाम और तरक्की मुनस्सर है।

रमज़ान खां ने स्पेशल विभाग की पुलिस की इजाजत लेकर अपने असिस्टेन्ट के रूप में बारह सब-इन्स्पेक्टर मांगे। हरएक को एक पुलिस लॉरी दी गई। हरएक के मातहत एक-एक जमादार और आठ-आठ सिपाही तैनात किए गए। इस समय तो रमज़ान खां जो मांगता था वह उसे मिलता था। उसकी एक खासी बादशाहत खड़ी हो गई थी। वह और उसके आदमी युगान्तर प्रेस में और उसके कागजातों के ढेरों में ऐसे घूमते जैसे चीनी मिट्टी के बर्तनों की दूकान में बैल। जहां मरजी आए वहां जाते, पैरों तले जो खूंदा-खांदी करना हो वह करते। उन्हें सौ खून माफ थे। बस, उनका काम इतना ही था कि कुछ भी करो, युगान्तर के आदमियों को तोड़ो-फोड़ो, उसके कागज़ों की जांच करवाओं और नये मुकदमे दायर कराओ।

पुलिस के इन्स्पेक्टर तफतीश के बहाने प्रेस में आते, कम्पोजीटरों और मशीन-मैनों को धमकाते। कहते, 'बताओ कितना रुपया खाया गया है, हम तुम्हें इनाम देंगे और गवर्नमेन्ट प्रेस में बड़ी नौकरी पर लगा देंगे।' उन्हें पुलिस थाने में बुलाते और घण्टों तक वहां अटकाकर रखते। जिन-जिन दुकानदारों के यहां से युगान्तर प्रेस का कागज या स्टेशनरी का लेन-देन था, वहां तहकीकात की जाती कि क्या कोई कमीशन खाया गया था या कीमतों में कोई गड़बड़ी थी।

रमज़ान खां ने अपनी खाला के चचाज़ाद भाई हिकमत खां को हिसाब के कागज़-पत्रों की जांच कराने के लिए मुकर्रर करवा लिया। वह कोआपरेटिव डिपार्टमेन्ट का रिटायर्ड ऑडिटर था। उसने भी डेढ़-दो महीने छानबीन की, पर कहीं कुछ हाथ नहीं लगा।

गुप्ता पब्लिक प्रॉसिक्यूटर ने सलाह दी कि मैं कलकत्ते से ऑडिटर बुला देता हूं। वहां से दो आदमी आए—सेन और घोषला फर्म के। पन्द्रह दिन के भीतर ही उन्होंने मुख्य-मुख्य कागजों की जांच की। उन्होंने निजी तौर पर गुप्ता को बतलाया कि युगान्तर कम्पनी के एकाउन्ट्स जिस दक्षता और स्पष्टता से रखे गए हैं उतने हमने बहुत कम कंपनियों में देखे हैं। हमने संपादक मिस्टर धनंजय के ट्रैवलिंग (सफर) के वाउचर्स देखे तो पाया कि अक्सर वह थर्ड क्लास और हद हो गई तो सेकेंड क्लास से सफर करता था, और दूसरा खर्च भी बहुत मामूली था। आजकल तो यह देखा जाता है कि फटियल से फटियल कंपनी का मैनेजिंग डायरेक्टर हवाई-

जहाज़ के सिवा बात नहीं करता। फर्स्ट क्लास से कम में तो मामूली कर्मचारी भी यात्रा नहीं करता। इसीसे हमने समझ लिया कि इसमें कोई गड़बड़ नहीं है। हम तो इस पंचायत में नहीं पड़ते।—उन्होंने अपनी फीस तीन हज़ार रखा लिए और चलते बने।

फिर भी रमज़ान खां अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आया। उसने प्रदेश भर के दौरे किए, बड़े-बड़े भत्ते बनाए, युगान्तर के एजेन्टों और शेयर होल्डरों से मिला—सबपर यही आतंक फैलाने के लिए कि युगान्तर ने कयामत ढा दी है और जो कोई उससे ताल्लुक रखता है उसकी खैरियत नहीं। मतलब यह था कि कोई सबूत मिले तो ठीक, और न मिले तो उसका कारोबार ठप करने में कुछ न कुछ मदद हो।

प्रेम-कर्मचारियों को जब उसने थाने में डराया-धमकाया तो धनंजय ने उनसे कहा कि घबड़ाना नहीं। यह सिर्फ चन्द दिनों का खेल है। तुम्हारा कोई बाल बांका नहीं कर सकता। उसने फिर एक वक्तव्य लिखा जिसमें पुलिस के काले कारनामों का चिट्ठा तैयार किया कि किस तरह वे संस्था की कमर तोड़ने के लिए असभ्य, अभद्र और धमकियों से भरा व्यवहार करा रही है। क्या शासन का दिमाग फिर गया है? क्या नागरिकों के दैनिक व्यापार-व्यवहार में इस प्रकार का हस्तक्षेप जायज़ है? या फिर यहां अब कानून और सुव्यवस्था नाम की कोई चीज़ नहीं रह गई है और सारे अधिकार थानेदारों के हाथ में सौंपकर उच्च अधिकारी नींद लेने चले गए हैं? यह वक्तव्य वह अदालत में दे आया और दूसरे दिन 'युगान्तर' में छाप दिया। जनमत क्षुब्ध हो गया। नागरिक स्वातंत्र्य समिति ने पुलिस के इस व्यवहार की निन्दा की और कहा कि तफतीश का यह तरीका नहीं है। यदि 'युगान्तर' वालों के हाथ से कोई गुनाह हुआ है तो उन्हें अदालत में पेश किया जाए पर इस तरह की यन्त्रणाएं देने का उसे क्या अधिकार है?

धनंजय ने एक लेख और लिखा जिसमें रायसाहब रणदमन सिंह का काफी मज़ाक उड़ाया था। वे थानेदार से डी० आई० जी० तक बढ़े थे और अब भ्रष्टाचार-निर्मूलन कमेटी के अध्यक्ष थे। पर उनका दिमाग थानेदार का ही रहा। उनके पास तमाम १४४ रोगों की एक ही रामबाण दवा है कि—थाने पर बुलाओ। कोई नागरिक मुख्य मंत्री पर आलोचना करे तो उसे थाने पर बुलाओ। फ्री सिनेमा नहीं दिखाता तो थाने पर बुलाओ। दिवाली में पटाखों और मिठाई की डाली नहीं

भेजता तो थाने पर बुलाओ। क्लब में यदि ब्रिज पार्टी में हरा देता है तो थाने पर बुलाओ। और अखबार में कोई अप्रिय लेख लिखता है तो थाने पर बुलाओ !

इसका कारण यही है कि थानेदार साहब सोचते हैं कि दुनिया के सभी प्रश्न इंडियन पीनल कोड (ताजीरात हिन्द) से ही हल होते हैं। गीता और रामायण से बढ़कर भी यह ग्रंथ है, ऐसी उनकी धारणा है। पर उससे एतराज़ करना भी मुश्किल है क्योंकि थानेदार साहब की इस धारणा के पीछे एक जायज़ कारण है :

जिस समय ब्रह्मा ने सृष्टि निर्माण की और वे अक्ल बांट रहे थे तो थानेदार साहब थाने में बैठे ऊंघ रहे थे। जब उनके सी० आई० डी० ने आकर खबर दी की हुज़ूर, ब्रह्मदेव अक्ल बांट रहे हैं, आप भी जल्दी जाकर कुछ ले आइए ताकि आपका थाना भी अच्छा चले। पहले तो ऊंघ में थे इसलिए फौरन बोले, 'उन्हें थाने पर बुलाओ।' पर बाद में सी० आई० डी० ने बताया कि हुज़ूर भगवान ब्रह्मदेव तो थाने पर आने से रहे, उन्होंने ही यदि उलटे बुलावा भेज दिया तो जिन्दगी का किस्सा खतम है। थानेदार की समझ में बात आ गई। वे ज़रा झुके और ब्रह्मदेव महाराज के यहां पहुंचे। उस समय सारी अक्ल बंट चुकी थी और बाकी कुछ बची नहीं थी। थानेदार साहब ने बड़ी मिन्नतें कीं कि भगवन्, हमें भी कुछ दे दीजिए, वरना खाली हाथ लौटूंगा तो बड़ी बेइज़्ज़ती होगी। ब्रह्मदेव ने कुछ देर सोचकर एक मोटी किताब उठाई और थानेदार साहब के हाथ में टिका दी और कहा, 'यह इंडियन पीनल कोड ले जाओ। इससे तुम्हारा काम चल जाएगा।'

बस, तबसे थानेदार साहब को सिवा इस बात के और कुछ सूझता ही नहीं है। वे अब हमारे प्रदेश के शासन के सबसे आला सलाहकार हैं। इसीलिए ऐसा लगता है कि हमारे सूबे में अब प्रजातान्त्रिक संविधान नहीं चल रहा है, बल्कि इंडियन पीनल कोड चल रहा है, और यह प्रदेश अब एक स्वशासित राज्य नहीं रह गया है, विशाल थाना बन गया है।

इसी तरह के व्यंग्य, वक्रोक्ति तथा उपहास से भरे हुए दो-तीन लेख और निकले जिनमें पुलिस और उसके तौर-तरीकों का गहरा मखौल उड़ाया गया था। जहां कोई पुलिस का अधिकारी दिखता तो लोग थानेदार कहकर उसका मज़ाक उड़ाते। अपनी चुस्त यूनिफार्म की शान-शौकत के बावजूद भीतर ही भीतर वह ढीला पड़ जाता।

चौथे ही दिन रमज़ान खां को हुक्म मिला कि अब तफतीश बन्द करो, कोई

मुकदमा दायर कर दो।

धनंजय और उसके साथियों पर गवर्नमेंट प्रेस की छपाई के सिलसिले में दफा ४२० में एक मुकदमा और चलाया गया। धनंजय की फिर गिरफ्तारी हुई। इस बार खुद रमज़ान खां गिरफ्तारी बजाने गया और कहा कि तीन हज़ार की ज़मानत दीजिए, मैं छोड़ देता हूं।

धनंजय ने कहा, 'आज इतवार है, छुट्टी का दिन है, किसके पास जमानत दिलाने के लिए जाऊं? मेरे पर्सनल बॉण्ड पर छोड़ते हो तो मैं लिख देता हूं।'

रमज़ान खां ने कहा, 'सो तो नहीं चल सकता। किसीसे ज़मानत तो दिलानी ही पड़ेगी।'

'मैं और किसीके पास ज़मानत दिलाने नहीं जाता। चलिए, बिस्तर बांधकर आपके साथ थाने पर चलता हूं। वहीं चैन से कटेगी।'

वह घबड़ा गया क्योंकि जनमत और प्रोपेगैण्डा के कारण पुलिस को ताज़ी हिदायतें मिली थीं कि धनंजय के साथ इज्ज़त से पेश आना और सिर्फ अपनी ड्यूटी बजाना—कोई सीन मत खड़ा कर देना। पुलिस के अभद्र तरीकों से तटस्थ लोग भी क्षुब्ध हो गए थे और कई लोगों ने तो युगान्तर के कटिंग दिल्ली भेजकर पूछा था, 'यह प्रजातन्त्र है या पुलिस-तन्त्र।' पुलिस महकमा जोशी जी की मातहत ही था, इसलिए वे सारे कटिंग वापस उनके पास आए जिनका उन्हें जवाब देना पड़ा। तबसे पुलिस की नीति बदली और उसने अपना हाथ खींच लिया। अब उसका पैंतरा यह था कि किसी तरह एक मुकदमा और दायर कर दो और जैसे बने वैसे कम से कम एक बार तो सजा दिला ही दो।

पर अब तो धनंजय के अड़ जाने से फिर एक नई मुसीबत खड़ी हो गई। यदि उसे पुलिस की काली मोटर में थाने या जेल में ले जाता हूं तो फिर एक तमाशा होगा और पब्लिक चिल्लाएगी और पुलिस बदनाम होगी, और मैं 'टैक्टलेस' अफसर हूं यह ठप्पा मुझपर लगेगा। उसने धनंजय को समझाने की कोशिश की :

'साहब, यह तो महज ज़ाप्ते की बात है, एक फॉर्मेलिटी है। आप किसीको भी खड़ा कर दें, मैं उससे ज़मानत ले लूंगा।'

'मैं भला किससे जमानत दिलाऊं? मैं आपको अपनी ड्यूटी करने से कहां रोकता हूं? मैं तो आपके साथ थाने पर या जेल, जहां कहें, चलने के लिए तैयार हूं।

आप शायद जानते नहीं कि मैं एक बार तीन-साढ़े तीन साल की जेल काट आया हूं।'

रमज़ान खां निरुत्तर हो गया। बोला, 'आप सोच लीजिए। मैं थोड़ी देर बाद और किसीको भेजता हूं। तब तक कोई ज़मानतदार तैयार कर लीजिए।' उसकी धनंजय को जेल में ले जाने की हिम्मत न हुई।

रमज़ान खां ने ऊपर जाकर रिपोर्ट दी कि साहब वे तो अजीब आदमी हैं। कहते हैं, ज़मानत नहीं दिलवाना, जेल जाने को तैयार हूं। मैं भला इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी कैसे ले सकता हूं? मैं तो सी० आई० डी० का आदमी ठहरा। आप यह गिरफ्तारी ज़िला पुलिस को दे दीजिए।'

ज़िला पुलिस वाले जनमत को ज़्यादा अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने एक सभ्य और शिष्ट व्यवहार वाले सब-इन्स्पेक्टर को तैनात किया कि एडिटर साहब के दोस्त भोलानाथ एडवोकेट हैं, उनके पास पहले जाओ और उन्हें सब चीज समझाकर उनका सहयोग ले लो तो वे आसानी से ज़मानत दिला देंगे। पर वहां रमज़ान खां को हर्गिज़ मत भेजना।

उस सब-इन्स्पेक्टर का भोलानाथ से रोज़ अदालत में काम पड़ता था। उसने अपनी अड़चन बतलाई और कहा कि किसी तरह से मेरी मदद कीजिए और ज़मानत दिला दीजिए। हम लोग उन्हें जेल तो नहीं ले जाना चाहते।

भोलानाथ ने भी उन्हें डांटा, 'तुम लोग तो उल्टे-सीधे काम करते रहते हो। आज इतवार है—आज ही भला वारण्ट बजाने की क्या ज़रूरत थी? किसीके घर में जाकर तुम क्या उसकी इज़्ज़त लेना चाहते हो? ऑफिस के दिन वारण्ट बजाते तो दो मिनट में काम हो जाता—वहीं कोई भी ज़मानतदार खड़ा हो जाता।'

'हां साहब, हम तो ऐसा ही करते। पर यह तो सी० आई० डी० ने किया और रमज़ान खां का ऊपर से सीधा सम्बन्ध है इसलिए हम भी एतराज़ नहीं कर सकते। पर आप ही से कहता हूं, आप किसीसे कहिए मत, अभी कप्तान साहब का फोन आया है कि इस काम के लिए रमज़ान खां को हटा लो।'

ज़िला पुलिस रमज़ान खां के तौर-तरीके से नाराज़ थी। गड़बड़ वह करता था, और बदनामी तमाम पुलिस की होती, और ज़िला पुलिस को अपना रोज़मर्रे का काम करना मुश्किल हो जाता। उसे तो कदम-कदम पर पब्लिक से काम पड़ता था। रमज़ान खां को मुंह की खानी पड़ी इसके लिए वह भीतर ही भीतर

खुश थी।

भोलानाथ ने सब-इन्स्पेक्टर से कहा, 'लाग्रो तुम्हारा वारण्ट ग्रौर सिक्यूरिटी बॉण्ड, ग्रौर तुम यहीं बैठो। मैं ग्रभी इसकी खानापूरी करके ला देता हूं। ग्ररे, शंकरलाल, इनके लिए चाय बनाना।'

दारोगा का भोलानाथ पर पूरा विश्वास था। उसने कागज़ दे दिए, हालांकि इसमें खतरा था। भोलानाथ ने ग्रपने एक पड़ोसी को रिक्शे में बैठाला ग्रौर धनंजय से गिरफ्तारी वारण्ट ग्रौर ज़मानत पर दस्तखत कराकर ले ग्राया। उसने धनंजय से कहा :

'तुमने रमज़ान खां पर ग्रच्छा नमदा कसा। म्यां की फोटू खिंच गई। वह इस काम से हटा लिया गया है।'

४०

धनंजय की दुबारा गिरफ्तारी के समाचार युगान्तर में छपे, जिन्हें पढ़कर जनमत ग्रौर भी प्रक्षुब्ध हो गया। शासकीय पार्टी के लोग भी कहने लगे कि यह ग्रब ज़्यादती हो रही है ग्रौर इसमें हम लोग बदनाम हो रहे हैं। पर जोशी जी से कहने की किसीको हिम्मत नहीं होती थी क्योंकि धनंजय के स्टेटमेंट में उनपर जो सीधा ग्राक्रमण था उसके बाद वे इतने भरे बैठे थे कि जो इस विषय पर बात निकालता उसीपर भड़क उठते। रायसाहब रणदमन सिंह भी कुछ सिमट गया। उसके तौर-तरीकों ने लाभ पहुंचाने की बजाय नुकसान ही पहुंचाया। युगान्तर के कर्मचारियों में ग्रातंक ग्रौर घबड़ाहट फैलाने के बाद तथा उसके नियमित प्रकाशन में कुछ व्यत्यय खड़ा करने के बाद उसकी योजना यह थी कि धनंजय को रात को कहीं पकड़कर गुण्डों से पिटवा दिया जाए। पर पुलिस की सरगर्मियों की जो प्रतिक्रिया हुई उसे देखकर वह सहम गया ग्रौर यह बात उसकी समझ में ग्राने लगी कि धनंजय का बाल भी बांका हुग्रा तो लोग उसका दोषारोपण सीधे मुख्य मंत्री पर करेंगे क्योंकि पुलिस महकमे के चार्ज में वही हैं। उलटे उसे यह खौफ हो गया कि इस वातावरण में यदि उसके छदामी

सरीखे व्यावसायिक प्रतिस्पर्धी कहीं उसे व्यक्तिगत द्वेष के कारण या दुश्मनी के लिए पिटवा देंगे तो भी दोष हमीं पर आएगा। इस चिन्ता में उसने खुफिया तौर पर इतना इन्तज़ाम कर दिया कि साधारण पोशाक में दो सिपाही धनंजय के मकान के आसपास गश्त लगाते रहें और उसके व्यक्तित्व की हिफाजत करते रहें। उसकी हलचलों की वे रिपोर्ट भी दे सकें तो ठीक है, पर वह उनका मुख्य काम नहीं है।

इस तजवीज़ की फुसफुसाहट पुलिस विभाग में सब जगह पहुंच गई। उनकी धारणा हो गई कि अब पुलिस का मोर्चा वापस लिया जा रहा है। विभाग के अधिकांश कर्मचारी इस घटना से खुश थे क्योंकि रणदमन सिंह और रमज़ान खां के हुड़दंग से वे भी परेशान थे।

अब गिरधारी और रणदमन सिंह की सारी चालें अदालत के मोर्चे पर केन्द्रित हो गईं। धनंजय के खिलाफ मुकदमों की संख्या बढ़ती गई। उसकी पेशियां पास-पास रखी जातीं ताकि धनंजय को ज़्यादा समय तक अदालत में ही अटकना पड़े और वह युगान्तर का काम न देख सके। यह सच था कि महीने के बीस दिन उसे अदालत में हाज़िर होना पड़ता और बाकी का समय मुकदमों की तैयारी में वकीलों के घर के चक्कर काटने में खर्च होता। सरकार पक्ष उसे एक मिनट की फुर्सत भी नहीं देना चाहता था। वह चाहता था कि एक न एक मुकदमा जल्दी समाप्त हो और उसे सज़ा सुना दी जाए। उस सज़ा की खबरें संवाद-एजेन्सी के ज़रिये अखिल भारतीय समाचारपत्रों में छपा दी जाएंगी। धनंजय का मुंह काला हो जाएगा। जब तक वह ऊपर की अदालतों से छूट नहीं जाता तब तक तो उसका किस्सा खतम हो जाएगा। जालसाज़ी और फरेबी का जुर्म साबित हो जाने पर कानूनन वह 'युगान्तर' के संचालन से भी हटा दिया जाएगा। जो अखबार आज उसका सबसे बड़ा शस्त्र और सबसे बड़ी ढाल बना बैठा है वह उसके हाथ से छिन जाए तो उसका दम उखड़ने में क्या देर लगेगी?

धीरे-धीरे पुलिस और सरकार का कानूनी फंदा उसके गले के आसपास कसता जा रहा था। उसपर ज़्यादा तनाव पड़ने लगा। परिश्रम तो दिन-रात करना पड़ता। खाना और सोना भी हराम हो गया। रात को एक बजे तक उसे कानूनी कागज़ों से उलझना पड़ता था। सुबह वकीलों के घर जाता, दिनभर कोर्ट में बीतता, शाम को अदालत की कार्रवाई की रिपोर्ट युगान्तर के लिए लिखनी

पड़ती, और फिर किसी तरह दो-चार कौर मुंह में ठूंस लेने के बाद फिर वकीलों से माथापच्ची करने जाना पड़ता। दूसरे अभियुक्तों ने सारे सूत्र उसीके हाथ में छोड़ दिए थे। भोलानाथ को छोड़कर उसका कोई सच्चा मददगार नहीं था।

इस युद्ध को शुरू हुए एक साल होने को आया था। सरकारी पक्ष के पास तो सभी प्रकार की सुविधाएं थीं, अनेक मददगार थे। जो भी खर्च होता सरकारी खजाने से होता था। व्यक्तिगत रूप से जोशी जी पर कोई बोझ ही नहीं था। यहां तो करीब-करीब सभी कुछ धनंजय को करना पड़ता और सभी खर्च का भार 'युगान्तर' को उठाना पड़ रहा था। सात-आठ मुकदमे साथ ही चल रहे थे। वह खुद काम-धन्धे की तरफ तो देख ही नहीं पाता था। एकाध घण्टा ऊपरी-ऊपरी तौर पर मुख्य बातों को देख लेता, बाकी बेचारे उसके कर्मचारी करते थे।

एकाएक उसने सुना कि दफा ४२० का केस कोर्ट में पेश होते ही सरकार ने हुक्म निकाल दिया कि 'युगान्तर' के सारे सरकारी विज्ञापन बन्द कर दिए जाएं। महज़ मुकदमे का दायर हो जाना जुर्म का साबित होना नहीं है, और इस स्थिति में इस तरह के हुक्म के लिए कोई न्यायोचित कारण नहीं था। पर न्याय-अन्याय की कौन सुनता है? यहां तो सारा काम ज़ुल्म और ज़बर्दस्ती से चल रहा है। सीधी नग्न लड़ाई चल रही है, धर्मयुद्ध तो है ही नहीं, कम से कम सरकार के लिए तो है ही नहीं। जो भी हथियार मिले चलाओ, आगे-पीछे मत देखो।

अब तक के वारों में यह सबसे भयंकर था क्योंकि यह 'युगान्तर' के आर्थिक जीवन का गला ही घोंटने वाला था। इससे अखबार को तीन हज़ार रुपये महीने का नुकसान होने वाला था। कानूनी लड़ाई में दो हज़ार रुपये महीने का खर्च था। जो अखबार किसी तरह जमा-खर्च का जोड़-तोड़ मिलाकर जनता की सेवा कर रहा था, वह पांच हज़ार का नुकसान कितने दिन भरेगा? और इस लम्बी लड़ाई में यदि वह मुकदमे जीत भी जाए, क्योंकि वे झूठे और बनावटी हैं, फिर भी उसके पहले संस्था आर्थिक बोझ के कारण ही बैठ जाए तो क्या फायदा? समाचारपत्र का यह आकस्मिक मरण तो सारा खेल खतम कर देगा। हे भगवान! कैसे नैया पार लगेगी?

उसने यह भी सुना कि प्रदेश की सरकार इन्हीं कारणों को पेश करके केन्द्रीय सरकार को लिख रही है कि वह भी अपने विज्ञापन बन्द कर दे। ऐसा हुआ तो कल का मरण आज ही सिर पर आ खड़ा होगा।

इस भयंकर स्थिति में भी उसे सबसे बड़ा दुःख इस बात का हुआ कि उसके सहयोगी समाचारपत्रों ने उसका साथ नहीं दिया। एक तो वे मुख्य मन्त्री की ताकत से घबड़ाते थे, और दूसरा उन्हें यह प्रलोभन दिया गया था कि 'युगान्तर' से वापस लिए हुए सारे विज्ञापन दूसरे समाचारपत्रों में वितरित कर दिए जाएंगे।

आज एक पत्र के पीछे सरकार हाथ धोकर पड़ी है, उसका रक्त पिए बगैर रहेगी नहीं। वह अकेला अपने संरक्षण की ही नहीं पर स्वतन्त्र पत्रकारिता के संरक्षण की लड़ाई लड़ रहा है। पर शासन का आतंक इतना है कि दूसरे पत्रकार तटस्थ होकर एक सहयोगी की पल-पल, तिल-तिलकर होने वाली मृत्यु को निर्विकार अन्तःकरण से देख रहे हैं। अपनी ज़रा-सी आवाज़ नहीं उठाते, उंगली उठाना तो दूर रहा। फौजदारी मुकदमों में तो उनका कुछ कहना ठीक नहीं था, पर इस विज्ञापन के ऑर्डर के बारे में क्या कहा जाए? यदि धनंजय ने फरेब किया हो तो सज़ा उसे मिलनी चाहिए। व्यक्ति के दोष के लिए संस्था को दण्ड क्यों? उस बेचारे समाचारपत्र ने क्या किया? हां, उसके किसी लेख या प्रकाशन पर मुकदमा चलाकर उसे सज़ा दी जाए तब की बात कुछ समझ में आ सकती है। पर सरकारी प्रेस की छपाई के मामले में, जिसमें व्यक्तिगत रूप से धनंजय और उसके कुछ कर्मचारी आते हों, युगान्तर का क्या सम्बन्ध आता है? और दलील के लिए मान भी लिया कि सम्बन्ध आता है, तो जुर्म साबित करने के पहले ही दण्ड कैसे दिया जा सकता है? इस तरह तो कोई भी सब-इन्स्पेक्टर किसी भी समाचारपत्र के सम्पादक के खिलाफ कोई भी फौजदारी का मुकदमा दायर कर सकता है और सरकार को उसके विज्ञापन बन्द करने का कारण मिल सकता है। समाचारपत्र के अस्तित्व और स्वातन्त्र्य पर यह कितना भयंकर हमला है! और चूंकि वह अप्रत्यक्ष है, कितना खतरनाक है!

पर इसके खिलाफ भी उसके सहयोगी आवाज़ उठाने के लिए तैयार नहीं हैं। सरकार का भय और विज्ञापनों का लोभ उनकी कलम और ज़बान पर ताले बांधे है। हे प्रभु, इस देश में प्रजातन्त्र कैसे चलेगा? कैसे पनपेगा? उसकी स्वस्थ परम्पराएं कैसे स्थापित होंगी? ये मित्र यह भी नहीं सोचते कि आज 'युगान्तर' की बारी है, कल हमारी भी आ सकती है। 'युगान्तर' जैसा आदर्शनिष्ठ और लड़ाकू अखबार यदि इसमें नहीं टिका तो दूसरे अखबारों की क्या बिसात?

इस घटना से धनंजय को बड़ी ठेस लगी। वह अपने आपको अकेला और असहाय अनुभव करने लगा।

'गीता, अब क्या होगा ? भगवान कैसे हमारी लाज रखेंगे ? मैं बर्बाद हो जाऊं इसकी चिन्ता नहीं है, पर जिन तत्वों और आदर्शों के लिए मैं लड़ रहा हूं उनकी क्षति हुई तो सार्वजनिक जीवन का कितना नुकसान होगा, जनता की शक्ति का कितना ह्रास होगा, आततायियों का हौसला कितना बढ़ जाएगा ?'

गीता ने कहा, 'कुछ नहीं होगा। सब ठीक होगा। यही तो अग्नि-परीक्षा का समय है। जब चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा दिखता है, उसीमें प्रकाश की किरण समाई हुई होती है। प्रकाश के पूर्व का अन्धकार ही तो सबसे घनघोर होता है। धीरज रखो, और अपनी आस्था और विश्वास को रंचमात्र भी डिगने मत दो। मुझे अटूट श्रद्धा है कि योगेश्वर कृष्ण हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे।'

उसी क्षण भोलानाथ के नौकर शंकर ने आकर खबर दी कि बाबा जी आए हैं। वकील साहब ने आपको तथा माताजी को तुरन्त बुलाया है।

बाबाजी ! संत देवाजी महाराज ! विधि की भी क्या घटना है ? और निराशा के समय ही आशा की नई किरण और सन्तों के दर्शन !

धनंजय और गीता ने हाथ-पैर धोए, कपड़े बदले और ठाकुर जी के सामने कपूर और ऊदबत्ती लगाकर साष्टांग दण्डवत कर वे तुरन्त भोलानाथ के यहां जाने के लिए निकल पड़े।

४१

भोलानाथ ने धनंजय और गीता का बाबाजी से परिचय कराया, 'बाबाजी, ये मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। आजकल एक घोर अग्नि-परीक्षा दे रहे हैं। कई दिनों से आपके दर्शनों के इच्छुक थे।'

धनंजय और गीता ने झुककर उन्हें प्रणाम किया तो बाबाजी ने दोनों हाथ जोड़कर और अपना माथा धरती पर टिकाकर उन्हें नमस्कार किया। धनंजय उनकी इस शालीनता और विनम्रता को देखकर दंग रह गया।

नीचे एक चटाई बिछी थी पर बाबाजी चटाई छोड़कर इसके एक कोने में ज़मीन पर ही बैठे थे। उन्होंने धनंजय को चटाई पर बैठने का आग्रह किया। वह संकुचित होकर एक कोने में बैठ गया।

और फिर धनंजय ने बाबाजी की ओर देखा, उनकी आंखें मिलीं।

उनकी आंखों में प्रेम और वात्सल्य का भाव ओत-प्रोत था। उनमें एक सौम्य दीप्ति थी, एक प्रकार का तेज था, जिसके कारण उनके नेत्र चमक रहे थे। उम्र होगी साठ-पैंसठ के बीच, पर चेहरा स्वाभाविक आभा से दमक रहा था। उनका वर्ण भी काला-सांवला था, कालेपन की तरफ़ विशेष झुकता था। सिर पर एक टोपी थी जिसपर एक गुलूबन्द साफे की तरह बांधा हुआ था। बदन में एक अंग-रखा था जिसपर एक काले और सफेद चौखड़ी की चादर ओढ़ी हुई थी। धोती भी कुछ तंग और ऊंची ही थी, पास ही उनकी लाठी रखी हुई थी। उनका लिबास देखकर तो कोई उन्हें एक किसान ही कहता।

पर जब उनका दन्त-विहीन चेहरा मुस्कराता तो ऐसे लगता जैसे फूल झर रहे हों। परम सात्विकता, परम स्नेह एवं आत्मीयता, परम शान्ति और परम आनन्द उसपर खिल उठता था। ऐसे लगता जैसे वे अपने अन्तःकरण के समस्त प्रेम और वात्सल्य भाव से ही मुसकरा रहे हैं। कैसा प्यारा उन्मुक्त उनका हास्य था!

यों सर्वसाधारण मानदण्डों के अनुसार उन्हें सुन्दर तो कदापि नहीं कहा जा सकता था। पर उनके निर्मल और खुले हास्य में, उनके प्रत्येक हाव-भाव में, आत्मा का अपार सौन्दर्य जगमगा उठता था। साक्षात् प्रेम की प्रतिमूर्ति! धनंजय को एकाएक गांधीजी की याद आ गई।

गांधीजी को भी धनंजय ने सेवाग्राम में निकट से देखा था, उनकी प्रार्थनाओं में शामिल भी हुआ था, दो-एक बार उनसे आमने-सामने बैठकर चर्चा करने का अवसर भी उसे मिला था। बस उनमें भी यही पाया था—न रूप न रंग, पर आन्तरिक सौन्दर्य का निस्सीम पुंज, वही प्रेम से लबालब भरा हुआ उन्मुक्त हास्य!

बाबाजी ने बाद में चलकर उसे बताया था कि वे भी गांधीजी के पास सेवा-ग्राम में एक महीने रहे थे। गांधीजी को संतों और भक्तों की संगति में आनन्द आता था, और उन्हें वे कई दिनों तक बिना किसी दिखावे के या चर्चा-चौकसी के अपने

आश्रम में रख लेते थे। अन्य आश्रमवासी शायद उन्हें पहचान भी नहीं पाते हों, पर गांधीजी को असली साधु-संतों की पहचान थी और वे उनकी कद्र करते थे, उनकी संगत में बड़ा आनन्द लेते थे।

बाबाजी को देखकर उसे राष्ट्रपुरुष का स्मरण आ गया, जो अब देह छोड़कर इस पुण्यभूमि से चला गया था, यह कहकर कि मैं तो अपनी कमाई रख के चला, अब यह तुम्हारी इच्छा की बात है कि उसे सम्हालो या उड़ाओ।

धनंजय ने भी काफी साधु-संत देखे थे, पर इतनी विनम्रता, इतना सौजन्य उसने कहीं नहीं पाया था। अधिकांश संतों में एक श्रेष्ठत्व की और अहंता की भावना रहती और लोग उनके चरण छूकर प्रणाम करते तो वे खड़े-खड़े ही उसे स्वीकार करते। यहां बाबाजी पैर छूने देना तो दूर रहा स्वयं इतना झुककर प्रणाम करते हैं कि उनका सिर और भुजाएं धरती का ही स्पर्श करती हैं। अद्भुत बात है !

धनंजय को उनके इस प्रेमपूर्ण स्वागत में ही बड़ा आश्वासन और सुख मिला। उसके दग्ध अन्तःकरण को, जो अभी कुछ देर पहले व्यथा से छटपटा रहा था, बड़ी शान्ति मिली। बाबाजी ने गीता की तरफ भी उसी प्रेम और आत्मीयता की भावना से देखा जैसे वे मां के दर्शन कर रहे हों, सब कुछ देख-परखकर समझ गए हों। और उन्होंने अपनी गर्दन इस तरह हिलाई जैसे वे अपनी दृष्टि से ही उन दोनों को बांध लिया।

भोलानाथ ने कहा, 'बाबाजी, ये आजकल जीवन और मरण के संघर्ष में जूझ रहे हैं। इनके खिलाफ बड़ी-बड़ी सत्ता है, राजकाज है, पुलिस है, धन है और इनके साथ भगवान के सहारे के और कुछ नहीं है। बड़ा कठिन समय है।'

'हां रे भाई ! करने दो उन्हें अपने मन की। कितना करते हैं, करने दो ! ऊपर देखने वाला भगवान तो बैठा ही है। उसे सब कुछ दिखता है। अंधेरे में छिपकर भी तुम कुछ करो तो वह भी उसे दिखता है। अपना-अपना भोग तो सबको कम-ज्यादा भोगना ही होता है, पर बाद में भगवान सबकी परख कर लेता है और सब ठीक कर देता है। समय तो लगता ही है रे भाई।'

'पर ये तो सबके कल्याण की भावना ही रखते आए हैं···' भोलानाथ ने कहा, 'पर इनके पल्ले ही इतना दुःख-भोग क्यों पड़ा है ? और जो दिन-दहाड़े लूट-खसोट करते हैं वे तो गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।'

'इनका भी कोई दोष रहा होगा भाई ! असंगत की संगत कर ली होगी, तभी यह कष्ट सिर पर आ पड़ा । आदमी को हमेशा समानधर्मियों से ही मित्रता करनी चाहिए।'

'यह बात आपने ठीक कही बाबाजी।' धनंजय एकदम बोल उठा 'मेरे हाथ से यही दोष हुआ कि मैंने समानशील लोगों से सख्य नहीं किया, आदमियों की ठीक से पहचान नहीं की। पर जिस समय मैंने यह किया उस समय मेरी दृष्टि स्वार्थ की नहीं थी; सेवा की थी, परमार्थ की थी। वैसे स्वार्थ तो सबके साथ लगा रहता है, और परमार्थ में भी स्वार्थ छिपा रहता है । पर मेरी दृष्टि में परमार्थ प्रथम था और स्वार्थ गौण था । फिर भी गलती तो हो ही गई और उसका प्रायश्चित्त भोगना भी आवश्यक है । सो भोग रहा हूं । पर एक ही चिन्ता है बाबाजी—मेरा कुछ भी हो जाए पर जिन मूल्यों को लेकर मैं लड़ रहा हूं उनकी पराजय हो गई तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा।'

'नहीं, उनकी पराजय तो नहीं होगी; और तुम्हारी पराजय भी नहीं होगी क्योंकि तुम्हारा हृदय शुद्ध है । पर आखिर तुम्हारे शत्रुओं ने भी तो पूजा-पाठ करके पुण्य-बल कमाया है । उसका भी आधार बड़ा था तभी तो वे राज्य-सुख भोग रहे हैं। पर अब उनका पुण्य क्षीण हो रहा है, और इस कष्ट-भोग के कारण तुम्हारा बढ़ रहा है । इसलिए तुम्हारी पराजय तो कभी नहीं होगी । पर वह काम धीरे-धीरे, शान्ति से होगा। हम तो उनका भी अकल्याण नहीं चाहते । हम तो यही चाहते हैं कि उन्हें भी भगवान सुबुद्धि दे।' बाबाजी ने कहा।

'कभी-कभी हृदय बड़ा व्यथित हो जाता है बाबाजी ! समझ में ही नहीं आता कि ऐसा क्या भयंकर अपराध हो गया है जो इस तरह आग की भट्ठी में तपना पड़ रहा है।' धनंजय बोला।

'सोने को ही तो भट्ठी में तपना पड़ता है रे भाई ! सीसे को यह सौभाग्य कहां? रामचन्द्र जी तो स्वयं भगवान थे । उनका वनवास कहीं टला ? और पंच-पाण्डव ? साक्षात् धर्मराज उनके साथ थे और कृष्ण भगवान का उन्हें सहारा था, फिर भी उन्हें कैसे दर-दर घूमना पड़ा ? जो धर्म के लिए लड़ते हैं उनका तो ऐसा ही होता है रे भाई ! पर आखिर में हमेशा धर्म की ही जीत होती है। मुझको तो इसमें कुछ समझ नहीं आती है, मैं तो एक अनाड़ी आदमी हूं । जो कुछ करते हैं सो तो भगवान करते हैं।' उन्होंने कहा और फिर एक बार माथा झुकाकर पूर्ववत् नमस्कार

किया जिसके फलस्वरूप सामने जो लोग बैठे थे उन्होंने भी उसी प्रकार नमस्कार किया।

'बाबाजी, इस कष्ट-निवारण के लिए क्या मुझे कुछ करना चाहिए? जब हृदय का मंथन तीव्र हो जाता है तब मन बड़ा घबड़ाने लगता है।' धनंजय ने पूछा।

'जब कोई कष्ट हो तो हमारे नाम की एक अगरबत्ती और थोड़ा-सा कपूर लगा दिया करो और भगवान का स्मरण किया करो। बस, करने-धरने वाला तो वही है; मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता।' ऐसा कहकर बाबाजी ने लाठी उठाई और चलने को उद्यत हुए।

धनंजय ने उठते-उठते पूछा कि आपके दर्शनों से मुझे बड़ी शांति मिली। अब फिर कब दर्शन होंगे?

'आप हमारे गांव में आइए। शान्ति से एक-दो दिन रहिए। आप तो हमारे भगवान हैं—पिताजी हैं, माताजी हैं। मैं तो आपका लड़का हूं। आप देखिए तो सही आपका लड़का किस जंगल में पड़ा है?'

धनंजय और गीता इस अजीब सौजन्य के सामने अपने आपको अत्यन्त छोटा अनुभव करने लगे, और भीतर ही भीतर सिमट गए। धनंजय ने भरे हुए कण्ठ से कहा, 'हमारे ये भाग्य कहां, बाबाजी। हमीं लोग आपके बच्चे हैं, और आपने यदि बच्चों के रूप में हमें अपने चरणों में जगह दे दी तो हमीं धन्य हो उठेंगे।'

बाबाजी ने भोलानाथ की तरफ मुड़कर कहा, 'आप इन्हें एक बार सोनखेड़ा तो लाइए। आनन्द हो जाएगा।' और अन्तिम बार फिर धनंजय और गीता को पूर्ववत् नमस्कार करके कहा, 'आप किसी बात की चिन्ता मत करो। भगवान सब ठीक कर देंगे।' और बाबाजी द्रुत गति से वहां से चले गए।

भोलानाथ ने कहा, 'लो धनंजय, तुम्हें आशीर्वाद तो मिल गया। तुम्हें उन्होंने सोनखेड़ा बुलाया है, इसमें बड़ा मर्म है। अब तो तुम्हारा काम हो जाएगा। मैं बहुत खुश हूं।'

धनंजय और गीता ने भी मन में बड़ी शान्ति अनुभव की। हृदय में जो दाह चल रहा था वह भी शान्त हुआ।

४२

धनंजय को बीच में ही अदालतों की तारीखों से पांच दिन की मुहलत मिली तो एकदम दिल्ली भागा और उसने केन्द्रीय सरकार के सामने युगान्तर के विज्ञापनों का प्रश्न उपस्थित किया। उसने बताया कि उसके प्रदेश की सरकार उसके पीछे किस तरह हाथ धोकर पड़ी है, और उसके पीछे कौन-से कारण हैं। अपने साथ छल की पूरी कहानी जब उसने कह सुनाई तो वे सवा घण्टे तक एकाग्र चित्त से हैरत में आकर उसे सुनते रहे। बोले, 'इतना तक आपके सूबे में हो रहा है? हमें पता ही नहीं था। खैर, हम उन्हें विज्ञापन जारी करने के लिए तो नहीं कह सकते क्योंकि प्रान्तीय सरकार के विज्ञापन एक प्रान्तीय विषय है, पर जहां तक केन्द्रीय सरकार का प्रश्न है, वह प्रान्तीय सरकार के विचारों से नहीं चलेगी और न उनसे प्रभावित होगी, इतना आश्वासन हम दे सकते हैं। जब तक कोई समाचारपत्र जातीय द्वेष को नहीं उभाड़ता या आबजेक्शनेबल मैटर्स एक्ट के नीचे नहीं आता है तब तक हम किसी समाचारपत्र के विज्ञापन बन्द नहीं करते।'

धनंजय ने बताया कि प्रान्तीय शासन के दबी ज़बान के मत-प्रदर्शन के कारण तथा युगान्तर के प्रतिस्पर्धी के प्रचार के कारण केन्द्रीय सरकार के कुछ विज्ञापन कम हो गए हैं तो उन्होंने आश्वासन दिया कि वे इसकी जांच करेंगे और बराबर न्याय करेंगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय शासन के पत्र के पहले ही दिल्ली में युगान्तर की पेशबन्दी हो गई, और पहले जो विज्ञापन मिलते थे उससे अधिक मिलने लगे। प्रान्तीय शासन के विज्ञापनों के अभाव में जो क्षति हो रही थी वह कुछ अंश में इससे पूरी हुई। यह काम तो ठीक बन गया। धनंजय ने संतोष की सांस ली।

धनंजय राष्ट्रीय दल के कुछ वरिष्ठ नेताओं से मिला। उनमें से दो-एक तो उसके जेल के ही साथी थे, और उसके त्याग, राष्ट्रीयता और बुद्धिमत्ता से प्रभावित थे। वे बड़ी उत्सुकता से पूछते कि यह सब क्या झमेला है?

धनंजय ने अपनी सारी गाथा कह सुनाई। वे भी दत्तचित्त होकर सुनते रहे। जब पुलिस की ज़्यादतियों का किस्सा उन्होंने सुना तो वे सचमुच क्रुद्ध हुए, 'अपने पुराने साथियों के साथ इतनी दूर तक जाना बड़ी घृणित बात है। पर हम लोग यहां से कुछ कर भी नहीं सकते। मुख्य मंत्री से जब-जब हमने कुछ पूछा तो उन्होंने

कहा कि मामला विचाराधीन है, और कानून अपना काम कर रहा है। उसमें दखल भी कैसे दिया जा सकता है ?'

'इसीलिए मैं भी आप लोगों के पास नहीं आया, हलांकि यहां भी मेरे मित्रों की संख्या कम नहीं है।' धनंजय ने कहा, 'मैं जानता था कि यह चरित्र का लांछन तो भरी अदालत में लगाया गया है। इसके लिए कहीं दौड़-धूप करूंगा तो लोग यही कहेंगे कि कहीं कमज़ोरी है इसीलिए इतनी भाग-दौड़ कर रहा है। यह लांछन तो अब अदालत के मार्ग से ही धुल सकता है; फिर उसमें तीन वर्ष लग जाएं चाहे पांच। ऐसे व्यक्ति के हाथ में शासन रहे या न रहे यह तो आपकी पार्टी का सवाल है। अभी तो मेरे सामने केवल अपने चरित्र को साफ करने का ही सवाल है। यहां तो मैं विज्ञापनों की उलझन के कारण आया। वरना इस समय तो मेरे लिए दिल्ली आना भी ठीक नहीं है। जिस मैदान में लड़ाई चल रही है उसीमें लड़ना मेरा कर्तव्य है। अब तो मुकदमे वापस होने में भी मुझे दिलचस्पी नहीं है क्योंकि उसमें मेरा चरित्र निष्कलंक नहीं होता है। अब तो जो चल रहा है, वही ठीक है, और मुझे वह सब भुगतना ही होगा। पर इतना कहे देता हूं कि जब इसकी कहानी लिखी जाएगी तो आपके आंखों में आंसू आ जाएंगे कि स्वतंत्रता के बाद प्रजातंत्र में ऐसा भी हो सकता है ? तब आप देखेंगे कि किस तरह हम गांधीजी की दी गई धरोहर का पुण्य दोनों हाथों से उड़ाने में मशगूल हैं। एक धनंजय नहीं सौ धनंजय का सर्वनाश हो जाए तो देश का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पर स्वातंत्र्योत्तर भारत के मंदिर की पवित्रता को, अस्मिता को इस तरह भग्न और लांछित होने देना ही देश के लिए सबसे बड़ी ट्रैजेडी है। आपने-हमने साथ मिलकर आज़ादी की लड़ाई में कष्ट भोगे हैं, तो क्या यह दिन देखने के लिए ?'

धनंजय नमस्कार करके चलने लगा। वे राष्ट्रीय दल के श्रेष्ठि उसकी बातों से गंभीर और चिन्तित हो गए। वे बोले, 'यह सब सुनकर मुझे बड़ा दुख होता है। लेकिन जब तक एकाध मुकदमे में वे नहीं हार जाते हैं, तब तक उनके खिलाफ कदम उठाना भी तो संभव नहीं है।'

'मैं कहां यह कहने आया हूं कि आप उनके खिलाफ कोई कदम उठाइए...' धनंजय ने तपाक से जबाब दिया। 'वहां तो मुझे अपने सामर्थ्य से ही लड़ना है, यह मैं जानता हूं। पहले स्वतंत्रता की लड़ाई में दस-बीस साल बर्बाद हुए, अब स्वतंत्रता मिलने के बाद उसकी शुद्धता और पवित्रता बनाए रखने की लड़ाई में दस-

पांच निकल जाएंगे। कुछ लोगों की किस्मत में तो लड़ना ही बदा होता है, उसके लिए आप-हम क्या करें ?'

वे सज्जन सहृदय थे, धनंजय के साथ उनकी पूरी सहानुभूति थी, पर अपनी असहायता के कारण मन ही मन झुंझला उठे। उन्होंने केवल इतना ही किया कि अपने दो-चार सहयोगियों को युगान्तर-काण्ड की कहानी कह सुनाई। उससे नतीजा यही निकला कि दिल्ली में जोशी जी के खिलाफ का वातावरण और भी खराब हो गया।

दिल्ली से लौटते ही धनंजय ने भोलानाथ से कहा, 'राजधानी की यात्रा तो सफल हो गई। अब चलो, सोनखेड़ा चलें, बाबाजी के पास।'

'ज़रूर-ज़रूर।' भोलानाथ उत्साह से बोल उठा।

४३

भोलानाथ और धनंजय दोनों ही बाबाजी के गांव के लिए रवाना हुए। गीता नहीं आ सकी क्योंकि अर्चना की परीक्षा थी। प्रातःकाल का सुहावना समय था। सोनखेड़ा जाने के लिए करीब-करीब पौन सौ मील की रेलयात्रा करनी पड़ती थी और एक छोटे-से स्टेशन पर उतरना पड़ता था जिसपर सिर्फ पैसेंजर गाड़ी ही ठहरती थी, मेल-एक्सप्रेस नहीं। ठण्ड के दिन थे। दोनों मित्र पैसेंजर गाड़ी के तीसरे दर्जे में बैठ गए। गाड़ी प्रत्येक स्टेशन पर रुकती हुई मन्थर गति से चली जा रही थी। दोनों ओर हरे-भरे खेत थे जो आंखों को बड़े प्यारे लगते थे; राहत पहुंचाते थे। इतने में एक अन्धा भिखारी डिब्बे में चढ़ आया और गा-गाकर भिक्षा मांगने लगा। उसका स्वर अच्छा था। भीतर घुसते ही उसने अपनी डफली के थाप पर एक भजन सुनाया :

जानकिनाथ सहाय करे जब, कौन बिगाड़ करे नर तेरो।

वह अन्धा भिखारी तो अपनी मस्ती में मगन होकर गा रहा था, पर धनंजय को लगा जैसे वह उसीके लिए गा रहा है। भजन में बताया गया था कि रवि, मंगल, बृहस्पति आदि ग्रह वरदायक होते हैं और जानकीनाथ की कृपा से राहु, केतु और

शनिश्चर जैसे ग्रहों की कुछ नहीं चलती। करुणानिधि ने सहायता की तो विमल द्रौपदी चीर बढ़ गया और दुष्ट दुःशासन कुछ नहीं कर सका। अन्त में उसने अपनी आवाज़ चढ़ाकर कहा :

जाकी सहाय करी करुणानिधि, ताके जगत में भाग बड़ेरो।
रघुवंशी संतत सुखदायी, तुलसीदास चरण को चेरो॥

भोलानाथ ने सार्थ नेत्रों से धनंजय की तरफ देखकर कहा, 'लो, यह शुभ शकुन देख लो। करुणानिधि जिसके सहायक हैं वह वास्तव में बड़भागी है। हम लोग करुणानिधि के पास ही तो जा रहे हैं।'

धनंजय ने भिखारी को दक्षिणा दी और भोलानाथ से पूछा, 'तुम्हारा बाबाजी से कब का परिचय है भोला ? तुम्हें क्या अनुभव हुआ है ?'

भोलानाथ ने बीड़ी सिलगाई और कहा, 'हमारा भी चार-पांच वर्षों से सम्बन्ध है। मेरी एक भतीजी है, जिसका ब्याह हो गया है। उसे मेरी पत्नी ने बच्ची की तरह पाला। उसकी मां तो उसका जन्म होते ही चली गई थी। उसके माता-पिता ने उसे जन्म ज़रूर दिया, पर कर्म से हमीं लोग उसके माता-पिता थे। मेरी पत्नी के मरने के बाद उसे भयंकर धक्का लगा। उसे लगा जैसे उसकी मां का ही स्वर्गवास हो गया हो। पहली मां की मृत्यु के समय तो उसे कोई ज्ञान नहीं था, पर इस बार वह स्यानी हो चुकी थी, शोक बर्दाश्त नहीं कर सकी। उसे फिट आने लगीं, और वे फिट भी कैसी ? आतीं तो बारह-बारह तेरह-तेरह घण्टों तक रहतीं। बिटिया बेहोश पड़ी रहती और हम लोगों का कलेजा फटा जाता था; कुछ नहीं कर पाते थे। उसकी व्यथा में मैं अपनी पत्नी के मरने का दुख भी भूल गया। बड़े-बड़े डाक्टर और वैद्य आए। कोई आराम नहीं हुआ। पैसा तो पानी की तरह बर्बाद हुआ, औषधियां, इंजेक्शन, जो जिस डाक्टर ने बताया सो सब किया पर कोई नतीजा नहीं निकला। एक बार तो उसे धरती पर उतारकर रख दिया। डाक्टर ने देखा तो नाड़ी बन्द, सांस भी बन्द। मेडिकल साइन्स के लिहाज से तो वह खतम हो गई थी। घर में रोना-पीटना शुरू हो गया था। इतने में बड़े भैया का पुराना चपरासी आया—गंगाधर। बोला, अभी कपूर और अगरबत्ती लाओ और देवाजी महाराज के नाम से लगाओ। हम लोग तो यह शास्त्र कुछ जानते ही नहीं थे। पर फौरन कपूर-ऊदबत्ती लगाई। गंगाधर ने पांच ऊदबत्तियां और एक कपूर की बट्टी बिटिया के सिर के पास लगाई और एक तश्तरी में अलग

कपूर और दो अगरवत्तियां जलाकर बिटिया के सारे शरीर पर से घुमा दीं और मुंह से धीरे-धीरे वह 'धांवगा देवाजी देवा' पुटपुटाता जाता था। इसका अर्थ था कि देवाजी दौड़ो, सहायता के लिए तुरन्त आ जाओ। मैं दीन होकर टेरता हूं। यह देवाजी महाराज की आरती का वचन था। आश्चर्य की बात कि पांच मिनट में ही बिटिया का शरीर हिल उठा और थोड़ी ही देर बाद उसकी आंखें खुलने लगीं। पर उनमें शून्य भाव था जैसे वह न जाने किस देश की यात्रा करके लौटी हो और अपने अनुभव के बाद दिङ्मूढ़ हो गई हो। गंगाधर का उत्साह बढ़ा और उसने चार-पांच चेले-चाटियों को इकट्ठा किया और भक्ति-भाव के साथ पूरी आरती कह सुनाई। बिटिया के पति और भाई तथा हम लोग गद्गद हो गए। हमारे आंसू आनंदाश्रु में बदल गए। बिटिया को फिर उठाकर बिस्तर पर रख दिया गया।

'गंगाधर ने कहा कि घड़ी टल गई है। आप लोग चौबीसों घण्टे अगरबत्ती लगाया करें, एक के बाद एक, बुझने न दें। परसों देवाजी महाराज स्वयं यहां शहर में आ रहे हैं। मैं उन्हें अपने घर लाने की कोशिश करूंगा।

'देवा जी महाराज पधारे तो अपने किसी भक्त के यहां उसकी बीमारी देखने आए थे। वे मकान के बरामदे में खड़े थे, आसपास बड़ी भीड़ जम गई। रास्ता काटना भी मुश्किल। बाबाजी को लेने के लिए गंगाधर चपरासी और मेरा भतीजा मोहनलाल मोटर लेकर गए थे। भीड़ के कारण बाबाजी के पास पहुंचना भी कठिन था। वे दूर से ही उनके दर्शन कर हाथ में फूलों की मालाएं लेकर उनके पास जाने का प्रयत्न कर रहे थे तो अचानक अपनी जगह से खड़े-खड़े ही बाबाजी चिल्ला उठे कि वकील साहब के यहां से कौन लोग आए हैं उन्हें हमारे पास भेज दो। मोहनलाल आश्चर्य से दंग रह गया। गंगाधर तो भला बाबाजी का भक्त था और उनका चमत्कार जानता था। पर मोहन के लिए यह बात नई थी। उसने जाकर बाबाजी के पांव पकड़ लिए और कहा कि मोटर लेकर आया हूं। बाबाजी फौरन मोटर में बैठकर मेरे घर आए। आते ही हमने कपूर और ऊदबत्ती जलाई। बाबाजी उतरते ही बोले, 'कहां है मेरी माताजी?' हम लोग उन्हें बिटिया के कमरे में ले गए। वह बेहोश थी। बाबाजी ने उसके पलंग के चारों ओर एक प्रदक्षिणा की और दोनों हाथों से अभय आश्वासन दिया कि सब ठीक हो जाएगा। और वे एकदम मोटर में जा बैठे। न हम लोग उन्हें फूलमाला पहना सके और न

उन्हें नाश्ता-पानी करा सके। गंगाधर उन्हें पहुंचाने गया। मोहनलाल ने इधर फिर 'धांवगा देवाजी देवा' की आरती शुरू कर दी। बिटिया ने फिर आंखें खोल दीं। और कुछ देर के बाद बन्द कर लीं। बाबाजी ने गंगाधर को बताया कि उसकी बेहोशी रोज़ एक घण्टे से कम होगी और बारह-तेरह दिन के बाद उसे बेहोशी नहीं आएगी। तब तक मैं रोज़ उसकी समाधि में आऊंगा।

'दूसरे दिन से वही हुआ। बाबाजी समाधि में आए और बिटिया के मुंह से सारे परिवार का हाल बतलाया, अपने आने का मर्म बतलाया, समाधि में ही बिटिया को राधाकृष्ण के दर्शन कराए, उसके हाथों से देखते-देखते प्रसाद बंटवाया। तेरह दिन में बिटिया चंगी हो गई। तब से हमारा सारा परिवार बाबाजी का भक्त हो गया है। बाबाजी मराठी भाषी संत हैं, और हम लोग तो हिन्दी भाषी हैं, उत्तरी ज़िलों से आए हैं। पर हमारे परिवार में अब सभी लोग बड़े प्रेम से बाबाजी की मराठी आरती कहते हैं, अभंग और ओव्या (भक्ति-काव्य की वह पद्धति जिसमें ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी लिखी गई है) गाते हैं।

'मेरी पत्नी की मृत्यु के बाद यदि मुझे पागल होने से किसीने बचाया तो बाबाजी ने। उनके आश्रम में मैं गया तो मुझे इतनी शांति मिली कि मैं कुछ कह नहीं सकता।'

भोलानाथ की बात सुनकर धनंजय आश्चर्यचकित हो गया। सचमुच भारत-भूमि भी अद्भुत है। इसमें क्या-क्या चमत्कार और रहस्य भरे पड़े हैं जिन्हें समझना ही कठिन हो जाता है। जो समझते हैं वे इसका आनन्द उठाते हैं, शान्ति के सागर में गोते लगाते हैं और अपना गोप्य किसीको बताने में संकोच करते हैं। उनका बाना तो संत कबीर का बाना है :

हीरा तहां न खोलिए, जहं खोटी है हाटि।
कसकरि बांधो गाठरी, उठकरि चालो बाटि॥

और जो इस मार्ग को जानते नहीं, समझते नहीं, वे कहते हैं यह अन्धश्रद्धा है, दकियानूसी है, भोला विश्वास है जिसके पीछे तर्क या विज्ञान का समर्थन नहीं। यह सब खोटी बात है।

साधु-संतों में कई खोटे भी हैं, पाखण्डी होते हैं, यह सच है। पर उसके कारण सारा संतत्व, साधुत्व, अध्यात्म या ईश्वरवाद ही त्याज्य है, तिरस्करणीय है, ऐसा कैसे कहा जा सकता है? खोटापन किस क्षेत्र में नहीं है? राजनीति के क्षेत्र में

नहीं है ? क्या उसमें रंगे सियारों की भरमार नहीं है ? व्यापार में खोटापन नहीं है ? शिक्षण संस्थाओं में, कला के क्षेत्र में, साहित्य में, मानव-जीवन का ऐसा कौन-सा अंग है, जिसमें खोटापन नहीं है ? पर उसके कारण सारी राजनीति, व्यवसाय-वाणिज्य, शिक्षण, कला या साहित्य त्याज्य या गर्हणीय नहीं हो जाता। जिसके पास विवेक है, विवेचनात्मक दृष्टि है और सत्य के गर्भ में पहुंचने की आस्था है उसे हर समय उज्वल पक्ष ही दीखेगा, और जो उथले हैं, आचार-विचारों में उच्छृंखल हैं, सांच-झूठ का विधि-निषेध नहीं रखते, उन्हें तो सिवा खोटे माल के और कुछ हाथ नहीं लगता।

भोलानाथ की बात सुनकर धनंजय को बाबाजी के बारे में अधिक कुतूहल हुआ, अधिक आस्था जगी। और उसके पांव उनके आश्रम की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे। वे पैसेंजर गाड़ी से उतर चुके थे, और दो मील की कच्ची पगडंडी पर चल रहे थे जो उन्हें सोनखेड़ा देवाजी महाराज के आश्रम में पहुंचाने वाली थी। आस-पास कपास, ज्वार और अरहर के खेत लहलहा रहे थे। कहीं-कहीं गेहूं भी थे। प्रकृति अपनी हरीतिमा के सौन्दर्य में हंस रही थी। हरे-भरे खेतों पर बहने वाला समीर धनंजय के मस्तिष्क को शीतलता और शान्ति प्रदान कर रहा था। इस एकान्त सड़क पर न मोटर-बसें थीं, न तांगे रिक्शे और न भीड़-भम्भड़। शहर के कोलाहलपूर्ण जीवन से यह कितना बड़ा परिवर्तन था, कितना सुहावना। शहर का जीवन यों भी बड़े तनाव और संघर्ष का रहता है। अपने स्नायुओं पर व्यर्थ में अधिक ज़ोर पड़ता है, अपने समय और शक्ति पर न जाने कितना निरर्थक आक्रमण होता है—उसकी कोई सीमा नहीं। पिछले कुछ वर्षों में कैसा विचित्र उसका जीवन हो गया था ? न जाने कितने टेलीफोन, मिलने-जुलने वाले, दौरे और प्रवास, चाय-पार्टियां, डिनर पार्टियां आदि। एक प्रतिष्ठित पत्र के संपादक के नाते वह इन सबमें निमंत्रित किया जाता था और शिष्टाचारवश उसे जाना भी पड़ता था। पर उनमें असली मतलब या महत्व का काम कितना बनता ? और अब तो जबसे जोशी जी के साथ यह भयंकर मरने-जीने की लड़ाई शुरू हो गई है तबसे तो उसकी ज़िन्दगी और भी बदल गई है। एक-एक साथ कितने मुकदमे, अदालतों में घण्टों बैठना, वकीलों के घर के चक्कर, आर्थिक चिन्ताएं, संस्था की समस्याएं ! उसका जीवन अत्यन्त त्रस्त और व्यस्त हो गया था। वह जानता था कि प्रत्येक आदर्श-वादी व्यक्ति को इस तरह की अग्नि-परीक्षा से गुज़रना ही होता है। आराम और

सुख तो उन्हें होता है जो परिस्थिति से समझौता करने के लिए तैयार रहते हैं, जैसी बयार चले वैसी पीठ कर लेते हैं। पर जो अपना विशिष्ट लक्ष्य रखते हैं, खास ध्येय पर चलते हैं, उनके जीवन में कण्टक, आंधी और संघर्ष तो रखा ही हुआ है। देव की मूर्ति को निर्माण की स्थिति में शिल्पकार की हथौड़ी के घाव बर्दाश्त करने पड़ते हैं। हरि का मार्ग शूरों का मार्ग है। आज तो उसे इसी प्रकार के मार्ग पर चलकर अपने सत्व का रक्षण करना है। फिर राह में कितने भी कांटे क्यों न लगें, पैरों पर कैसा भी ज़ख्म क्यों न लगे ?

इस संघर्षमय वातावरण से कितना अलग था उस पुण्य प्रवास का वातावरण। कितना शान्त, कितना सुखदायक। उसके मन में अपूर्व आनन्द भर गया, एक प्रकार का उल्लास छा गया।

सोनखेड़ा में जब वे बाबाजी की कुटिया के पास पहुंचे तो देखा कि वे एक गाय को प्यार कर रहे हैं—उसके गले में गला डालकर उसकी पीठ थपथपा रहे हैं। भोला और धनंजय को देखते ही वे दिल खोलकर मुस्करा उठे और बोले, 'आइए भगवन् !' और उन्होंने नित्य की तरह ज़मीन पर सिर झुकाकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। भोलानाथ और धनंजय भी इस शालीनता के आगे नत-मस्तक थे।

बाबाजी की कुटिया के पास इमली और नीम के दो विशाल वृक्ष थे। उनकी ठण्डी छाया में वे लोग नीचे ज़मीन पर ही बैठ गए। नीचे रेत बिछी हुई थी। वहां बैठते ही धनंजय को परम संतोष और शान्ति का अनुभव हुआ। दो मील चलने के बाद उसे मीठी थकावट लग रही थी। उसके मन की मिठास अब और भी बढ़ गई।

धनंजय ने देखा, सामने कृष्ण भगवान का छोटा-सा मन्दिर है जिसके सामने दो ऊंचे स्तम्भों पर भगवे (गेरुए) रंग की पताकाएं लगी हैं जो हवा में फड़फड़ा रही हैं। उसे लगा जैसे वे उसका स्नेह से स्वागत कर रही हैं। वे चुपचाप, मायूस होकर नहीं बैठी थीं, पर प्रसन्नता से हंस रही थीं ऐसा भान हुआ। सामने एक बड़ी झोंपड़ी थी, जिसका अतिथि-गृह के रूप उपयोग होता था। दो-एक झोंपड़ियां और थीं जहां लोग ठहरते थे, यात्रा के दिनों में खाना बनता था, अन्यथा गाय-बैलों के लिए चौपाल की तरह उपयोग किया जाता था। आसपास बाबाजी के तीन खेत थे, जो उनके भक्तों ने आश्रम के लिए दिए थे। वे अपनी फसल के यौवन पर

चढ़कर मस्ती में फूले-फले लहलहा रहे थे। एक खेत में विशाल नीम वृक्ष के नीचे छोटा-सा देवी का मन्दिर था। उसीके आसपास तुलसी के पौधों को कुंज था। प्रत्येक खेत में कुएं थे जिनका पानी बड़ा मीठा था। छोटा-सा आश्रम था और छोटी-सी उसकी जायदाद थी। बाबाजी स्वयं खेती-किसानी की तरफ ध्यान दिया करते थे। खेत जोतना, बोना, फसल काटना, गाय-भैंसों की देखभाल, हल और बैल-गाड़ियों की व्यवस्था सब तरफ उनका ध्यान था। खेतों में वे हल के पास खड़े होते तो लगता जैसे हलधर हों, कृष्ण के बड़े भ्राता। स्वयं जब गाय के गले से अपना गला लगाकर वे उसे चूमते और पुचकारते तो लगता कि स्वयं कृष्ण हों। आश्रम में गाय-भैंसों की पूजा होती, वृक्षों की पूजा होती, पक्षियों की भी पूजा होती। बाबाजी की एक प्यारी गाय मर गई थी, उसकी बाकायदा समाधि तैयार की गई थी, जिसके सामने रोज़ धूप-दीप जलता। आश्रम में आठ-दस कुत्ते थे, और काल-क्रम के अनुसार उनका परिवार भी बढ़ता, सो उनकी रोटियां अलग पकतीं। मनुष्य, वृक्ष, पशु-पक्षी सबमें भगवान का वास है ऐसा बाबाजी मानते थे। अन्न-छत्र तो सदा चलता। स्वामी रामकृष्ण परमहंस की तरह दरिद्रनारायणों को भोजन देना वे एक धर्म-कर्म मानते थे। जन्माष्टमी या रामनवमी के दिन उनके यहां यात्रा होती तो वे हजारों लोगों को भोजन कराते। उनमें अधिकांश लंगड़े-लूले, अन्धे, कोढ़ी तथा भिखारी रहते, सर्वसाधारण जन भी रहते। भोजन परोसने के बाद वे सबके सामने ज़मीन पर माथा टेककर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते, 'लीजिए मेरे देव, यह भोजन स्वीकार कीजिए।' उस समय उनकी आंखों में ऐसा प्रेम और ऐसा आनन्द दिखता जैसे वे साक्षात् भगवान का ही दर्शन कर रहे हों। जो भोजन ग्रहण करते थे उनके प्रति कृतज्ञता का भाव उनके नेत्रों में ओत-प्रोत रहता जैसे वे बाबाजी पर असीम दया कर रहे हों। सबको प्रेम से स्वयं भोजन कराते। कभी लहर आ जाती तो बीच ही में फिर उसी प्रकार धरती पर माथा टेककर कहते, 'हम अनन्त जन्मों के अपराधी हैं! हे पतित-पावन, हमपर दया करो।' बाबाजी के आश्रम के लोग दिनभर परिश्रम करते—कोई खेत जोतता, तो कोई कंडे थोपता, तो कोई कुओं से पानी खींचता, तो कोई अतिथियों की सेवा करता। कर्म का चक्र अनिर्वन्ध गति से चलता रहता। रात को वे सब मन्दिर में पहुंच जाते जहां मौज में आकर चौघड़ा बजता। चौघड़ा का मतलब है ढोलक और झांझों के साथ गुरू की बानी या भजनों का गायन। उन देहाती भजनार्थियों के

स्वर अटपटे रहते, उनमें संगीत की साधना का अभाव रहता, पर उनमें जो भक्ति-भाव उमड़ पड़ता वह अद्भुत था। गुरू की बानी में अक्खड़ ग्रामीण भाषा में वेद-उपनिषदों का सारा ज्ञान भरा रहता। यह चौघड़ा तो कभी-कभी त्यौहार के दिनों में सूर्यास्त से सूर्योदय तक चलता। संध्या और प्रभात के आगमन के स्वागत में नगाड़े बज उठते—मानो वे विश्राम और कर्म का ऐलान करने आए हों।

बाबाजी स्वयं माटी की बनी छोटी-सी कुटिया में रहते थे, जहां एक खाट, मृगचर्म और चटाई पड़ी रहती थी। रात में मिट्टी के तेल की डिबिया जलती या अन्धकार ही रहता, चन्द्रमा या तारागणों का प्रकाश ही काफी हो जाया करता। कुटिया का दरवाज़ा इतना संकरा था कि उसमें से झुककर जाना पड़ता था।

धनंजय जब उस कुटिया में जाकर बैठा तो उसे अपार शान्ति मिली। ऐसा लगा जैसे सारे श्रमों और चिन्ताओं का परिहार ही हो गया। प्रत्येक स्थान का अपना अलग वातावरण होता है। जहां निरन्तर साधना, तपस्या और भगवद्भजन होता है, वहां हमेशा पवित्र वायु-लहरियां प्रवाहित होती हैं। धनंजय ने अनुभव किया, अदालतों के वातावरण से कितना भिन्न है यह वातावरण। वहां हमेशा लड़ाई-झगड़ा, क्षुद्रता, निरर्थक वाद-विवाद, सत्यासत्य का व्यापार चलता रहता है, मानव-स्वभाव का विकृत और अस्वस्थकर प्रदर्शन होता है, तो यहां कितना सुख, कितना आनंद, कितनी शान्ति है! अदालत में साधु पुरुष पहुंच जाए तो उसपर भी विपरीत परिणाम होने लगता है और पवित्र मन्दिर में कोई दुरात्मा पहुंच जाए तो कुछ क्षण के लिए उसके मन में अच्छे विचार और अच्छी भावनाओं का उदय होता है। सभी अदालतों और सभी मन्दिरों में ऐसा नहीं होता। जहां अन्याय और ज़ुल्म को दण्ड मिलता है, सत्य-धर्म की स्थापना होती है वह न्यायालय तो मन्दिर जैसा पवित्र है, और जिस मन्दिर में स्वार्थ और पाखण्ड की पूजा होती वह तो मन्दिर नहीं बाजार हो जाता है। गुण-दोषों का वास तो सब जगह रहता है। पर उसका सही मूल्यांकन करने के लिए दृष्टि चाहिए, विवेक चाहिए। जो सबको एक लाठी से हांकते हैं वे गड्ढे में गिरते हैं। जो पारखी होता है वह धूल में पड़े हुए हीरे को भी पहचानकर उठा लेता है, और जिनके भाग खोटे होते हैं वे उसीको पैरों-तले रौंदते आगे बढ़ जाते हैं।

धनंजय ने सोचा, सचमुच इस दुनिया में सन्तों और असंतों की पहचान करना बड़ा कठिन है। संतों के नाम पर महंत खड़े हो जाते हैं जिनकी गद्दियां चलने

लगती हैं और जिनका मन धन-संपदा, जायदादों में और अपने अहं की पूजा कराने में उलझ जाता है। साधुओं की जगह भोंदुओं के दर्शन हो जाते हैं और उनके कार्य-कलापों को देखकर लोगों की अश्रद्धा और अरुचि होने लगती है। पर सच्चा संत और सच्चा साधु मिल जाए तो यथार्थ में भाग्य खुल जाते हैं। पर ऐसे साधु-संत गली-गली नहीं मिलते। संत कबीर ने ठीक ही कहा है :

सब बन तो चन्दन नहीं, सूरा का दल नांहि।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग मांहि॥
सिंहों के लेहड़े नहीं, हंसों की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरियां, साधु न चलें जमात॥

सच्चे संत तो लोगों से दूर भागते हैं, प्रचार के शत्रु होते हैं, एकान्त का सेवन करते हैं, और चाहते हैं कि लोग उन्हें गलत समझें और उनका पीछा न करें। तभी उनकी भक्ति और ईश्वर के साथ का साक्षात्कार अक्षुण्ण और अबाधित चलता रहता है। उसी आनन्द के महासागर में वे डूबे रहते हैं, उसी रस में भीगे रहते हैं, उसीमें उनकी समाधि लग जाती है। जिसने इस रस का प्याला नहीं पिया है उसे क्या मालूम कि इसका क्या नशा रहता है, इसमें क्या ब्रह्मानन्द मिलता है ?

धनंजय एक दिन और एक रात उस वातावरण में रहा। भोलानाथ साथ तो था ही। दो-तीन बार उनके बाबाजी के साथ वार्तालाप भी हुए। पर हर बार धनंजय ने बाबाजी को अनन्त प्रेम की मूर्ति के रूप में ही देखा। उनकी वही निर्मल मुस्कराहट जिसमें आत्मा का दिव्य सौंदर्य मुखरित हो उठता था, वही पितृत्व का परम वात्सल्य भाव। और जब वह घर लौटने के लिए विदा होने लगा तो धनंजय की आंखों में आंसू थे, भोलानाथ का गला भी भर आया और स्वयं बाबाजी भी विचलित हो गए। स्टेशन पर जाने के लिए उन्हें बाबाजी ने एक बैलगाड़ी दी। उससे वे रवाना हुए पर बार-बार मुड़कर वे बाबाजी और उनके आश्रम के मन्दिर की तरफ देखते जाते थे, ठीक उसी तरह जैसे पहली बार ससुराल जाने वाली कन्या अपने मायके की तरफ देखती जाती है। धनंजय को लगा कि जैसे उसके दिल का एक टुकड़ा वहां छूटा जा रहा है। बाबाजी को देखकर उसे लगा जैसे उनकी पहचान पुरानी है, इस जन्म की हो या पिछले जन्म की। और उसे अनुभव हुआ कि बिना कुछ कहे-सुने ही बाबाजी ने भी उसके अन्तःकरण को पहचान

लिया। उनकी मूक भाषा ही अत्यधिक अर्थपूर्ण थी।

धनंजय से कोई पूछता कि वह सोनखेड़ा क्या लेकर लौटा तो वह ठीक-ठीक नहीं कह सकता था। क्या उसे कोई सिद्धि मिली, या मन्त्र, जिसके कारण वह अपनी चिन्ताओं और व्यथा से मुक्ति पा सकेगा और अपने जीवन-मरण के संघर्ष में विजय? क्या उसे भगवान का कोई आशीर्वाद या प्रसाद मिला?

वह कुछ नहीं जानता था, और इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता था।

पर उसे यह अवश्य लगा कि उसे कोई ऐसी अपूर्व निधि मिल गई है, ऐसी विचित्र शक्ति, कि उसका दिल आश्वस्त हो गया, निश्चिन्त हो गया। उसने भीतर ही भीतर एक अजीब ताकत का अनुभव किया, एक अद्भुत आत्मविश्वास का, जिसके कारण उसे भरोसा हो गया कि वह अपने संकटों और कण्टकों पर विजय प्राप्त कर सकेगा क्योंकि,'

वह अकेला नहीं है, उसके सिर पर भगवान का छत्र है, उसके जीवन पर भगवान का आशीर्वाद है।

यह विश्वास क्यों कर उसके हृदय में बैठ गया यह वह नहीं कह सकता था यह तो अपनी-अपनी व्यक्तिगत अनुभूति की बात है, जिसका विश्लेषण करना कठिन होता है।

पर इस विश्वास ने उसे अदम्य शोक और उत्साह दिया, जैसे उसके जीवन की उतरी हुई बैटरी विद्युत् लहरियों से फिर अनुप्राणित हो उठी हो।

लौटती बार प्रवास में भोलानाथ ने पूछा, 'बाबाजी को तुमने किस रूप में देखा धनंजय?'

'मेरे देखने न देखने का क्या मूल्य है भोलानाथ? मैं इस अध्यात्म मार्ग के बारे में क्या जानता-बूझता हूं? पर उन्हें देखकर मुझे तीन महान आत्माओं का स्मरण हो आया।'

'तीन महान् आत्माओं का? वे कौन-सी भाई?' भोलानाथ ने पूछा।

'संत तुकाराम, श्री रामकृष्ण परमहंस और गांधीजी।'

'ऐसा?—सो किस कारण?'

'बाबाजी में मुझे संत तुकाराम की भक्ति-भावना, स्वामी रामकृष्ण का आत्मज्ञान और गांधी जी का कर्मयोग, और तीनों की लीनता और नम्रता का साक्षात्कार हुआ।'

भोलानाथ विस्फारित नेत्रों से धनंजय की तरफ देखता रहा, फिर थोड़ी देर सोचकर बोला, 'तुम्हारे कहने में बहुत बड़ा तथ्य है। इन स्वरूपों को देखने के लिए एक विशिष्ट दृष्टि की आवश्यकता होती है। वह सबके भाग्य में नहीं लिखी रहती धनंजय। तुमने इतनी जल्दी बाबाजी को समझ-परख लिया, अद्भुत बात है।'

घर लौटकर आया तो गीता से उसे मालूम हुआ कि धनशेट्टिवार ने एक नई पंचायत खड़ी कर दी है जिससे निपटना जरा मुश्किल है। सुख-दुख का चक्र तो इसी तरह चलता रहता है। पर अब वह सोचता था, इन मामलों से निपटने की उसकी शक्ति में अद्भुत वृद्धि हो गई है।

४४

धनशेट्टिवार दूसरे ही दिन धनंजय से मिला और बोला, 'हमें लड़ाई अब दुश्मनों के खेमे में भी पहुंचानी चाहिए, तभी उसका अन्त होगा।'

'क्या मतलब ?'

'मैं जोशी जी पर एक फौजदारी मुकदमा चलाना चाहता हूं।'

'सो किसलिए ?'

'उन्होंने अपने सरकारी अधिकारों का दुरुपयोग करके तथा सरकारी नौकरों की मदद से युगान्तर कंपनी के लिए जो पूंजी एकत्रित की उसके लिए, मैंने आपका और उन सरकारी अफसरों का सारा पत्र-व्यवहार देखा है और कानूनी सलाह भी ली है—मुकदमा दायर हो सकता है।'

'पर वह पत्र-व्यवहार तो आपको अपना बचाव तैयार करने के लिए मैंने दिया था, जोशी जी पर मुकदमा चलाने के लिए नहीं।' धनंजय ने कहा।

'आक्रमण भी तो बचाव का एक तरीका होता है—शायद सबसे अच्छा तरीका।' धनशेट्टिवार ने कहा।

'पर मैं इससे सहमत नहीं हूं। हमारे झगड़े में इन सरकारी नौकरों को क्यों घसीटना चाहिए ? उन बेचारों का क्या दोष ? आखिर उन्होंने मदद की उसीसे तो यह संस्था खड़ी हुई है। यह संस्था न होती तो न मैं उसका संचालक होता

ग्रौर न ग्राप उसके चेयरमैन। ग्रौर जहां तक जोशी जी का सम्बन्ध है, माना कि इन मुकदमों के कारण उनका-हमारा रिश्ता टूट चुका है, ग्रौर ग्रब हम ग्रपनी रक्षा के लिए कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र हैं; फिर भी यह तो मानना ही होगा कि इन झगड़ों के बाद संस्था यदि बची रही तो वह तो सार्वजनिक सेवा करेगी ही। जोशी जी, मैं या ग्राप रहें या न रहें—संस्था तो चलती ही रहेगी, ग्रौर वह हम तीनों से बड़ी है। ग्राखिर उसके निर्माण में जोशी जी का हाथ रहा है, इससे कैसे इन्कार किया जा सकता है?' धनंजय ने कहा।

'ग्राप एक बड़ा सेंटिमेण्टल ग्रौर ग्रव्यावहारिक दृष्टिकोण ले रहे हैं धनंजय बाबू। यह तो टोटल वॉर (सम्पूर्ण लड़ाई) है, इसमें न उन्होंने कोई दया-मुरव्वत बरती, न हमें बरतने की जरूरत है। जब तक हम उनकी नाक नहीं दबाते तब तक उनका मुंह नहीं खुलेगा ग्रौर न इस खूंख्वार लड़ाई का खात्मा होगा। संस्था के हित में भी यह कदम बहुत ग्रावश्यक है।' धनशेट्टिवार ने कहा।

'भई, मेरा तो मन नहीं कहता है कि यह ठीक है। ग्राप वे फाइलें मुझे वापस दे दीजिए—मैं ज़रा उन्हें दुबारा देख लूं।'

'सो तो फिलहाल ऐसी जगह रख दी गई हैं जो इस प्रदेश से बाहर है ताकि पुलिस की तलाशी में भी वे हाथ न लगें। उन पत्रों के फोटो मैंने ग्रपने पास ले रखे हैं।' धनशेट्टिवार कुटिल हंसी हंसते हुए बोला।

'यह तो ग्रापने उचित नहीं किया मिस्टर धनशेट्टिवार। ग्राप एकबार जोशी जी पर ग्राक्रमण करें उसमें उतना बुरा नहीं है, पर उन सरकारी नौकरों को इसमें डालना नितांत ग्रनुचित है। मैं इससे ज़रा भी सहमत नहीं हूं। इसमें से कई तो मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, ग्रौर सबने निस्स्वार्थ भाव से संस्था की मदद की है। उनको तकलीफ में डालना एकदम ग्रशोभनीय है।'

धनशेट्टिवार निहायत दुनियादारी वाला ग्रादमी था। वह तो हमेशा ग्रपने स्वार्थ ग्रौर ग्रपने पास के शस्त्रों के बल लड़ा करता था। ग्रादर्श या नीति के ऊंचे मूल्यों के लिए उसके पास कोई स्थान नहीं था।

धनशेट्टिवार ने एक न मानी ग्रौर ग्रपनी पार्टी के एक ग्रादमी को सामने खड़ा करके जोशी जी के खिलाफ फौजदारी मुकदमा दायर कर ही दिया जिसमें प्रारम्भिक सबूत के लिए उन सब पत्रों के फोटो पेश किए गए थे।

धनंजय की वह रात बड़ी व्यथा में बीती। ग्राज यदि वह धनशेट्टिवार के

खिलाफ कोई बड़ा कदम उठाता है तो वह संस्था के बीच एक दूसरा गत्यवरोध खड़ा कर देगा और आंतरिक फूट के कारण वह तहस-नहस हो जाएगी। जब बाहर से शत्रुओं की ओर से भयंकर वार हो रहे हों उस स्थिति में आपसी फूट में सर्वनाश को छोड़कर और कोई परिणाम नहीं निकलेगा। संस्था को बचाने का मोह न होता तो वह इसकी भी परवाह नहीं करता। पर जिस मामले को लेकर यह सब लड़ाई चल रही है उसीपर यदि कुठाराघात हो जाए तो फिर इस सब झगड़े का क्या अर्थ है ? वह खून का घूंट पीकर चुप रह गया। जिस तरह जोशी जी ने उसकी बात सुनने से इन्कार कर दिया और यह संग्राम उसपर लाद दिया, उसी तरह यह धनशेट्टिवार भी आज उसकी नहीं सुनता है। और इस लड़ाई का उपयोग अपनी पार्टी की राजनीति के लिए कर रहा है। धनंजय सब जानता था कि जोशी जी और उसके बीच में संघर्ष छिड़ा तो दोनों दलों के अवसरवादियों की बन आएगी और वही इस फूट का सबसे अधिक फायदा उठाएंगे। वास्तव में यह आपस का घरेलू झगड़ा था, व्यक्तिगत संघर्ष का मामला था। पर अब उसने ऐसा सार्वजनिक रूप ले लिया था कि आग में सब लोग अपनी-अपनी स्वार्थ की रोटी सेंकने के लिए आगे दौड़ पड़े। इस अशोभनीय तमाशे से बचने के लिए ही उसने गीता को जोशी जी के पास समझौते के लिए भेजा था। पर विधि को यह मंजूर न था।

वह पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता तो सबसे ज़्यादा उछल-कूद कर रहा था। वह सोचता, यह झगड़ा क्या हुआ हाईकोर्ट-जज बनने का मार्ग प्रशस्त हो गया। धनंजय और युगान्तर को चार गालियां सुना दो और शासन से कोई भी काम करा लो—तरक्की, तबादला, नौकरी, कॉलिज का एडमिशन। पुलिस अफसरों ने भी यही किया, गुप्ता के मातहत काम करने वाले वकीलों ने भी यही किया, डॉ० छदामी जैसे लोगों ने भी यही किया।

और इधर धनशेट्टिवार जैसे लोग भी यही कर रहे हैं। इस झगड़े का उपयोग वह अपनी पार्टी की धौंस जमाने में कर रहा है, जोशी जी के व्यक्तित्व को खतम करने के पीछे पड़ा है, ताकि उसके दल की साख बढ़े। धनंजय की इसमें तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी कि जोशी जी का कुछ भला-बुरा हो। उनका बुरा होने से उसका क्या लाभ होने वाला था ? वह तो सिर्फ यही चाहता था कि उसके और उसकी संस्था के गले में जो फांस लगी है वह किसी तरह छूटे, उसका समाचारपत्र इस

अग्नि-परीक्षा में खरे होकर बाहर निकल आए और प्रदेश की तथा जनता की खिदमत करता रहे।

पर ज़ाहिर है कि धनशेट्टिवार के और उसके विचारों में कोई समानता नहीं है। एक पूरब की सोचता है तो दूसरा पच्छिम की। यह अवांछनीय स्थिति कब तक चलेगी भगवान जाने !

धनशेट्टिवार इस लड़ाई को अपनी पार्टी के राजनीतिक दाव-पेंच का अखाड़ा बनाना चाहता था। वही बात धनंजय को एकदम नापसन्द थी। पर जब तक वह इस मुकदमे में उसका सहअभियुक्त था तब तक वह कुछ कर भी नहीं सकता था। इसलिए वह चुपचाप यह आघात बर्दाश्त कर गया।

धनशेट्टिवार के कदम के बाद तो युगान्तर के संघर्ष को और भी नया रंग चढ़ गया। उसका खूब प्रचार हुआ, विधान-सभा में चर्चा हुई, दिल्ली तक शिकायतें गई—पर मुकदमा दर्ज नहीं हो सका—खारिज हो गया। धनशेट्टिवार का मुंह उतर गया।

पर शासकीय दल की समझ में आ गया कि धनशेट्टिवार के कारण युगान्तर-पक्ष में ज्यादा उछल-कूद हो रही है इसलिए जब कम्पनीज़ ऐक्ट के मामले में अभियोग रखने का वक्त आया तो पब्लिक प्रॉसीक्यूटर की सलाह के मुताबिक धनशेट्टिवार रिहा कर दिया गया। धनंजय को खुशी हुई। एक नैतिक ज़िम्मेदारी से तो छुट्टी मिली।

इधर गुप्ता ने, जो जगपुरा के महाराजा का भी वकील था, युगान्तर के खिलाफ पचार हज़ार रुपये की डिगरी हासिल कर ली। धनंजय ने कर्ज़ पहले ही मंज़ूर कर लिया था। वह सिर्फ यही चाहता था कि अदालत की ओर से उसे किश्तें मिल जाएं। किश्तों की दरख्वास्त में एक तान्त्रिक भूल रह गई जिसका फायदा गुप्ता ने उठाया। उसने डिगरी बजाने के लिए कुड़की का वॉरण्ट निकलवा लिया। यह वारण्ट उस दिन निकला जब दीवानी अदालतें गर्मी की छुट्टियों के लिए अगले दिन बन्द होने वाली थीं। इरादा यही था कि कुड़की में युगान्तर प्रेस की मशीनें और इमारत ज़प्त कर ली जाए, उसपर ताला लगा दिया जाए, ताकि जब तक छुट्टियों के बाद अदालतें नहीं खुलती हैं तब तक उस कार्रवाई के खिलाफ अर्ज़ी न पेश की जा सके और और ताला न खुले। डेढ़-दो महीने में तो युगान्तर की तोप ठंडी हो जाएगी, और जिस एक हथियार के बल पर धनंजय आग उगलता था वह

खतम हो जाएगा।

यह साजिश बड़ी गहरी थी। आखिर 'युगान्तर' ही धनंजय का सबसे बड़ा मोर्चा था, सबसे मजबूत गढ़। वही यदि दुश्मन के हाथ चला जाए तो वह फिर किस बूते पर लड़ेगा ?

धनंजय दफ्तर पहुंचे इसके पहले ही गुप्ता ने दीवानी अदालत के मजकूरी को भेजकर युगान्तर प्रेस की बिल्डिंग पर कुर्की की नोटिस चिपका दी। उसका मुंशी दीवानी अदालत के मजकूरी और मुनादी वाले को लेकर उसकी मोटर में आया था और नोटिस चिपकाने के बाद उसने डुग्गी पीटकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर ऐलान कर दिया कि यह जायदाद कुर्क हो चुकी है, कोई इसे खरीदे तो खबरदार !

धनंजय को टेलीफोन गया। जब वह दफ्तर पहुंचा तब तक डुग्गी पिट चुकी थी। उसके एकाउंटेण्ट ने आखों में आंसू भरकर कहा, 'साहब, ऐसा अपमान कभी नहीं देखा। हमारी बिल्डिंग पर नीलाम की तरह बोली-बोली जाए, इससे बढ़कर दुख की क्या बात हो सकती है ?'

धनंजय ने कहा, 'क्यों चिन्ता करते हो भाई, आखिर सत्य के लिए तो हरिश्चन्द्र और तारा का भी श्मशान में नीलाम बोला गया था। जो इस कठोर पथ पर चलते हैं उनकी हमेशा यही गति होती है, पर अन्त में विजय उन्हींकी होती है। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। हमें धीरज से इसका भी मुकाबला करना होगा।'

४५

भोलानाथ ने धनंजय के मुकदमों के लिए अपनी सारी ताकत लगा दी। वह स्वयं एक अनुभवी एडवोकेट तो था ही; फौजदारी मामलों में उसे कमाल हासिल था। नब्बे फीसदी मुलज़िमों को तो वह देखते-देखते छुड़ा लेता था। सट्टा खेलने वाले, शराबखोरी करने वाले सभी उसके मुवक्किल थे। उनमें असली गुनहगारी वृत्ति के दस फीसदी लोग हुआ करते थे जिन्हें उसीमें मजा आता था। अपराध कर जेल जाना, वापस आना, और फिर कोई जुर्म करके जेल

जाना, जिन्दगी भर यही उनका क्रम चलता था। गुनाह किए बिना उन्हें लुत्फ ही नहीं ग्राता था। बाकी के बचे हुए लोगों में तो ग्रधिकांश परिस्थितिवश गुनहगार बनते थे, ग्रौर करीब-करीब ग्राधे तो सरकारी कानूनों ग्रौर पुलिस की कार्रवाई के कारण जबर्दस्ती मुजरिम बनते थे। ग्रधिक से ग्रधिक मुकदमों को दायर करना ग्रौर उनमें सज़ा दिला देना यह पुलिस विभाग की दक्षता का लक्षण माना जाता है। सच्चे केस न मिले तो झूठे केस बनाने की वृत्ति इसीमें से पैदा होती थी। झूठे केस बनाने में तो ग्रक्सर पुलिस के कर्मचारियों की रुपये बनाने की नीयत ही ग्रधिक काम करती। थाने ग्रौर ग्रदालतों के धक्के खाने की बजाय पुलिस को सौ-पचास देकर जान छुड़ा लेना ग्रधिक श्रेयस्कर होता। हर तरह के मुकदमों में जैसे वकीलों की फीस ठहरी हुई होती है उसी तरह पुलिस के कर्मचारियों की भी रहती है। ग्रौर उसमें नीचे से ऊपर तक हिस्से लगे रहते हैं। जुग्रों के ग्रड्डे चलते हैं, वेश्यालय चलते हैं, गैरकानूनी शराब बनाने के कारखाने चलते हैं, ब्लैक मार्केट वाले व्यापारियों के कारोबार चलते हैं, गुण्डागर्दी के डर से डरपोक धनिकों से रुपये ऐंठे जाते हैं ग्रौर इन सबके मुकदमे बीच-बीच में दायर किए जाते हैं, कुछ छूट जाते हैं, कुछ को सजा हो जाती है ग्रौर जिनको जेल की सजा हो जाती है उनकी गैरहाजिरी में उनके परिवार की देखभाल बाकी के जुर्मशुदा साथी ग्रौर पुलिस वाले खुद करते हैं। यह सब कारोबार एक विशिष्ट योजना ग्रौर व्यवस्था के ग्रनुसार यन्त्रवत् चलता रहता है। पुलिस मजिस्ट्रेट, जेल के ग्रधिकारी सब इन लोगों को जानते-समझते हैं। यह एक बिलकुल निराली ग्रजीब दुनिया है। इसके लोगों में ग्रापस में बड़ा भाईचारा चलता है, वे ग्राश्वासनों ग्रौर वचनों के पक्के होते हैं। जो बात कह देते हैं उसे पूरा करते हैं। चोरी के माल में ग्राधा हिस्सा देने की बात कही तो वह ईमानदारी से दिया जाएगा। इसमें एक पाई की भी गड़बड़ हुई तो वह फलेगा नहीं, ऐसी उनकी धारणा रहती है। जो गड़बड़ करता है उसे बिरादरी से निकाल दिया जाता है, ग्रौर नियमों का उल्लंघन करने के लिए उसे फिर सच्ची जेल भिजवा दिया जाता है या गुण्डों द्वारा उसकी मरम्मत करा दी जाती है। इस मरम्मत के डर से ग्रक्सर लोग बड़ी मर्यादा से रहते थे।

भोलानाथ को इस दुनिया की काफी जानकारी थी। धनंजय ने कहा, 'तुम इन लोगों के बारे में एक किताब क्यों नहीं लिख डालते भोला? बड़ी मनोरंजक रहेगी।'

'सो तो रहेगी। पर मुझे लिखने को वक्त ही कहां मिलता है ?'

'वक्त की तो बात उतनी नहीं है जितनी तुम्हारी लहर की है। तुम्हारा तो हमेशा मौज-लहर का सौदा ही रहता है, झक्की आदमी जो ठहरे।' धनंजय ने कहा।

भोलानाथ सचमुच थोड़ा झक्की भी था। जब जिसकी धुन लग जाए उसके पीछे पड़ा रहता। फिर उसमें आव देखता न ताव। आलस की झक्क आ गई तो महीनों अकेले एकान्त में पड़े-पड़े गुज़ार देता—एक के बाद एक बीड़ी सुलगाते हुए, चाय पर चाय पीते हुए। पास के होटल का वह सबसे बड़ा आश्रयदाता था। एक कप की ज़रूरत होती तो वह दो कप मंगाता। आसपास के किसी पड़ोसी को बुलाकर पिलाता, और कोई न मिलता तो जबर्दस्ती उस होटल वाले लड़के को ही पिला देता। उनके बीड़ी के कट्टे पर भी दो-चार लोगों का हक रहता। जब कानूनी किताब पढ़ने की धुन लगती तो शाम से बैठता तो कब भोर हो जाती पता नहीं चलता। मुर्गा बोलता तब वह भी चिल्लाता, 'अरे देख तो शंकर, होटल खुल गया हो तो दो कप चाय ले आ।'

एक बार जब गांधीजी के प्रभाव में उन्हें चरखा चलाने की धुन सवार हुई तो उठते-बैठते चरखा चलाने लगते। सुबह उठते ही चरखा, तो कचहरी से लौटते ही चरखा, तो रात भर चरखा। दो-चार महीने यह क्रम चला। फिर जो टूटा तो फिर चरखे पर धूल चढ़ने लगी। और चरखा भी एक नहीं चार थे। क्योंकि जब जो वस्तु उनके मन पर चढ़ती तो उसकी खरीद में कोताही हर्गिज़ नहीं होती।

प्रैक्टिस में भी लड़ाई के ज़माने में तो उन्होंने एक-एक दिन में तीन-तीन सौ कमाए। जो मुंह से मांगता वह फीस मिलती। पर पत्नी की मृत्यु के बाद जब विरक्ति हो गई तो तीन रुपये कमाने की भी इच्छा न रही। पर तीन रुपये हों या तीन सौ, अगले दिन अदालत में जाने तक वे गायब होने ही चाहिएं—इसे दे उसे दे, रिक्शे वाले, होटल वाले, दीन-दुखिया, साधु-संत। कोई भी मिल जाए, रुपया जब तक खर्च न हो जाए तब तक उन्हें तसल्ली नहीं, जैसे वे पास रहें तो काटते हों। अपरिग्रह का भी यह अजीब नमूना था।

'इस तरह से बेतहाशा खर्च करने से क्या फायदा भोला ? बुढ़ापे-बीमारी के लिए तो कुछ बचाना चाहिए ?' एक बार धनंजय ने कहा।

'रुपया बचाकर क्या करना है धनंजय ? न साथ लेकर आए थे न साथ लेकर

जाएंगे। और बीमारी-बीमारी में तो भगवान ही मदद करेंगे। और जो नहीं करेंगे तो उनकी मरजी।'

एक विचित्र प्रकार की विरक्ति थी, अजीब तरह की निर्लिप्तता, और भगवान पर भरोसा तो था ही। जिसका घर-बार उजड़ जाता है, घर की लक्ष्मी चली जाती है, उसका हाल भी बड़ा विचित्र हो जाता है। धनंजय का दिल भोला के लिए करुणा और सहानुभूति से भरा रहता था।

भोलानाथ के जीवन में ईश्वर तथा साधु-सन्तों के प्रति आस्था बचपन से ही थी। हृदय देश-प्रेम से ओत-प्रोत था। गांधीजी का तो वह अनन्य भक्त था। पर प्रत्यक्ष जीवन में इतना उच्छृंखल और निर्द्वन्द्व कि एक का दूसरे से जैसे कोई सम्बन्ध ही न हो। जिस समय जो मूड आ जाता वही करता। कोई निश्चित ध्येय या महत्वाकांक्षा उसने अपनी आंखों के सामने नहीं रखी थी। रखता तो उसके लिए कोई बात कठिन नहीं थी। योग्यता का उसमें अभाव नहीं था। बल्कि कुछ गुण तो ऐसे थे जो दुनिया में मुश्किल से मिलते हैं। उदारता, सहृदयता, दया, न्याय-बुद्धि, निर्मोह, कर्तव्यभ्रष्टता से घृणा, चरित्र के प्रति आस्था आदि। पर इनमें एकसूत्रता न थी, और एक सर्वोपरि ध्येय के अभाव में इन गुणों की कोई कद्र नहीं हो पाती थी। प्रसिद्धि से वे भागते थे, समाज-सोसाइटी से वे अलग रहते थे, भीड़-भड़क्का उन्हें पसन्द नहीं। बस, वे भले और उनकी अकेली आन्तरिक दुनिया भली।

इस समय तो बस उनका एक ही ध्येय था, एक ही बात उनकी नजर में थी, एक ही इच्छा उनके समस्त जीवन पर छाई हुई थी कि सत्ता और सत्य की इस लड़ाई में धनंजय की जीत हो। धनंजय, चूंकि उसका दोस्त था, और उसका पक्ष न्याय का पक्ष था। इसके लिए कानूनी काम-काज के अलावा उन्होंने एक हवन और जाप का सत्र शुरू कर रखा था। मूल प्रवृत्ति धर्म की ओर थी ही। सन्त देवाजी महाराज के कारण उसे प्रोत्साहन मिला। और अब अपने मित्र पर विपदा आ पड़ी सो उनका धर्म-कर्म बड़े उत्साह से शुरू हो गया। सुबह तो स्नान-ध्यान और कचहरी की तैयारी में बीत जाती, पर संध्या और रात्रि उनकी थी। सो हवन और जप में एक आसन पर ऐसे बैठते कि मध्य रात्रि उलट जाती फिर भी उठने का नाम न लेते। एक-एक दिन में लक्ष-लक्ष नाम-जप करते। और यह सब इतनी लगन और निष्ठा से करते कि बड़े-बड़े कर्मकाण्डी पण्डितों को लजा देते। आसपास के लोग देखकर दंग रह जाते।

जहां तक मुकदमों का सम्बन्ध था, भोलानाथ और धनंजय की नीति यही थी कि मामले जितने भी अधिक लम्वाते वनें उतने लम्वाते जाओ। 'अशुभस्य कालहरणम्' की नीति ही इस परिस्थिति में सर्वश्रेष्ठ थी। इन मुकदमों से जो खलवली मची उसके कारण जोशी जी की प्रतिष्ठा में धीरे-धीरे क्षति होने लगी, उनकी साख की जो ढंकी मूठ थी वह धनंजय के निर्भीक स्टेटमेंट के वाद खुल गई थी, उनके खिलाफ आरोप करने वाले लोगों के मुंह भी खुल गए थे, और इन सव मामलों के कारण राष्ट्रीय नेताओं के मन में भी खटका हो गया था कि कहीं न कहीं कोई न कोई गड़बड़ ज़रूर है। वरना नाहक इतना हो-हल्ला क्यों मचता? स्वयं जोशीजी के गिरोह में और उनके राजनीतिक मित्र-परिवार में यह विचार उठने लगा कि धनंजय और युगान्तर पत्र के साथ जो झगड़ा खड़ा कर दिया गया वह अवास्तव था, क्योंकि उससे लाभ की वजाय नुकसान ही अधिक होने की सम्भावना है। पर अव क्या किया जाए? जिस तरह से मारा हुआ तीर और वोला हुआ शव्द वापस नहीं लिया जा सकता उसी प्रकार यह कदम भी तो वापस लौटाया नहीं जा सकता था। भोलानाथ का ख्याल था कि अगले आम चुनाव तक हम इन मुकदमों को खींच ले गए कि वस, पार लग गए। समय सव रोगों, दुःखों और समस्याओं की दवा है। काल-प्रवाह हर दिन जोशी जी के खिलाफ जा रहा है, हर दिन धनंजय के पक्ष में चल रहा है। वस, इन परस्पर-विरोधी धाराओं के मिलन-विन्दु तक ही हमें गाड़ी खींचनी है, उसके वाद तो मामला अपने आप ही हल हो जाएगा।

इसलिए हर मुकदमे को वे लोग अधिक से अधिक लम्वाते जाते थे। अदालतों की कार्रवाई अभियुक्तों के सहयोग के विना कभी पूरी नहीं हो सकती। उन्हें काफी सुविधाएं और अधिकार रहते हैं। वे उसका पूरा का पूरा लाभ उठा रहे थे। यदि नीचे की अदालत में किसी मामले में उनके खिलाफ निर्णय हो जाता तो वे उसके खिलाफ डिस्ट्रिक्ट ऐण्ड सेशन्स जज की अदालत में अपील करते। उसके वाद हाई कोर्ट में जाते और किसी-किसी मामले में तो सर्वोच्च न्यायालय तक जाते। जव तक इन मुद्दों का निर्णय नहीं होता तव तक मुकदमे स्थगित रहते। मुद्दे वेकार भी नहीं रहते, काफी महत्वपूर्ण होते, क्योंकि शासकीय पक्ष की ओर से कानूनी कार्रवाई कम, धांधली ज़्यादा चलती थी। भोलानाथ और धनंजय की इस नीति से शासकीय पक्ष वाले और चिढ़ते, दांत-होंठ पीसते, पर कुछ नहीं कर पाते थे। समय की गति 'युगान्तर' पक्ष की स्थिति को मज़वूत वना रही थी। पहले हमले

में ही वह उखड़ जाता तो उखड़ जाता। पर अब तो लगता था कि बाज़ी सरकारी पक्ष के हाथ से निकल गई थी और सारे प्रदेश में यह वातावरण फैल गया कि यह झगड़ा अब अण्डर ग्राउण्ड (भूमिगत) चला गया, जल्दी तय नहीं होगा। धनंजय ने भी कुछ शान्ति की सांस ली।

पर राजकीय क्षेत्रों में युगान्तर-केस को लेकर काफी आग सुलगती रही। शासकीय दल की विरोधी पार्टियों ने इस आग को ठण्डा नहीं होने दिया। धनशेट्टिवार की समाजवादी पार्टी ने इसका सबसे ज्यादा फायदा उठाने की कोशिश की। बड़ी उठा-पटक और उछल-कूद की। चूंकि अब वह अदालत से बरी कर दिया गया था, धनशेट्टिवार अपने आपको एक 'हीरो' मानता था और सोचता था कि अगले चुनाव में मैं खड़ा रहूंगा और जोशी जी के दल को, वह भ्रष्टाचार में लिप्त होने के कारण, परास्त कर सकेगा। मन्त्रिपद पाने के स्वप्न भी वह देख रहा था। और धनशेट्टिवार ने दिल्ली में जाकर शासकीय दल के श्रेष्ठि वर्ग में जोशी जी के खिलाफ शिकायतों पर शिकायतों की भरमार कर दी।

भोलानाथ को मित्र-प्रेम के कारण बार-बार यह मोह होता था कि यदि जोशी जी के विरुद्ध पक्षों के लोगों की कार्रवाई सफल हो गई तो धनंजय के गले पर लगा हुआ फंदा निकल जाएगा। भोलानाथ बार-बार कहता :

'धनंजय, तुम खुद दिल्ली जाकर इस मामले में कोशिश क्यों नहीं करते? तुम्हारा भी तो वहां खूब परिचय है? देश के कतिपय नेता स्वातंत्र्य-संग्राम में तुम्हारे साथी थे। क्या वे तुम्हारे प्रति किए गए अन्याय का परिमार्जन नहीं करेंगे?'

धनंजय का यह मत नहीं था। पर इस समय वह कोई वाद-विवाद नहीं करना चाहता था। शहर का वातावरण इन मुकदमों की चर्चा और हलचल से भरा हुआ था। उस वातावरण में इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर तटस्थता और निर्विकार दृष्टि से विचार करना कठिन था। इसलिए उसके मन में बार-बार यही विचार उठ रहा था कि बाबाजी के आश्रम में चला जाए। वहां के शांत वातावरण में ही इन गम्भीर प्रश्नों की ऊपापोह हो सकती थी। इधर काफी दौड़-धूप और विवंचना के कारण वह कुछ थकावट भी महसूस कर रहा था।

संयोग की बात हुई कि बाबाजी के यहां से एक आदमी आया और बोला, 'बाबाजी ने आपको बुलाया है। कृष्ण-जन्म का उत्सव होने वाला है। आप लोग

उसमें शामिल हों, ऐसी उनकी इच्छा है।'

वह पहला मौका था जब बाबाजी ने खुद धनंजय के पास संदेशा भेजा था। क्या उन्हें पता चल गया कि उसके अंतर में हृदय-मंथन चल रहा है?

और वह हृदय-मंथन इस बात पर नहीं था कि भोला बार-बार दिल्ली जाने पर ज़ोर दे रहा है। उसकी दृष्टि इस समय केवल अपने केस पर नहीं थी। आम चुनाव एक वर्ष के फासले पर खड़े थे और तब तक तो युगान्तर का मामला कोई न कोई स्पष्ट रूप लेकर सामने आ ही जाएगा, जो उसके लिए श्रेयस्कर होगा, ऐसी उसकी धारणा थी। पर रह-रहकर उसे जो अन्तर्व्यथा हो रही थी वह इस संघर्ष की तह में जो बुनियादी सवाल थे उनके बारे में थी। युगान्तर-केस के कारण, जिसके कुछ मामले सर्वोच्च न्यायालय में गए थे, सारे देश में यह बात तो फैल गई थी कि एक अखबार बड़ी मुस्तैदी के साथ अपनी आत्मा और अस्तित्व के संरक्षण की लड़ाई लड़ रहा है जिसकी तह में सत्ता के दुरुपयोग की तथा भ्रष्टाचार की समस्याएं हैं, जो केवल एक ही सूबे का सवाल नहीं हैं, पर कम-बेशी परिमाण में सारे देश का सवाल है। प्रान्त-प्रान्त से उससे मिलने के लिए लोग आते और कहते कि जगह-जगह गांधी के आदमी गांधी के मार्ग से हटते जा रहे हैं, सत्ता और लोभ की माया में लिप्त हो रहे हैं, कर्तव्यभ्रष्टता तथा चरित्र-हीनता बड़े पैमाने पर बढ़ रही है, और हम भारत के ऊंचे आदर्शों से गिरते जा रहे हैं। क्या सचमुच देश में सत्वगुण का ह्रास और तमोगुण का प्रभाव व्यापक परिमाण में बढ़ रहा है? क्या इस पुण्यभूमि को सचमुच कलि का काला चरण पदाक्रान्त कर रहा है? यदि यह सब है तो इस महान संकट से देश की रक्षा कैसे होगी? कैसे उसका उद्धार होगा?

'चलो भोलानाथ। बाबाजी के आश्रम चलें। मुकदमे की अगली तारीख को तो अभी एक सप्ताह है। वहां चलकर अपने प्रश्नों का समाधान होगा और मेरा हृदय-मंथन रुकेगा।'

भोलानाथ ने भी अपनी लाठी उठाई और दोनों मित्र सन्त देवाजी महाराज के आश्रम में जाने के लिए निकल पड़े। वही तीसरे दर्जे पैसेंजर गाड़ी की यात्रा। और वही दो मील की पैदल यात्रा जो इस समय वर्षा ऋतु के कादों-कण्टक के कारण बड़ी कठिन और कष्टप्रद रही। सामान की गठरी सिर पर थी, उसमें जूते बांध लिए गए थे, और कपास की काली ज़मीन के भयंकर कीचड़ में वे दोनों

मित्र धीरे-धीरे अपना रास्ता तय कर रहे थे। कहीं-कहीं तो घुटने-घुटने तक पैर भीतर धंस जाते थे। बीच में एक नाला पड़ता था जिसके पानी में बाढ़ भर आई थी। वहां तो उन्हें सिर्फ लंगोट पहनकर छाती भर पानी में से अपना मार्ग निकालना पड़ा। पैर लड़खड़ा रहे थे, पर दोनों दोस्त एक दूसरे का कन्धा पकड़कर उस नाले को चींटी की गति से पार कर रहे थे और मुंह से कहते जाते थे, 'जय देवाजी महाराज!'

आश्रम में वे जब पहुंचे तो उनका रूप-रंग देखने के काबिल था। उन्हें देखते ही बाबाजी खिलखिलाकर हंस पड़े। बाबाजी की विनोद-बुद्धि भी गजब की थी। बोले, 'कैसी रही भगवन्?'

'बहुत अच्छी!' धनंजय और भोला ने जवाब दिया।

'तो क्या भगवान के दर्शन यों ही होते हैं?' बाबाजी ने मुसकराते हुए कहा। 'मरे बिना तो स्वर्ग नहीं मिलता मेरे भाई। कोई बात नहीं। अब प्रेम से स्नान-ध्यान करो, भोजन तैयार है।'

और जब नगाड़े का ढमाका और चौघड़े के स्वर धनंजय के कानों पर पड़े तो उसे लगा जैसे उसका सारा श्रम-परिहार हो गया और वह आनन्द की एक दूसरी दुनिया में ही पहुंच गया।

४६

बाबाजी कृष्ण-जन्मोत्सव के कार्यक्रमों में व्यस्त थे। मन्दिर में दिन-रात भजन-पूजन, नाम-संकीर्तन चलता रहता था। बाबाजी और उनके आश्रमवासियों ने उपवास किया था। बाबाजी अक्सर मन्दिर में रहते या फिर अपनी कुटिया में ध्यानावस्था में पड़े रहते। धनंजय और भोलानाथ भी कुछ देर के लिए कीर्तन में जाकर बैठे, और फिर उठकर दूर खेत में देवी के मन्दिर के चबूतरे पर बैठ गए। ऊपर नीम के वृक्ष की शीतल छाया थी। ठण्डी हवा बह रही थी जो बड़ी प्यारी लगती थी। धनंजय ने कहा, 'भोला, इस भूमि का ही कुछ ऐसा प्रताप दिखाई देता है जो यहां आते ही मन शान्त हो जाता है, सारा अन्तर्दाह नष्ट

हो जाता है। बाबाजी हमसे बातचीत कर पाएं या न कर पाएं, हमें बड़ी शान्ति अनुभव होने लगती है।'

'तुम ठीक कहते हो धनंजय। बाबाजी का मेरा भी इतने वर्षों का अनुभव है, पर मैंने देखा है कि वे बातचीत तो बहुत ही कम करते हैं। वे न किसीका ज्योतिष बताते हैं न किसीको गण्डा या तावीज़ देते हैं, और न किसीको जप-तप की माला फेरने को कहते हैं। पर जो उनपर श्रद्धा रखते हैं, विश्वास करते हैं और उनके तत्वों पर आचरण करते हैं वे उनकी कृपा के पात्र हो जाते हैं और उनका सब काल-कण्टक अपने आप ही दूर हो जाता है। जो उनके स्नेह और प्रभाव की परिधि में पहुंच जाता है उसे सब समय यही लगता है कि कोई दैवी शक्ति हमेशा उसका संरक्षण कर रही है, उनके आशीर्वाद का छत्र उसके सिर पर है, और वह असहाय और अकेला नहीं है।'

'यही बात मैं तुमसे कहने वाला था, भोला। आज बाबाजी के सम्पर्क में आए मुझे भी दो-तीन साल होने को आए, और यह समय मेरे जीवन में कितना भयंकर था यह तुम भी जानते हो——पर किसी सुन्दरता के साथ हमारी समस्याएं धीरे-धीरे सुलझती जा रही हैं? मुझे विश्वास है कि संकट के ये बादल शनैः-शनैः हट जाएंगे और हमारी संस्था बच जाएगी।'

'तुम यदि दिल्ली जाकर गत तीन वर्षों का कच्चा चिट्ठा राष्ट्र के नेताओं से कह सुनाओ तो ये बादल और भी जल्दी हट जाएंगे।' भोलानाथ ने कहा।

'नहीं भोला, यह बात मुझे जंचती नहीं। मैं इन मुकदमों से उत्पन्न हुई राजनीति में नहीं पड़ना चाहता। ये मुकदमे तो अब अपने आप ही सुलझ जाएंगे, थोड़े समय की ही बात है। इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। पर मुझे आजकल जो बात खटक रही है वह है देशव्यापी भ्रष्टाचार और नैतिक मूल्यों का ह्रास। युगान्तर की लड़ाई तो उसका एक प्रतीकमात्र है। पर जिस मनोवृत्ति के कारण यह लड़ाई मुझपर लादी गई वह कम-अधिक परिमाण में सारे देश में फैली हुई है।'

'क्यों नहीं फैलेगी? इतना बड़ा युगान्तर-काण्ड हुआ जिसमें सरासर भरी अदालत में एक मुख्य मंत्री के खिलाफ आक्षेप किए गए, और प्रधान मंत्री के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी! इस बात को भी अब तीन वर्ष होने को आए। लोग क्या सोचेंगे, यही न कि जोशी जी उनकी राजनीतिक पार्टी के मुख्य मंत्री हैं, उनको हटाया गया तो पार्टी की बदनामी होगी, और फिर दूसरे सूबों में भी इसी तरह की पंचायत शुरू

हो जाएगी ? नीतिमत्ता से पार्टी की ममता ज़्यादा होगी, इस बात की कम से कम प्रधान मंत्री से तो उम्मीद नहीं थी। सच कहता हूं धनंजय, इससे मुझे बड़ा दर्द है। गांधीजी के वारिस से तो ऐसी उम्मीद नहीं थी···'

'उनका भी एक पक्ष है भोला। उनके पास जब तक पूरा सबूत नहीं आ जाता तब तक वे भी क्या करें ? मुख्य मंत्री जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति के खिलाफ कदम उठाना आसान काम नहीं है। जब तक मामला ठोक-पीटकर नहीं देख लिया जाता तब तक वे भी क्या कर सकते हैं ? और मामले न्यायालय में विचाराधीन होने के कारण उनसे पूरी सफाई भी नहीं मांगी जा सकती। इसलिए तो सारी बात उलझ पड़ी है।'

'यह तो धनंजय, महज 'टेक्निकल' अड़चन है, और उसी तरह की सफाई है। इससे जनमत को संतोष नहीं होगा। वह तो मोटी-मोटी बातों को देखता है। मिनि-स्टरों के बड़े-बड़े बंगले, उनकी तथा उनके रिश्तेदारों की बड़ी-बड़ी मोटरें, शाही रहन-सहन, लम्बे-लम्बे दौरे, बड़े-बड़े भत्ते, जनता पर इस सबका क्या असर पड़ता है ? मैं पिछले महीने ही तुम्हारे कानूनी कागज़ लेकर दिल्ली गया था, वहां भी यही हाल है। गांधीजी की वह सादगी और मितव्ययिता कहां ? ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारा गांधीजी से काम खत्म हो गया, और इसलिए हमने उन्हें अलग उठाकर धर दिया। और हम लोग विदेशों की नकल करने लगे।'

'सो तो तुम ठीक कहते हो भोला। आजकल चारों ओर जो देख रहा हूं उससे तो यही लगता है कि हम लोग मुंह से तो गांधी की रट लगाते जाते हैं, गांधी-नगरों और गांधी-भवनों का निर्माण करते जा रहे हैं, पर जिस एक भवन में—हृदय-भवन—में उन्हें रखना था उससे उन्हें हटा दिया है। गांधी के देश में ही गांधीजी का यह निर्वासन बड़ा दुखदायी लगता है भोला।'

'उनका निर्वासन क्यों नहीं होता धनंजय ? उनके कारण तो अब हमें अड़चन होने लगी है। उनकी विचारधारा और जीवन-प्रणाली की अगर हम दुहाई देने लगे तो फिर इतनी बड़ी-बड़ी तनख्वाहों और मुगलों की तरह शाही रहन-सहन के लिए कहां गुंजाइश है ? उसके लिए तो यही कहना ज़रूरी था कि गांधी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ठीक थे, पर स्वतंत्र भारत के नव निर्माण के लिए वे 'आउट ऑफ डेट', दकियानूस और पुराने ख्यालों के मालूम पड़ते हैं। नये भारत का निर्माण तो आधुनिक ढंग से होना चाहिए, विज्ञान और तकनीक के आधार पर होना चाहिए,

वरना दुनिया हमपर हंसेगी। इसीलिए आए बड़े-बड़े कल और कारखाने, बड़े-बड़े बांध, बिजली और इस्पात की योजनाएं···'

'इनकी भी आवश्यकता है भोला, और स्वतन्त्र देश के निर्माण में इनका भी स्थान है। पर दुर्भाग्य यही है कि इन्हींको इतनी प्रधानता दी जा रही है कि भारतीय जीवन की अन्य विशेषताओं की तरफ ध्यान ही नहीं दिया जा रहा है। आखिर इस्पात के कारखाने तो कवेण्ट्री और पिट्सबर्ग में भी हैं, नदी और बांध की योजना तो टैनेसी वेली में भी है––इनमें हमारे लिए ऐसी विशेष भूषण की क्या बात हो गई कि हमने कोई बड़ा कमाल करके दिखा दिया? कोई भी सर्वसाधारण शासन यदि आवश्यक पूंजी, इंजीनियरों और योजकों की व्यवस्था करे तो यह काम आसानी से हो सकता है। इनको जो ज़रूरत से ज़्यादा महत्व दिया जा रहा है वह ठीक नहीं है···'

'ये लोग तो आजकल जीवन-मान ऊंचा करने के पीछे पड़े हैं—लोगों को अच्छा खाना-कपड़ा चाहिए, अच्छे मकान चाहिएं, उनके रहन-सहन का ढंग आधुनिक पद्धति का होना चाहिए। इन चीज़ों की आवश्यकता है, यह मैं मानता हूं क्योंकि भूखे पेट तो भजन भी नहीं हो सकता। पर शरीर-सुख की कल्पना तो मुख्यतः पश्चिम के भौतिकवाद से आई है। वहां पहले विज्ञान के चरण पड़े, उसके साथ औद्योगिक क्रान्ति आई, सस्ते और नफीस माल का उत्पादन हुआ, सुखासीन जीवन का लालच बढ़ा, बाज़ारों की तलाश हुई, उसमें से साम्राज्यवाद निकला, महायुद्ध हुए, नर-संहार हुआ, और मानवता की सभ्यता ही तबाही के दरवाज़े पर जाकर खड़ी हो गई। इसी अन्धे रास्ते का अनुकरण करके भला हमारा क्या कल्याण होने वाला है धनंजय?' भोलानाथ ने पूछा।

'कल्याण? इसमें क्या कल्याण होगा भोलानाथ? पश्चिमी सभ्यता ने इसी राह चलकर एक ही पीढ़ी के भीतर दो भयंकर विध्वंसक महायुद्ध देखे और अब वह अणु युग में जा पहुंची है जहां दो-चार बम ही समूची पृथ्वी का नाश कर सकते हैं। अब यह सभ्यता जान गई है कि एक गलत कदम उठाया कि दुनिया चौपट हुई ही समझो। पर पश्चिमी दुनिया हिंसा और द्वेष के कारण एक ऐसे दुश्चक्र में फंसी है कि उसे मार्ग नहीं सूझ रहा है। उसने भारत की तरफ आशा की नज़रों से देखा—यही एक मुल्क था जिसकी वैदिक काल से एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति चली आ रही है, एक खास दृष्टि है, जिसमें राम और कृष्ण पैदा हुए,

बुद्ध और गांधी पैदा हुए और जिसकी केवल शान्ति और अहिंसा की परम्परा रही है। इसी मार्ग पर चलकर इसने आधुनिक युग में एक ऐसे बलशाली साम्राज्य से स्वतन्त्रता हासिल कर ली, जिस साम्राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता था। सारा विश्व इस प्रयोग को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। साथ ही उसे विश्वास भी हो गया कि यही देश हमें हिंसा के दुश्चक्र से बचने का तथा सभ्यता का मार्ग दिखा सकेगा। दुनिया हमारी तरफ आशा और आदर से देखा करती थी, पर हम उनकी आशा पूरी करना तो दूर रहा, उन्हींका अन्धानुकरण करने लगे, और अमेरिका, इंग्लैंड या रूस की देखा-देखी अपने देश की योजनाएं बनाने लगे। विदेश के लोगों को धक्का लगा––अरे, ये तो हमारा ही मार्ग अख्तियार कर रहे हैं। कहां तो हमने सोचा था कि ये हमें नई राह दिखाएंगे, और कहां ये हमारी उसी घिसी-पिटी राह पर ही चल रहे हैं, जिसने हमें सर्वनाश के गर्त के पास पहुंचा दिया। उन्हें कितनी निराशा और विफलता हुई होगी? हमें भी हुई है। शताब्दियों के बाद तो हमारा देश स्वतन्त्र हुआ, और इतना विशाल क्षेत्र एक झण्डे और एक छत्र के नीचे आया। कितनी पुरानी हमारी संस्कृति और सभ्यता है! उसकी पृष्ठभूमि पर नया भारत और नया जीवन निर्माण करने की हमारे पास एक स्वर्ण-संधि आई थी, पर हम आधुनिकता और भौतिकवाद पर आधारित सभ्यता की चकाचौंध में उसे खो बैठे। हजारों वर्षों के बाद तो ऐसा ऐतिहासिक मौका आता है। पर उसे हम खो बैठे इससे बढ़कर भाग्यहीनता और क्या हो सकती है?'

'इसका कारण यह है धनंजय, कि अपने जो प्रधान मंत्री हैं न, वे आधुनिक विज्ञान की सभ्यता में पले हुए व्यक्ति हैं। उनका वही दृष्टिकोण है जो पश्चिमी राष्ट्रों का है। उस दृष्टिकोण में भारतीयता तो नाममात्र की है। जैसे इमर्सन के बारे में कहा जाता है कि वे एक भारतीय ऋषि और चिंतक की तरह थे जो धोखे से अमेरिका में पैदा हो गए थे, वैसा ही हाल हमारे प्रधान मंत्री का है। वे बड़े सहृदय हैं, परिश्रमी हैं, भारत-निष्ठ हैं, पर भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि नहीं हैं। गांधी जी ने उन्हें अपना वारिस तो बनाया पर उनमें गांधी-दर्शन और गांधीवाद की दृष्टि तो करीब-करीब नहीं के बराबर है। गांधीजी ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले उन्हें अपना उत्तराधिकारी तो घोषित कर दिया था, पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वे प्रधान मंत्री के साथ बैठकर इस बात का फैसला करना चाहते थे कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत का नक्शा कैसा हो, नवीन भारत का मन्दिर किस तरह का हो?

पर खेद है कि यह बात तय होने के पहले ही गांधीजी की आंखें बन्द हो गईं और प्रधान मंत्री ने अपने आपको देश का सर्वेसर्वा पाया। सो, उन्होंने जैसा उनका प्रामाणिक दृष्टिकोण था उसी तरह भारत का निर्माण करने की योजना बनाई। इसमें उन्हें दोष देना भी मुश्किल है क्योंकि आदमी तो आखिर अपनी बुद्धि और वृत्ति के अनुसार ही काम करेगा। वे जो भी कर रहे हैं वह अच्छी नीयत से कर रहे हैं, पर यदि मूल मंज़िल ही गलत रही तो सफर की सारी मेहनत तो बेकार ही गई न ? हां, रास्ते पर चलने का, कुछ न कुछ करते रहने का, बग़ैर आराम के परिश्रम करने का संतोष हमें ज़रूर मिलेगा, पर इसमें यदि बुनियादी दिशा-भूल ही हो गई हो तो हम कहां जा पहुंचेंगे, ज़रा सोचो तो ?'

भोलानाथ जो कहता था उसमें तथ्य नहीं है, ऐसा तो धनंजय नहीं कह सका। वह ज़रा विचार में पड़ गया। उसे खामोश देखकर भोलानाथ ने कहा, 'क्यों, तुम्हारे प्यारे प्रधान मंत्री पर मैं आक्षेप कर रहा हूं इसलिए तुम नाराज़ हो गए ? क्या सोच रहे हो ?'

'नहीं नाराज़ी-वाराज़ी की बात नहीं है। प्रधान मंत्री के लिए सचमुच मेरे दिल में बड़ा प्यार है। वह एक बहुत ही ईमानदार और निर्मल अन्तःकरण के व्यक्ति हैं, बच्चों से जब मिलते हैं तो कितना विशुद्ध और अकृत्रिम रहता है उनका स्नेह ! भावुक हैं, बुद्धिवादी हैं...'

'बुद्धिवादी हैं, पर चिन्तक नहीं हैं, धनंजय ! उन्होंने कोई नई विचारधारा या नया समाजशास्त्र ईजाद नहीं किया है। जो विचारधाराएं मौजूद हैं उन्हींका वे विवेचन और पिष्टपेषण बहुत उत्तम रीति से करते हैं। उसका ढंग बहुत आकर्षक और नवीन होता है, पर उसमें मौलिकता नहीं रहती। रूसो, ताल्स्तॉय या गांधी —ये सब चिन्तक थे, क्रान्तिकारी विचारधारा या जीवन-प्रणाली के निर्माता थे। प्रधान मंत्री क्रान्ति के पुत्र हैं, पर क्रान्ति के पिता नहीं हैं, प्रणेता नहीं हैं। इसीलिए विश्व की चोटी के लोगों में उनकी गणना नहीं होगी। मेरा तो ख्याल है कि इतिहास में वे यदि स्मरण किए जाएंगे तो इसलिए नहीं कि वे बड़े राजनीतिज्ञ थे, या भारत जैसे विशाल देश के पहले स्वातंत्र्योत्तर प्रधान मंत्री थे, बल्कि अपनी दो-चार पुस्तकों के कारण, जो उन्होंने जेल की तनहाई में लिखी हैं। उनमें उनकी मानवीयता के जो दर्शन होते हैं वे ज्यादा प्रिय और शाश्वत होंगे, बजाय उनके दीगर कामों के, जैसे भिलाई और भाखड़ा नांगल के। ग्लैडस्टन और पिट

को आज कौन याद करता है भाई ? चर्चिल को लोग भूल जाएंगे पर उसके युद्ध-संस्मरणों को नहीं।' भोलानाथ कहता गया। आज न जाने उसे क्या हो गया था जो वह बोलने के मूड में था। वह जो बोल रहा था वह खुद बोल रहा था या जिस धरती पर वह बैठा था वह उससे बुलवा रहा रही थी, यह धनंजय नहीं समझ सका। वह उसकी तरफ बड़े आश्चर्य और कौतुक से देखते हुए बोला :

'तुमने तो यार इस मामले में बहुत कुछ सोचा-समझा है, ऐसा दिखता है। पर जो काम प्रधान मंत्री कर रहे हैं उसे किसी न किसीको तो करना ही पड़ता। शासन-तन्त्र सम्हालना, और देश को एक स्वस्थ और स्थायी शासन देना, जो प्रजातंत्र के सिद्धान्तों को लेकर चले, यह छोटा काम नहीं है। अड़ोस-पड़ोस के देशों में क्या हुआ या हो रहा है, देखा नहीं तुमने ? प्रधान मंत्री के कारण ही तो हमारे देश की इज़्ज़त बढ़ी है, दुनिया का ध्यान उसकी ओर गया है, यह तो मानना ही होगा।'

'सो तो मानना ही होगा धनंजय। पर बुद्ध और गांधी के देश का जो भी प्रधान मंत्री होगा वह यही तो करेगा। आखिर शान्ति की भावना तो हमारे रग-रग में भरी हुई है। हमारा देश किसी भी लड़ाई में कैसे शामिल हो सकता है, और किसी एक गिरोह में कैसे बैठ सकता है ? वैसी न तो हमारी परम्परा है और न हमारे यहां की आबोहवा।'

'तुम तो आज उन्हें किसी भी बात का क्रेडिट देने के लिए तैयार नहीं हो भोला, आखिर वकील पेशा आदमी ठहरे। जिस बाज़ू से खड़े हो गए सो खड़े हो गए। फिर दूसरा बाज़ू तुम्हें दिखता ही कहां है ?'

'ऐसी बात नहीं है धनंजय! मुझे राजनीति से क्या लेना-देना ? मैं तो प्रधान मंत्री से एक बार भी नहीं मिला और न कभी इस जनम में मिलने का संभावना है। दूर से ही दरस-परस हो जाते हैं उतने ही काफी हैं। मैं उनका तो शुभचिंतक ही हूं—वे सौ साल जिएं ऐसी मेरी हार्दिक कामना है। पर मुझे खेद इसी बात का है कि वे भ्रष्टाचार को नहीं रोक सके, चरित्र के मूल्यों की सुरक्षा नहीं कर सके। उनका ध्यान दुनिया की तरफ पहले जाता है, विदेश में क्या होता है इसकी ज्यादा फिक्र है, पर अपने देश में, घर में दिया तले कैसा अंधेरा है यह उन्हें दिखाई नहीं देता। नतीजा यह होता है कि हमारी जो कुछ भी प्रगति होती है उसका पूरा लाभ हमारे हाथ नहीं लगता। हमारी हालत उस मेंढक की तरह हो जाती है जो

कुएं की चिकनी दीवाल पर दो फुट ऊपर चढ़ता है और एक फुट नीचे खिसक जाता है। यदि देश में आज इतनी कर्तव्यभ्रष्टता और चारित्रिक अनास्था नहीं होती तो हमारी तरक्की न जाने कितनी अधिक हो जाती। इस चारित्रिक संकट का क्या इलाज है कुछ समझ में नहीं आता। पर जब तक वह संकट देश से नहीं हटता तब तक हमारी सारी प्रगति खोखली और अस्थायी है ऐसी मेरी निश्चित राय है।' भोलानाथ ने कहा।

'कर्तव्यपरायणता और चारित्रिक निष्ठा तो जीवन की शाश्वत प्रेरणाओं से आती है भोलानाथ।' धनंजय ने कहा, 'महज़ खाना-कपड़े का विचार करके तथा केवल जीवन-मान बढ़ाने की चिन्ता से तो वह नहीं पैदा होती। शारीरिक भूख शमन होने के बाद तो आत्मा की भूख मनुष्य को सताने लगती है। आत्मिक क्षुधा की अतृप्ति ही हमारे समस्त नैतिक पतन का कारण है। आत्मा की यह क्षुधा ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए तड़पती है, मानव की आत्मा विश्व की ब्रह्मात्मा में विलीन होने के लिए छटपटाती है, और क्षुधा की पूर्ति या तृप्ति का मार्ग धर्म है। पर धर्म की तरफ हमारे शासकों का ध्यान ही नहीं है।'

'धर्म की तरफ? ओ बाबा! आजकल तो इस धर्मपरायण देश में धर्म का नाम मुंह से निकालना भी पाप है!' भोलानाथ दोनों कानों पर हाथ रखते हुए बोला, 'आजकल धर्म की बात करने वाला आदमी पुरातनवादी है, परम्परावादी है, कट्टरपंथी है, अन्धविश्वासी है, जातिवादी है—सब कुछ है पर आधुनिक जगत का सभ्य नागरिक नहीं है। इस धर्मनिरपेक्ष राज में तुम धर्म की बात करते हो? उसमें तो हम-तुम जैसे जप-ध्यान करने वाले लोगों के लिए जो संतों के पीछे पड़े रहते हैं, कोई स्थान नहीं है।' भोलानाथ ने व्यंग्य के साथ कहा।

'धर्म के नाम पर उसकी विकृतियों को फांसी पर चढ़ा दो तो बात अलग है। पर मेरी निश्चित धारणा है कि आज के भारत की सारी बुराइयां और मुसीबतें धर्मपथ से भ्रष्ट होने के कारण ही हैं, भोला।' धनंजय ने आवेश में कहा।

'सो कैसे, जरा मुझे समझाओ तो। इस सम्बन्ध में मेरे भी अपने कुछ विचार हैं पर तुम्हारी क्या धारणा है यह मैं जानना चाहता हूं।' भोलानाथ ने कहा।

'धर्म—यह समाज को धारण करने वाला नीति-तत्व है, भोलानाथ।' धनंजय ने कहा, 'देश की संस्कृति और जीवन-प्रणाली हमेशा उसीपर आधारित रही

है। यह तत्व हमारे रोम-रोम में, रक्त के बिन्दु-बिन्दु में सना हुआ है। यही कारण है कि गांधी अपने जीवन में इतनी लोकप्रियता और श्रद्धा सम्पादन कर सका जो विश्व के किसी महापुरुष को, ईसा और बुद्ध को भी, प्राप्त नहीं हुई थी। उसका समस्त जीवन-दर्शन धर्म पर आधारित था, और भारतीय जनता की समझ में वह फौरन आ जाता था। वह लंगोटी और अंगोछा पहने घूमता था, रोज़ प्रातः-सायं रामधुन गाता था, एक झोंपड़ी में रहता था, हमेशा जनकल्याण की भावना में रत रहता था, वह जनता के लिए एक खुली हुई किताब की तरह था जिसका एक-एक पृष्ठ वह पढ़ सकती थी। और वह उसके पीछे पागल होकर दौड़ पड़ी। उसके बल पर उसने इस देश में इतनी महान शक्ति पैदा की कि अंग्रेज़ी साम्राज्य को हटना पड़ा और दुनिया के सामने उसने एक ऐसा क्रान्तिकारी जीवन-दर्शन रख दिया जो केवल पुस्तकीय शास्त्र नहीं था, पर प्रत्यक्ष जीवन की प्रयोगशाला में सिद्ध हुआ वास्तविक प्रयोग था? उसका प्रयोग आगे चलाने का उत्तरदायित्व इसी देश के लोगों पर था, जो उसके उत्तराधिकारी थे, उसकी संतान थे। पर हमने उस ऐतिहासिक कर्तव्य से मुंह मोड़कर पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करने में ही जीवन की सार्थकता समझ ली—उस सभ्यता का जो भौतिकवाद और भोगवाद पर आधारित है और जिसका दिवाला पिट गया है। और वह भी आधुनिकता के नाम पर! भला सोचो तो, गांधी की आत्मा क्या कहती होगी?'

'तुम बात तो ठीक कहते हो, धनंजय। तुम्हारा क्या ख्याल है—गांधीजी को इतनी अद्भुत लोकप्रियता मिली उसका क्या कारण है?' भोलानाथ ने पूछा।

'इस देश में संतों और ऋषि-मुनियों की पूजा करने की परम्परा रही है, चरित्र और चिंतन का बहुमान रहा है। केवल सत्ता या धन की कोई महिमा नहीं रही है। राजसत्ता ने भी धर्मसत्ता के सामने सिर झुकाने में हमेशा अपना गौरव माना है। हमारे यहां चक्रवर्ती-पद उसी राजा को मिला है जो सत्ता का उपयोग स्वार्थ के लिए नहीं पर एक न्यासी (ट्रस्टी) की तरह लोक-मांगल्य के लिए करता था। ऐसे राजाओं ने हमेशा धर्मगुरुओं के आदेशों के अनुसार चलकर ही धर्मसिंहासन की स्थापना की है। राज्यसत्ता पर धर्मसत्ता का सदैव अंकुश रहता था इसलिए वह स्वच्छन्द और अमर्यादित नहीं हो पाती थी। राजा रामचन्द्र के गुरु वसिष्ठ मुनि थे, राजा जनक के याज्ञवल्क्य ऋषि। धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण के आदेशों के अनुसार धर्मराज्य की स्थापना की, तो मगध सम्राट ने महा-

मंत्री चाणक्य को अपना सलाहकार माना जो स्वयं एक कुटिया में रहता था। ऐतिहासिक काल में छत्रपति शिवाजी महाराज ने स्वामी रामदास को अपना गुरु माना, तो आधुनिक काल में गांधी ने राज्यसत्ता के बाहर रहकर ही राज-काज का नियन्त्रण किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले उनके शिष्यों ने उनका नियन्त्रण पूरा-पूरा माना—शायद इसलिए कि उसके विना गति नहीं थी—क्योंकि स्वातंत्र्य-संग्राम के नये तन्त्र (टेकनीक) के वही आचार्य थे। पर स्वतन्त्रता मिलते ही हमारे नेताओं ने उनका नियन्त्रण दूर कर दिया और लगे अपनी मनमानी करने। तभी से हमारे देश की किश्ती विना मस्तूल के जहाज़ की तरह इधर-उधर भटक रही है। जब तक गांधी का उपयोग था उसे हमने सिर पर लेकर नाचा, ज्योंही हमारी क्षुद्र बुद्धि में उसका काम खतम हो गया उसे सिर से उतारकर अलग धर दिया। इतिहास इस भयंकर अवसरवादिता और कृतघ्नता पर क्या कहेगा, ज़रा सोचो तो?'

'पर ऐसा क्यों हुआ धनंजय? आखिर इस घटना के पीछे कोई न कोई ताकत या नियम तो होना ही चाहिए। गांधी के ही देश में उसके मरने के बाद ही इतना अ-गांधीत्व क्यों?' भोलानाथ ने पूछा।

'मुझे भी इस घटना से बड़ा आश्चर्य होता है भोला। मुझे लगता है कि प्रत्येक महान क्रान्ति के बाद एक प्रतिक्रान्ति होती है। ईसा की मृत्यु के बाद ईसाइयत कुछ काल के लिए बर्बरता की प्रतीक हो गई। बुद्ध के महानिर्वाण के बाद कुछ समय के लिए दुर्नीति और अनाचार का साम्राज्य फैल गया। और आज गांधी के बाद भी व्यापक परिमाण में भ्रष्टाचार और चरित्र-बल का ह्रास दिखाई देता है। कोटि-कोटि सूर्य की प्रभा के अस्तंगत होने के बाद तो कुछ देर के लिए घुप्प अंधेरा हो जाना स्वाभाविक है। कुछ काल बीत जाने के बाद ही फिर संतुलन वापस लौटता है, और योग्यायोग्य का विचार स्थिर होता है। आज की अपेक्षा सौ वर्ष बाद गांधी अधिक शक्तिशाली होगा और हज़ार वर्ष बाद तो भगवान के अवतार की तरह पूजा जाएगा जैसा कि राम और कृष्ण के बारे में हुआ है।' धनंजय ने कहा।

'यह तो एक तात्त्विक पृष्ठभूमि की बात हुई, धनंजय। पर प्रत्यक्ष व्यवहार के क्षेत्र में तुम्हारा क्या ख्याल है कि देश में स्वतंत्रता के बाद हमें क्या करना चाहिए था? हम कहां गलती खा गए?'

'गांधी जी ने धर्म को ही जीवन का आधार माना था। धर्मरहित राजनीति को तो वे दूर से भी स्पर्श करने के लिए तैयार नहीं थे। उनका धर्म सर्वधर्मों का समन्वय था, उदार था। उसमें कट्टरता, दंभ या अन्धविश्वास के लिए स्थान नहीं था। वह हमारे देश की प्रकृति और गुण-धर्म के सर्वथा अनुकूल था। उसके कारण हमारे देश में चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा बढ़ी, त्याग और सादगी का महत्व बढ़ा, सादा रहन-सहन और ऊंचा चिंतन आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। स्वार्थ की जगह परमार्थ का, सत्ता की जगह सेवा का, पाखण्ड और मिथ्याचार का जगह सत्याचरण का, द्वेष और संघर्ष की जगह प्रेम और सद्भावना का वातावरण फैला। आदमी की इज्ज़त उसकी सत्ता या धन-दौलत के कारण नहीं, उसके चरित्र और गुणों के कारण होनी चाहिए ऐसा उनका कटाक्ष था। यह तो सर्वथा एक नई दृष्टि थी, पूर्णतः नय मूल्यों का आविष्कार था। वह था तो पुराना, हमारे देश की प्राचीन संस्कृति और परम्परा के अनुकूल, पर नया इसलिए लगता था कि वह पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुए अंग्रेजी शासन के ज़माने में अवतरित हुआ था, और वह उससे विलकुल भिन्न था। इसीलिए वह क्रान्तिकारी लगता था। उसीको अपनी राजनीति की आधारशिला मानकर हम आगे बढ़ते तो इतने गुमराह नहीं होते, इस तरह नहीं भटकते।'

'पर तुमने यह नहीं बताया धनंजय, कि प्रत्यक्ष व्यवहार में हम इस भटकने से बचने के लिए क्या कर सकते थे, तुम्हारी राय में स्वातंत्र्योत्तर भारत के नव-निर्माण की तस्वीर में क्या खामी रह गई ?' भोलानाथ ने प्रश्न किया।

'हमारी तस्वीर भदरंगी तस्वीर है भोला। इसमें सव तरह के रंग हैं, पर रंग-संगति नहीं है। हमने कुछ इंग्लैंड का देखा तो उसका अनुकरण कर लिया, कुछ अमेरिका में देखा तो उसे ले लिया, रूस में देखा तो उसे भी रख लिया, चीन गए तो वहां से भी कुछ विचार उठा लाए, और लोग सर्वोदय-सर्वोदय चिल्लाते हैं तो उसे भी रख लिया; यानी कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा। न इसमें कोई सूत्रबद्धता है, न एक निश्चित योजना। इसमें और सब हो पर भारतीयता की छाप करीब-करीब नहीं है। भारतीयता के नाम से ही यदि कुछ नेताओं को नाक-भौं सिकुड़ने लगे, और भारतीयता को पुरातनवाद मानकर ही उसपर हमला करने की वृत्ति जाग उठे तो और क्या होगा ?'

'पर उन लोगों का दिमाग तो विज्ञान से प्रभावित है। विज्ञान को ही वे

आधुनिक युग का परमेश्वर मानते हैं, सो उसका क्या किया जाए ?'

'विज्ञान से भारतीय संस्कृति की कोई दुश्मनी नहीं है भोला। उसे बदनाम करने के लिए ही खामखा यह इलज़ाम लगाया जाता है। विज्ञान की दृष्टि सत्य और ज्ञान की दृष्टि है, तर्कशुद्ध प्रणाली से तथ्य का खोज करने की दृष्टि है, और भारतीय जीवन-दृष्टि ने हमेशा इसे अतीव आदर ही दिया है। उपनिषद की एक कथा में यमराज ने नचिकेता को विश्व की समस्त धन-सम्पदा, सुरा-सुन्दरियां तथा भोग-विलास के साधन देने का प्रलोभन बताया, पर उसने इन सबको ठुकराकर मांगा केवल ज्ञान, आत्मा-परमात्मा के रहस्य की जानकारी। आद्यशंकराचार्य की भी यह दृष्टि थी कि जो बात तर्क और बुद्धि को न जंचे उसे कदापि ग्रहण मत करो। आत्मज्ञान के लिए ही तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने तप किए हैं। इसलिए यह कहना कि भारतीय संस्कृति ज्ञान की विरोधी है, उसका अपमान करना है। ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक आध्यात्मिक ज्ञान और दूसरा विज्ञान। जिस प्रकार सफल कर्म करने के लिए इन दोनों हाथों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार जीवन की पूर्णता के लिए इन दोनों प्रकार के ज्ञानों की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक ज्ञान का अर्थ ही है, अद्वैत। यानी सारी मानव-जाति का ही में अविभाज्य अंश हूं, जो चैतन्य तत्व मुझमें है वही सब चराचर भूतों में व्याप्त है, सारे मानव एक ही पिता की, ईश्वर की, संतान हैं, वे सब मेरे भाई ही हैं, उनकी सेवा और कल्याण के लिए ही मुझे विज्ञान की आवश्यकता है। यही दृष्टि ज्ञान-विज्ञानात्मक दृष्टि है, जो अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करती है। यदि विज्ञान के पीछे यह अद्वैत का तत्वज्ञान न रहा, एकत्व का तत्वज्ञान न रहा तो विज्ञान मानव का सर्वनाश ही करके छोड़ेगा। और सारा विश्व एक सुन्दर नंदनवन की जगह भयंकर श्मशान बन जाएगा।'

'सचमुच धनंजय, तुमने जो बातें कही हैं वे बहुत ही बुनियादी हैं। पता नहीं हमारे नेतागण इनके बारे में क्यों नहीं सोचते ?'

'क्या सोचेंगे भोलानाथ ? उन्हें वक्त ही कहां है ? सबके सब तो जाकर सरकारी पदों और ओहदों पर बैठ गए हैं जहां सुबह से शाम तक टेलीफोन, इंटरव्यू, फाइलें, भाषण, उद्‌घाटन, दौरे-प्रवास चलते रहते हैं। चौबीस घण्टे, दिन-रात जैसे उनके ऊपर कोई भूत सवार हो गया हो। इसमें कितना काम उपयोगी है और कितना बेकार है, भगवान जाने। इस अविश्रान्त भाग-दौड़ में उन्हें बुनियादी बातों

को सोचने-समझने की फ़ुर्सत कहां ? जो कुछ कॉलेज या जेल में पढ़ लिया, सो पढ़ लिया। जो संस्कार बन गए सो बन गए। अब नये संस्कारों तथा नये विचारों के लिए उनके पास समय कहां है, गुंजाइश कहां है ? दिमाग में जो कुछ है वही उनकी कमाई है, और उसके ताले खुलने का नाम नहीं लेते। जो सोचते हैं, विचारते हैं, चिन्तन करते हैं, उनकी समाज में या देश में कोई प्रतिष्ठा नहीं है। सभी गुण शासन में समाहित हैं, और सत्ता की परिधि के बाहर कुछ भी नहीं है, ऐसी धारणा बल पकड़ रही है। साहित्य, चिन्तन, स्वतंत्र पत्रकारिता सभी अधिकांश में शासनाभिमुख हो गए हैं। शासन के माध्यम से पंचवार्षिक योजनाओं के नाम से करोड़ों रुपया खर्च हो रहा है। साहित्य-निर्माण, समाज-कल्याण, कला-सृजन, शिक्षादान सभी कुछ सरकार के ज़रिये हो रहा है। शासन के प्रभाव का पंजा इतनी दूर तक फैला हुआ है कि उसकी परिधि से बचना मुश्किल होता है। जीवन-मान और मंहगाई इतनी बढ़ गई है कि जो लोग स्वाभिमान से स्वतन्त्र चिन्तन और समाज-सेवा का व्रत लेना चाहते हैं उनकी ज़िन्दगी कठिन हो गई है। इसलिए निर्भीक, स्वतंत्र और तेजस्वी व्यक्तियों के चिंतन और विचार-प्रदर्शन के लिए बहुत ही प्रतिकूल वातावरण है। राजनीति ने सारे देश के जीवन को इतना ग्रसित कर लिया है कि सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना हो रही है। शासन के ढोल-ढमाके में कवि या गायक का स्वर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह क्षीण और निष्प्रभ लगने लगता है। हमारा समाज-जीवन और राष्ट्र-जीवन असंतुलित हो गया है, जिसमें धर्म, कला, साहित्य, सत्य, सौन्दर्य आदि सांस्कृतिक मूल्यों के लिए अत्यन्त गौण स्थान दिया गया है। जब तक हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं होता हमारे मूल्य नहीं बदलते तब तक सत्तात्मक राजनीति की धींगा-धींगी ही चलती रहेगी पर यह धींगा-धींगी विदेशों की आयात है, भारतीय जन-जीवन का यह स्वभाव या गुण-धर्म नहीं है...'

धनंजय बोलता जा रहा था। ऐसा लगता था जैसे इतने दिनों से विचारों का जो समुद्र-मंथन भीतर ही भीतर चल रहा था—आज वह बाहर सतह पर फूट पड़ने को उद्यत है। भोलानाथ ने उसे रोका नहीं। धनंजय बोलता गया :

'इस पश्चिमी जीवन-दृष्टि का असर यह हुआ कि बस, प्रत्येक आदमी निन्यानवे के फेर में पड़ गया। अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, अच्छा मकान, रेडियो, फर्नीचर सब कुछ अच्छा चाहिए। वह यदि हमारी तनख्वाह में से पूरा नहीं होता है

तो दूसरे तरीके से पूरा करना चाहिए। फिर वह गैरकानूनी तरीका ही क्यों न हो। अधिकारों पर हरेक ज़ोर देता है कि मुझे यह चाहिए, वह चाहिए, पर कर्तव्य की तरफ किसीका ध्यान नहीं है। कम से कम परिश्रम में अधिक से अधिक सुख-भोग मिलना चाहिए इसी ध्येय के पीछे हम पागल हैं। तनख्वाहें बढ़नी चाहिएं, मंहगाई भत्ता बढ़ना चाहिए, वेतन बढ़ने चाहिएं, काम के घण्टे कम होने चाहिएं, सुविधाएं बढ़ना चाहिएं, यही नारे उठते हैं। फिर काम कौन करेगा, देश की संपत्ति कैसे बढ़ेगी, राष्ट्र ऊंचा कैसे उठेगा——इसकी तरफ ध्यान नहीं है। जर्मन और जापान पिछले युद्ध के ज़माने में बमबारी के कारण तहस-नहस हो गए, पर दस बरसों के भीतर वे उठ खड़े हो गए और आज हमें—भारत को—कर्ज़ देने की शक्ति रखते हैं। और हमारा देश, जिसे लड़ाई की आंच तो नहीं लगी, पर जिसने लड़ाई के कारण काफी समृद्धि कमाई, वह सब न जाने कहां काफूर हो गई और हमें निर्लज्जतापूर्वक दूसरे देशों के आगे हाथ पसारने की आवश्यकता पड़ गई है। जो परिश्रम, लगन, देशनिष्ठा जर्मनी और जापान के लोग दिखा सकते हैं वह हम क्यों नहीं दिखा सकते? हमारे आचार-विचार में इतनी विच्छृंखलता, इतनी तफावत क्यों है? प्रत्येक देश का एक स्वभाव-धर्म होता है, एक प्रकृति होती है, जैसे इंग्लैंड में कूटनीति, अमेरिका में वाणिज्य, फ्रांस में कला, उसी प्रकार भारत की प्रकृति अध्यात्म की है। उसको बिसराकर हम भारतीय स्वतंत्रता का मन्दिर नहीं बना सकते। भारत का नव निर्माण दूसरे देशों की अन्धी नकल करके नहीं कर सकते। वह तो मूल में भारतीयता के पाये पर ही खड़ा हो सकता है। हमारी सारी कला, संस्कृति और सभ्यता विशुद्ध भारतीयता की पुख्ता आधारशिला पर स्थापित करे तभी वह स्थिर और स्थायी होगी। वरना हमारे राष्ट्र की सारी इमारत भीतर से कमज़ोर हो जाएगी, और परिस्थिति के ज़रा-से धक्के से वह खण्डित हो उठेगी।' धनंजय ने कहा।

'तो क्या तुम्हें भविष्य के बारे में चिन्ता है धनंजय? क्या हमारा देश पथ-भ्रष्ट हो गया है?' भोलानाथ ने पूछा।

'नहीं भोलानाथ! मुझे भविष्य के बारे में कोई चिन्ता नहीं है। यह तो काल-पुरुष का खेल है, एक लीला है जो देख रहा है कि देखें तुम कितने पानी में खड़े हो। भारतीय संस्कृति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन और उज्वल है, हिमालय की तरह अडिग और अजेय, गंगा की धारा की तरह निर्मल और चिरन्तन। जाह्नवी

की धारा में अलकनन्दा और मंदाकिनी जैसी न जाने कितनी असंख्य सरिताओं का जल है। उसके तट पर न जाने कितने ऋषि-मुनियों ने तपस्या की है, और ईश्वर से साक्षात्कार होने पर आनन्दाश्रु बहाए हैं—उनका जल भी गंगा की धारा में मिला है। किसानों के परिश्रम से थके हुए शरीरों के स्वेद-बिन्दु भी इसी धारा में सम्मिलित हुए हैं। उन सबसे मिल-जुलकर बनी है यह गंगा की अखण्ड धारा। और उसी तरह है हमारी भारतीय संस्कृति का अखण्ड प्रवाह जिसमें वैदिक ऋषियों का चिन्तन, कवियों के स्वप्न, कर्मयोगियों के परिश्रम तथा समाज-सुधारकों और उद्धारकों की सेवा-भावना, तथा साधु-संतों का भक्ति-भाव मिला-जुला है। यह अखण्ड प्रवाह शताब्दियों से, सहस्राब्दियों से चला आ रहा है, और यह हमारे रक्त के कण-कण में समाया हुआ है। वही हमारे जीवन की स्फूर्ति और प्रेरणा है, वही हमारे आदर्शों और स्वप्नों का अधिष्ठान है। और उसीके आधार पर भारतीय स्वतंत्रता का स्वर्ण मन्दिर भी खड़ा होगा। उसे अज्ञान से, अनुभव से कोई खण्डित करने का प्रयत्न करेगा तो क्षण भर के लिए वह भग्न मन्दिर भले ही दिखाई दे, पर यह सिर्फ क्षण भर के लिए ही होगा। उसको खण्डित करने वाले लोग यथासमय महाकाल के विराट वक्त्र में विलीन हो जाएंगे पर वह स्वर्णमन्दिर फिर उठ खड़ा होगा, अपनी समस्त प्रभा, और वैभव और गौरव के साथ, और उसका प्रकाश दिग-दिगन्त में फैलेगा, उसकी आरती का घण्टानाद समस्त आसमंत में गूंज उठेगा।'

उसी समय भोलानाथ और धनंजय ने देखा कि दूर बाबाजी के कृष्ण मन्दिर में भी आरती चल रही है, और शंख और घण्टा की ध्वनि दशदिशाओं में फैल रही है। भोलानाथ ने उठते हुए कहा, 'चलो धनंजय, हम लोग भी मन्दिर चलें, आरती हो रही है।'

४७

नये आम चुनावों की तैयारियां जोर-शोर से हो रही थीं। पांच साल में एक बार यह मौसम आता है। सारे देश में बड़ी चहल-पहल रहती है। प्रजातन्त्र की यही विशेषता है कि हर पांच साल में शासकीय दल को जनता के सामने

अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए जाना पड़ता है। उसीमें उसकी रीति-नीति का लेखा-जोखा होता है, चर्चाएं होती हैं, यह काम अच्छा हुआ, यह काम गलत हुआ। अपने कार्यकाल के अन्तिम वर्ष में शासन बड़ा चुस्त, जिम्मेदार और जनताभिमुख हो जाता है। अच्छे-अच्छे काम करता है, लोगों का अधिक ख्याल रखता है ताकि इसकी मिठास में लोग पुरानी बातें भूल जाएं और उन्हें फिर से निर्वाचित कर दें। प्रजातन्त्र में जनता के हाथ में ही सर्वोपरि सार्वभौम सत्ता रहती है। नागरिक ही सबसे बड़ी इकाई है। जो दल बहुमत प्राप्त करता है वह उसीके नाम की दुहाई देकर शासन चलाता है। विश्व के समाजशास्त्रियों ने तथा राज्यशास्त्रविदों ने सोच-विचार कर यही निर्णय व्यक्त किया है कि प्रजातन्त्र ही मानव-समाज के नियन्त्रण और कार्य-संचालन का सबसे श्रेष्ठ और सबसे सभ्य तरीका है। फ्रांस में स्वातन्त्र्य-समता और बन्धुत्व की भावना को लेकर राज्यक्रान्ति हुई। इंग्लेंड में भी राजाओं के सिर काटकर तथा उन्हें गद्दी से उतारकर प्रजा की प्रभुसत्ता का प्रादुर्भाव हुआ। स्वातन्त्र्य और समता के सिद्धान्तों पर अमेरिका ने तो पहले ही इंग्लेंड के उपनिवेशवाद से मुक्ति पा ली थी। वहां तो राजाओं की परम्परा ही नहीं थी इसलिए जनता की सार्वभौम सत्ता के आधार पर ही शासन का निर्माण हुआ। धीरे-धीरे इन विचारों का यूरोप में तथा अन्य देशों में व्यापक प्रचार हुआ और प्रजातन्त्र की नींव दृढ़ होती गई।

लेकिन इंग्लैण्ड और फ्रांस में ही, जो इन प्रगतिशील विचारों के प्रणेता माने जाते थे, दिया तले अंधेरा था और उन्हींकी नाक के नीचे बड़े-बड़े साम्राज्य और उपनिवेश कायम हुए। घर में प्रजातन्त्र था, इन उपनिवेशों में गुलामी थी। घर में गोरे लोग रहते थे, उपनिवेशों में काले लोग रहते थे। एक के लिए एक न्याय था, दूसरे के लिए दूसरा। इन परस्पर विरोधी चित्रों के कारण प्रजातन्त्र का नैतिक अधिष्ठान कमज़ोर हो गया, और उसका वर्णन 'मुख में राम और बगल में छुरी' की तरह होने लगा। यानी ऊपर से प्रजातन्त्र परन्तु भीतर घोर एवं क्रूर साम्राज्यशाही। इस स्वार्थी पाखण्ड के विरोध में एक दूसरी विचारधारा आगे बढ़ी जो सशस्त्र क्रान्ति के बल पर जनता का राज्य कायम करने लगी। रूस इसका अग्रणी था। इसमें विश्व के समस्त श्रमिक-जन एक हैं, और शासन-सूत्र उनके ही हाथ में रहने चाहिएं यह विचार निकला। इन सूत्रों को प्राप्त करने का सर्वमान्य तरीका था सशस्त्र क्रान्ति। रूस की राज्यक्रान्ति की सफलता के कारण यह विचार ताकत

पा गया। सर्वसाधारण जन की समता पर यह आधारित था इसलिए इसका नाम साम्यवाद हो गया।

इन सब विचारधाराओं का पिष्टपेषण ग्रीस के तत्ववेत्ताओं ने किसी न किसी रूप से किया था, पर औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि पर इन विचारों ने नये रूप-रंग धारण किए और भिन्न-भिन्न देशों की प्रकृति के अनुसार नई-नई मान्यताएं और नये-नये आकार प्राप्त किए। पर औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही पूंजीपतियों और श्रमिकों के वर्ग पैदा हुए, और उसीके कारण ही साम्राज्यवाद और साम्य-वाद का जन्म हुआ। एक ने प्रजा के नाम पर सत्ता हथियाने की कोशिश की तो दूसरे ने श्रमिकों और मज़दूरों के नाम पर। हिंसा का आश्रय दोनों ने लिया, क्योंकि इसके सिवा वे दूसरा शस्त्र या साधन जानते ही नहीं थे, और उन दोनों को बांधने वाली एक कड़ी थी—अर्थनीति। इस अर्थनीति के पालन में वे एकदम परस्पर विरोधी थे, पूरब-पच्छिम थे, पर उनको जोड़ने वाली शृंखला अर्थनीति की ही थी। यानी एक ही शृंखला के वे दो सिरे थे,एक दूसरे के बिना उनका अस्तित्व ही नहीं था।

इतने में जर्मनी और इटली जैसे देशों को अनुभव हुआ कि प्रजातन्त्र की या राजाशाही की व्यवस्था बहुत ही धीमी, उलझी हुई और भ्रष्टाचार से ओत-प्रोत है तो उन्होंने व्यक्तियों को पैदा किया जिन्होंने सेना के बल पर प्रखर राष्ट्रीयता के नाम पर पराजय के अपमान और कलंक को धो निकालने का आश्वासन देकर अधिनायकवाद (डिक्टेटरशिप) का निर्माण किया, जहां हिटलर और मुसोलिनी जैसे तानाशाह पैदा हुए। इस तानाशाही के माध्यम से दस साल के भीतर ही जर्मनी ने जो अद्भुत फौजी सत्ता और ताकत निर्माण की उसने सारी दुनिया को हैरत में डाल दिया। और वही विश्व-विजय न कर बैठे और हम लोग कहीं के न रहें इसी डर में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया जिसमें मतलब की दोस्ती में परस्पर विरोधी लोग भी एक ही खेमें में जाकर बैठ गए—इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस और रूस एक तरफ तो जर्मनी, इटली और जापान दूसरी तरफ। प्रजातन्त्र, साम्राज्य-वाद और साम्यवाद एक ही मंच पर आ डटे और जब तक एक दुश्मन सामने था, अपनी-अपनी दुश्मनी को पिए रहे। पर वह दुश्मन जब खत्म हुआ तब वे भी अपने असली रंगों में सामने आ गए।

पर इस लड़ाई ने एक फायदा किया—साम्राज्यवाद के बन्धनों को ढीला कर दिया। अमेरिका ने फिलिपीन्स को पहले स्वतन्त्रता दी, अंग्रेजों ने पहले लड़-

झगड़कर और बाद में स्वेच्छा से भारत को मुक्त कर दिया, बर्मा, सीलोन स्वतन्त्र हुए और अन्य उपनिवेशों में भी स्वतन्त्रता के आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा।

भारत में नई स्फूर्ति, नई लहर फैल गई। उसने प्रजातन्त्र को स्वीकार किया। अपना संविधान बनाया, पर उसपर इंग्लैण्ड, अमेरिका और फ्रांस के संविधानों का जबर्दस्त प्रभाव था—फ्रांस का कम इंग्लैण्ड-अमेरिका का ज़्यादा। दृष्टि यही थी कि ये देश प्रगतिशील हैं, आधुनिक सभ्यता और विचारों के अगुआ हैं, हम इनकी नकल न करें तो प्रगतिशील, आधुनिक और सभ्य कैसे कहलाए जाएंगे? इसका कारण यही था कि हमारे नेताओं पर पश्चिमी विचारों की इतनी गहरी छाप पड़ी थी कि वे मन से तो भारतीयत्व की भावना रखने की कोशिश करते थे, पर दिमाग पर सारे यूरोपियन चिन्तकों के विचार हावी हुए बैठे थे। उनकी राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य-भावना में कुछ रोमांस का रंग मिला हुआ था जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर अत्यधिक जोर देने के कारण आया था। उनकी प्रजातन्त्र की तस्वीर इसी विचारधारा पर आधारित थी। प्रजातन्त्र में नागरिक के हाथ में ही सार्वभौम सत्ता रहती है। एक हद तक यह ठीक है, पर नागरिक ही यदि चरित्र-हीन और निर्बुद्धि रहा तो इस प्रजातन्त्र का क्या होगा? इसका जवाब प्रजातन्त्र के हिमायतियों के पास नहीं था।

भारतीय चिन्तन की यह दृष्टि थी कि नागरिक यदि यह समझ ले कि वह विश्वव्याप्त चैतन्य तत्व का ही एक अंग है, स्वयं ईश्वर का ही प्रतीक है, उसीकी प्रतिमूर्ति है, तो अनायास ही नीति और सदाचार की ओर उसकी प्रेरणा होने लगती है, धर्मपथ का अनुसरण करने के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण होने लगता है। अर्थात्, पश्चिमी भौतिकवाद के अर्थतत्व से प्रजातन्त्र की मुक्ति करके उसमें अध्यात्मतत्व भरने की आवश्यकता है। उससे केवल एक देश के ही नहीं, समस्त विश्व के नागरिक, केवल बन्धु ही नहीं हैं, एकात्मजीव हैं, यह भावना दृढ़ होगी, और यह विश्वात्मकता ही विश्व में शान्ति का राज्य, धर्म का राज्य या रामराज्य की स्थापना करने में सफल होगी। भारत का यही मौलिक विचार विश्व के चिन्तन के लिए एक नम्र देन है।

पर भारत ने प्रजातन्त्र का बाह्य स्वरूप तो स्वीकार कर लिया, परन्तु उसकी आत्मा में कौन-से रंग भरने चाहिएं इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस स्वरूप की कल्पना जहाज़ पर चढ़कर विदेशों से आई थी पर उसमें भारतीयता के लिए

वहुत कम जगह थी। विशुद्ध भारतीयता की पृष्ठभूमि पर हम उस कल्पना का समन्वय नहीं कर सके।

समन्वय का यह विचार साम्यवाद से तो वहुत ग्रागे है ही, जहां हिंसा पर ग्राधारित राज्यसत्ता ही सर्वोपरि है, ग्रौर व्यक्ति गौण है, न्यून है, शासनतंत्र की विशाल मशीन का एक पुर्जा है, पर यह विचार पश्चिमी प्रजातन्त्र से भी ग्रागे है, जो केवल भौतिकवाद पर ग्राधारित है ग्रौर जिसमें ग्रादमी के खाने-कपड़े पर जीवन-स्तर वढ़ाने पर ही विशेष जोर दिया जाता है।

भारतीय विचार-व्यवस्था में मानव की प्रतिष्ठा ही सर्वोपरि है जो उसके ग्रात्मतत्व पर निर्भर है। उसे प्रजातंत्र का ग्रध्यात्मीकरण कहें या ग्राध्यात्मिक प्रजातन्त्र (स्पिरिच्यूएल डेमॉक्रेसी) कहें। इसमें धीरे-धीरे संख्या गौण हो जाती है, गुण ही महत्व पाने लगते हैं। इसी दृष्टि से गांधीजी ने एक वार दावा किया था कि यदि मैं भारत की कोटि-कोटि जनता के सुख-दुःखों का, सांसों ग्रौर उसांसों का स्वप्न ग्रौर ग्राकांक्षाग्रों का स्पन्दन ग्रपने हृदय में ग्रनुभव करता हूं तो उनके प्रतिनिधित्व के लिए मैं ग्रकेला ही काफी हूं। जन-जीवन के कल्याण ग्रौर मांगल्य की सतत साधना ग्रौर चिंतना से ही यह एकात्मकता ग्राती है। सन्तों, कवियों ग्रौर कलाकारों के सामर्थ्य की भी यही कुंजी है। जव कोई भी साहित्यकार या कलाकार जन-जीवन या राष्ट्र-जीवन से सम्पूर्ण तादात्म्य पाकर, समाधिस्थ हो, ग्रपने ग्रन्तर्देवता की वाणी कहता है तो उसमें कोटि-कोटि मुखों की वाणी प्रतिध्वनित हो उठती है, सजीव वन जाती है। यही उसकी सामर्थ्य है ग्रौर इसका प्रजातन्त्र के ग्रांकड़ों या वोटों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसी विचारधारा पर ग्राधारित गांधी ने हमें विशुद्ध भारतीयता की ग्रद्भुत दृष्टि दी जो सर्वथा मौलिक ग्रौर क्रान्तिकारी थी। उसपर चलने का जो साहस गांधी में था वह उसके शिष्यों में नहीं रहा, ग्रौर उनके हाथ-पांव ढीले पड़ गए।

गांधी ने जल्दी ही ग्रपनी ग्रांखें मूद लीं। वह सन्त था, क्रांतदर्शी था, इसलिए शायद जानता था कि ग्रागे क्या होने वाला है। इसलिए ज़िन्दा रहकर ग्रपनी ही ग्रांखों ग्रपना मरण देखने की वजाय ग्रपनी इज्ज़त हाथ में रखकर पहले ही क्यों न ग्रांखें वन्द कर ली जाएं? इसलिए वह तो यह कहकर चल पड़ा कि लो भैया, मैं तो ग्रपना कारज करके चला, तुम यह गठरी सम्हालो।

उसकी विरासत के रूप में यह गठरी हमारे हाथ ग्राई--सोने की गठरी थी

वह। उसमें स्वतन्त्रता थी, सत्ता थी, जादू की लकड़ी थी, अलाउद्दीन का लैम्प था—कि जिसके बल पर हम जो बनाना चाहते, वह बना सकते थे; महल चाहें तो महल, उद्यान चाहें तो उद्यान, स्वर्ग चाहें तो स्वर्ग !

और वह गठरी देकर चला गया तो हमने सिर धुन-धुनकर रोना-पीटना शुरू किया, हाय-तोबा मचाई, विलाप और व्यथा के आंसुओं के पनारे बहाए !

उस समय उस विलाप और क्रन्दन को देखकर तो यही लगता था कि नहीं, गांधी मरा नहीं है, अमर है, और आज यदि वह हमारे अश्रुओं में साकार हो उठा है तो कल वह हमारे कृतित्व में ज़रूर उतरेगा।

पर आज लगता है, उन अश्रुओं में कहीं कुछ नक्राश्रु तो नहीं मिले थे जो आज बड़ी भारी जायदाद छोड़ जाने वाले पिता के लिए दत्तक पुत्र की आंखों में उमड़ पड़ते हैं? जो रक्त का पुत्र होता है वह बेचारा अपने आंसू चुपचाप पी जाता है, पर दत्तक पुत्र को तो अपना प्रेम जताने के लिए छाती पीट-पीटकर मुहल्ले को जगाना पड़ता है।

हमारी आंखों में आंसू तो थे पर उनके परदों के भीतर से हमारी नज़र बराबर उस गठरी पर ठहरी हुई थी—

वही सोने की गठरी, सत्ता की गठरी, रम्यनगरी का निर्माण करनेवाली जादू की गठरी।

उस गठरी में और क्या था? उसमें था स्वातंत्र्य-समर में अपनी आहुति देने वाले शहीदों का रक्त—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का, भगतसिंह और बिस्मिल का, सुभाषचन्द्र बोस का, उन सब असंख्य ज्ञात एवं अज्ञात शहीदों का रक्त, जिन्होंने देश-स्वातंत्र्य को यज्ञ माना और अपने आपको आहुति !

उसमें थे स्वातन्त्र्य के लिए अपने जीवन का होम करने वाले हुतात्माओं की विधवाओं के आंसू, माता और बहनों के उष्ण निःश्वास, अन्दमान तथा ब्रिटिश जेलों में सड़ने वाले लाखों राजबन्दियों की आहें और कराहें।

उसमें थे वैदिक ऋषियों के मंत्र, धर्म-सत्ता के संस्थापकों के परिश्रम, भारतीय सन्तों की वार्ना, भारतीय तत्ववेत्ताओं के जीवन-दर्शन, भारतीय कर्मयोगियों के स्वेद बिन्दु, भारतीय कवियों के स्वप्न !

और उसमें थी, इन सब सहस्त्राब्दियों के प्रवाहों के संगम और संचय से निर्मित भारत की वह देदीप्यमान और अजस्र आत्मा, जिसका प्रतीक था, गांधी !

और उसमें था उस भव्य, विशाल और जाज्वल्यमान स्वर्णमन्दिर का मान-चित्र, जिसकी प्रभा दीप्तिमंत है, और जिसका दर्शन भारत की अजर, अमर आत्मा ने इस रूप में किया था :

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यम्
अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।

एक ऐसे राष्ट्र-पुरुष के रूप में, जिसका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, जो अनन्त सामर्थ्य से युक्त हैं, अनन्त हाथों वाला है, चन्द्र और सूर्य जिसके नेत्र हैं, जिसका मुख अग्नि की तरह प्रज्वलित है, और जो अपने अलौकिक तेज से समस्त विश्व को आलोकित करता है ।

इस गठरी का हमने स्वर्ण देखा, और उसका उपयोग करने की सत्ता देखी--

पर उससे किस प्रकार का मन्दिर निर्माण करना है यह हमारी आंखों में अस्पष्ट हो गया, हमारी आंखों से ओझल हो गया ।

और वह बूढ़ा तो हमारे हाथ में गठरी थमाकर चलता बना, मानो यह कहकर गया कि भई, मैंने अपना काम तो कर दिया, अब तुम्हारा तुम जानो । मेरा भाग्य मेरे साथ, और तुम्हारा भाग्य तुम्हारे साथ ।

४८

युगान्तर-केस के एक मुकदमे की सुनवाई, जिसमें धनंजय और उसके साथियों पर दफा ४२० का मामला चलाया गया था, खतम होने पर आई । उसका सम्बन्ध सरकारी प्रेस के किसी बिल से था, जिसका काम युगान्तर प्रेस में उन दिनों हुआ था जब उसके और शासन के सम्बन्ध मैत्री के थे। सरकारी गवाहों ने तथा पुलिस के लोगों ने मुकदमे को काला करने में कोई कसर नहीं की । लेकिन जो न्यायाधीश थे उनकी नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार हाईकोर्ट ने की थी । यह नियुक्ति धनंजय की एक दरख्वास्त के फलस्वरूप

हुई थी जिसमें उसने कहा था कि चूंकि मुख्य मंत्री स्वयं इन मुकदमों में दिलचस्पी रखते हैं, उसे उनके प्रदेश में न्याय मिलने की संभावना नहीं है। इन न्यायाधीश महोदय की न्यायप्रियता की अच्छी ख्याति थी और वे किसीके प्रभाव में भी नहीं आ सकते थे ऐसा आम तौर पर ख्याल था। मुकदमा दो साल तक चला और अन्त में फैसले की तारीख आ गई। बचाव बहुत अच्छा था और नित्य की तरह धनंजय ने सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ही ले ली थी। उसकी इच्छा थी कि उसके मातहत सब कर्मचारी छूट जाएं, उनकी परेशानी दूर हो—फिर वह अकेला खुल-कर लड़ेगा। फैसले के लिए यह मुद्दा था कि अदालत के सामने जो सबूत आए थे उनके आधार पर धनंजय तथा उसके सहयोगियों पर अभियोग रखा जा सकेगा या नहीं।

धनंजय के आनन्द और आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब न्यायाधीश महोदय ने सभी अभियुक्तों को पूर्णतः बरी कर दिया, और यह फैसला दिया कि उनपर आरोप तक लगाने की गुंजाइश नही है। जोशी जी के मुख्य मंत्री रहते हुए उनकी आंखों के सामने ही यह फैसला हुआ। उनकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। धनंजय ने न्यायाधीश महोदय को हृदयपूर्वक धन्यवाद देते हुए कहा, 'मैं आपको धन्यवाद केवल इसलिए नहीं देता हूं कि मैं आज बरी कर दिया गया। यह व्यक्ति-गत सुख-दुख की उतनी बात नहीं है जितनी सार्वजनिक कल्याण की है। प्रजातन्त्र में सत्ताधारी लोग ज़ुल्म और ज्यादती करें या सत्ता का दुरुपयोग करें तो एक सर्व-साधारण नागरिक का धनी-धोरी न्यायालय को छोड़कर और कोई नहीं है। प्रजातन्त्र का शासन सत्य और न्याय पर आधारित रहे, नीति और कानून के मुताबिक चले, किसीका द्वेष न करे या बदला लेने की वृत्ति न रखे—यह न्यायालयों की जाग-रूक दृष्टि के कारण ही हो सकता है। संविधान ने नागरिकों को जो अधिकार दिए हैं उनकी सुरक्षा न्यायालयों की कर्तव्य-बुद्धि के कारण ही हो सकती है। मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं क्योंकि मेरा विश्वास है कि आप जैसे न्यायनिष्ठ न्यायाधीश ही भारतीय प्रजातन्त्र के प्रहरी हैं, कानून और व्यवस्था के संरक्षक हैं। प्रजातन्त्र की प्रारंभिक अवस्था में जब हमारा अनुभव अल्प है, और हमारी मान्य-ताएं स्थिर और दृढ़ नहीं हो पाई हैं तब न्याय-मन्दिर ही नागरिक का तथा प्रजा-तान्त्रिक जीवन-प्रणाली का एकमात्र सहारा है। ईश्वर आपका कल्याण करे।'

४९

दूसरे दिन युगान्तर में धनंजय और उसके साथियों की रिहाई का समाचार बड़े-बड़े हेडिंगों के साथ प्रथम पृष्ठ पर ही प्रकाशित हुआ। सारे प्रदेश में सनसनी मच गई। धनंजय के खिलाफ चलाए गए कतिपय मुकदमों में यह पहला ही मुकदमा था जिसका फैसला सुनाया गया था। यह फौजदारी का मामला था और धोखेज़नी का गंभीर इलज़ाम उसपर लगाया गया था। इसी इलज़ाम के कारण ही तो युगान्तर के विज्ञापन बन्द कर दिए गए थे। पुलिस ने इस मुकदमे को खड़ा करने में तथा सफल बनाने में जी-तोड़ मेहनत की थी, ज़मीन-आसमान के कुलावे मिलाए थे। पर उनकी एक न चली, और न्याय और सत्य की विजय हुई। जो निर्दोष था वह निर्दोष ही करार दिया गया। मुख्य मंत्री के क्षेत्रों में घोर मायूसी छा गई। पुलिस का तो जैसे मुंह ही उतर गया। बात सिर्फ धनंजय के निर्दोष छूटने की नहीं थी, बल्कि अब पूरी बाज़ी उलटने की थी। धनंजय तो दिन-दहाड़े चिल्लाया करता था कि ये सारे मुकदमे झूठे हैं, बनावटी हैं, व्यक्तिगत बदला लेने के लिए गढ़े गए हैं, और आज न्यायालय के निर्णय ने उसके कथन पर पुष्टि की मुहर लगा दी। जोशी जी ने दिल्ली में दमपट्टी दे रखी थी कि मुकदमे सच हैं उसमें फंसने के कारण ही धनंजय ने प्रत्यारोप किए हैं, कानून अपना काम कर रहा है, और चूंकि मामले विचाराधीन हैं वे अपनी सफाई इसलिए नहीं दे सकते कि अदालत की मानहानि की संभावना है। फैसला होते ही दूध और पानी अलग दिख जाएगा।

दूध और पानी अलग तो दिखा, पर उस तरह नहीं जैसी कि जोशी जी को अपेक्षा थी। दिल्ली वाले अब चुप नहीं बैठेंगे। उनके राजनीतिक विरोधी भी चैन से नहीं बैठेंगे। उसी दिन दिल्ली तार पर तार गए कि देखिए, जुल्म का सबूत सामने आ गया न ? अन्याय पर आखिर कब तक परदा डाला जा सकता है ?

इस फैसले की अधिकृत नकल दिल्ली गई और वहां गहरी छान-बीन हुई। राष्ट्रीय नेताओं की धारणा पक्की हो गई कि जोशी जी के खिलाफ जो वातावरण बन गया है वह उनकी तथा उनके दल की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। उससे तो एक समूचे सूबे का वातावरण दूषित हो जाता है और उसकी प्रतिक्रिया अन्य सूबों पर भी पड़ती है। इन लंगड़ी भैंसों को लेकर चुनाव की मंज़िल पार नहीं की जा सकती।

राष्ट्रीय दल के श्रेष्ठिवर्ग ने निश्चय कर लिया कि अभी तुरन्त कदम उठाना तो उचित नहीं है, पर इस चुनाव में श्री पूरणचन्द्र जी जोशी को पार्टी का टिकट नहीं दिया जाएगा, और उन्हें अब राजसंन्यास लेने की सलाह दी जाएगी।

धनंजय को उन बातों में दिलचस्पी नहीं थी। पर इन अफवाहों और घटनाओं के कारण जो लोग दिल्ली से लौटते थे वे तो सट्टा लगाने लगे कि जोशी जी का यह अन्तिम कार्यकाल है, चुनाव के बाद वे मुख्य मन्त्री तो क्या, धारा सभा के सदस्य भी नहीं रहेंगे। इस वातावरण में पुलिस की नाड़ी ठंडी पड़ गई, पब्लिक प्रॉसिक्यूटर का उत्साह भी सर्द हो गया। वह अब धनंजय से ज़रा मुसकराकर, और ज़रा खुशामद करके बोलता था। उसकी नज़र तो हाई कोर्ट की जजी की तरफ लगी हुई थी। वह कोई जोशी जी का गुलाम थोड़े ही था, अपने मतलब का गुलाम था। उसका हाल उसी दरबारी दीवान की तरह था जो बादशाह की मर्ज़ी के मुताबिक बैंगन का रंग भी बदल-बदलकर बताया करता। बादशाह ने एक बैंगन हाथ में पकड़कर दीवान साहब से कहा, 'दीवान साहब, यह बैंगन तो काला मालूम पड़ता है।'

'जी हां, गरीब परवर, यह एकदम काला है, जैसे अमावस की रात।'

'लेकिन दीवान साहब, अब मेरा यह ख्याल हो रहा है कि यह लाल रंग का मालूम पड़ता है।' बादशाह ने कहा।

'आपने सही फरमाया हुज़ूरे आलम! यह एकदम भड़कीला लाल है, तोते की चोंच की तरह।'

'लेकिन अब मैं इसे और भी गौर से देखता हूं तो लगता है कि यह एकदम सफेद है।'

'वल्लाह, आपने भी क्या बात कही है जहांपनाह। यह तो काज़ी जी की दाढ़ी की तरह एकदम सफेद है।'

जहांपनाह मुस्कराए। बोले, 'दीवान साहब, आप भी अजीब आदमी हैं। काले, लाल और सफेद रंग में कोई फर्क ही नहीं करते। घड़ी-घड़ी में रंग बदलते हैं।'

'आपने बहुत दुरुस्त फरमाया मेरे अन्नदाता। मैं तो हुज़ूर का गुलाम हूं, बैंगन का गुलाम थोड़े ही हूं?'

पब्लिक प्रॉसिक्यूटर समरेन्द्र गुप्ता का वही हाल था। उसीका क्या, जोशी जी

के ग्रासपास जो खुशामदी ग्रौर खुदगर्ज लोग इकट्ठा हुए थे उनका बिलकुल यही हाल था। उन्होंने यदि जोशी जी को खुश करने के लिए गलीज़ से गलीज काम किए तो इसी उम्मीद से कि जोशी जी का मुख्य मंत्रित्व ग्रटल है, उनका संरक्षण हमें सब समय मिलता रहेगा।

पर ग्रब तो जो बातें बाज़ार में ग्रौर राजनीतिक हलकों में सुनी जा रही हैं वे विचित्र हैं। यदि स्वयं मुख्य मंत्री जी को ही दिल्ली के हुक्म से ग्रवकाश ग्रहण करना पड़ा तो फिर हमारा क्या होगा ?

युगान्तर के पाठकों को तथा ग्राम जनता को विश्वास होने लगा कि समय ने पलटा खाया है, धनंजय के जीवन पर मंडराने वाले काले बादल छंट रहे हैं। भोलानाथ ने कहा कि यह बाबाजी की कृपा है—तुम देखो तो सही धनंजय ! बाकी झंझटें भी किस ग्रासानी से दूर हो जाती हैं। देवाजी महाराज की कृपा बड़े विचित्र ढंग से फलती है।

गीता ने ग्रर्चना से कहा, 'मैंने कहा था न बिटिया, कि बाबूजी इस मामले में भी जीतेंगे ?'

ग्रर्चना धनंजय के गले से जा लगी। उसकी खुशी का पारावार नहीं। उसने कहा, 'मुझसे तो भगवान ने उसी दिन कह दिया था ग्रम्मा, कि ऐसा ही होगा। भगवान कभी गलत नहीं कहते।'

गीता ने ग्रर्चना को पास खींचते हुए कहा, 'हां बेटी, तेरे भगवान की ऐसी ही कृपा बनी रहे तो तेरे बाबूजी देखते-देखते बहुत बड़े ग्रादमी बन जाएंगे।'

ग्रर्चना भी बड़े बाप की बेटी की शान में जरा ग्रकड़कर खड़ी हो गई।

'नहीं बेटी, हमें बड़प्पन-बड़प्पन से क्या करना है ? ग्रपनी स्कूल की किताब का वह सबक तुम भूल गई ?

'लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी लै शक्कर चली, हाथी के सिर धूरि॥'

'हां बाबूजी। हमारी मास्टरनी बाई ने हमें यह सबक पढ़ाया था। मैं इसका ग्रर्थ बता सकती हूं···'

इसी तरह उस छोटे-से परिवार में प्रेम ग्रौर ग्रानन्द का सागर लहरा उठा। धनंजय का हृदय कृतज्ञता से भर गया।

५०

बात वही हुई जिसका कि लोगों को अंदेशा था। जब अगले चुनाव के टिकट बंटने का वक्त आया तो राष्ट्रीय दल के अध्यक्ष ने जोशी जी को दिल्ली बुलाकर कहा, 'अब आप काफी वृद्ध हो गए हैं; अवकाश ग्रहण कर लीजिए।'

'मेरा स्वास्थ्य तो अच्छा है। मैं अभी पांच साल और काम कर सकता हूं।'

'नहीं, अब काफी हो चुका। आप छुट्टी ले लीजिए।'

जोशी जी को एक गहरा धक्का लगा। आज तक वे कई बार उनके खिलाफ की गई शिकायतों को पी गए थे। इस बार भी पी जाएंगे ऐसा भरोसा था। उन्होंने पूछा, 'आखिर इसकी वजह ?'

'आपके खिलाफ तो शिकायतों के गट्ठे पड़े हैं। आपके निकटवर्ती सहयोगी ही आपसे आजिज़ आ गए हैं। हम आपसे कहना तो नहीं चाहते थे, पर आपने पूछा, इसलिए हमें बतलाना पड़ा। हम नहीं चाहते कि कोई कन्ट्रोवर्सी (विवाद) हो और आपको तकलीफ हो। जो काम करना है उसे ग्रेस (सद्भावना) के साथ करना चाहिए।'

फिर भी जोशी जी ने हिम्मत नहीं हारी। प्रधान मंत्री के पास गए। उनके हाथ में अमर्यादित सत्ता थी। वे चाहे जिसको गवर्नर बना दें, मुख्य मन्त्री बना दें, राजदूत बना दें, मिट्टी का सोना कर दें। वे खुश हो जाएं तो अब भी बात सम्हल सकती है।'

पर प्रधान मंत्री तो पहले से ही भन्नाए बैठे थे। बोले, 'कहिए, क्या फैसला किया ?'

'एक मौका और मिल जाता तो सूबे में राष्ट्रीय दल का संगठन इस्पात की तरह मज़बूत कर देता।'

'क्यों ?'

'मेरे साथ पूरी पार्टी खड़ी है। मैं न रहूंगा तो सूबा तितर-बितर हो जाएगा।'

प्रधान मंत्री भड़क उठे। बोले, 'आप समझते हैं सूबा आप चला रहे हैं ? वह तो राष्ट्रीय पार्टी की इज़्ज़त है और जनता का प्रेम है, जो सूबा चल रहा है। क्या इस मुल्क को मैं या आप चला रहे हैं ? यह तो अपनी ताकत से चलता है—किसी एक आदमी की ताकत से नहीं। लाइए, आप अपनी जगह अभी खाली कर

दीजिए, अपना इस्तीफा फौरन दे दीजिए, और देखिए सूवा चलता है कि नहीं।'

जोशी जी ने समझ लिया कि दांव पूरा उलट चुका है। अब कहीं कोई सहारा नहीं है। वे हताश हो गए। मोटर में धम्म से जा बैठे तो उन्हें गश आ गया। किसी तरह लड़खड़ाते अपने डेरे पर पहुंचे और विस्तर पर धड़ाम से गिर पड़े। वे जिनके यहां ठहरे थे वे उनकी हालत देखकर घबड़ा गए। सिर पर हाथ रखा तो वह तवे जैसा गरम लगा।

डॉक्टर आए, एक नहीं अनेक। दौड़-धूप शुरू हुई, टेलीफोन पर टेलीफोन लगे। डॉक्टरों ने कहा कि कोई ज़बर्दस्त 'मेन्टल शॉक' लगा है जिसे वे नहीं सम्हाल सके: वृद्धावस्था तो खैर थी ही।'

सारी रात बड़ी विकलता में बीती। बड़ा क्लेश हुआ। पर तबियत की हालत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। और वह क्रमशः बिगड़ती ही गई।

और चौवीस घण्टों के भीतर ही सारे देश ने अत्यन्त शोक और आश्चर्य के साथ सुना कि एक विशाल प्रदेश के मुख्य मन्त्री पूरणचन्द्र जी जोशी का अकस्मात स्वर्गवास हो गया।

५१

धनंजय को जब उसके सहायक सम्पादक ने टेलीफोन पर यह समाचार बताया तो वह विश्वास नहीं कर सका। बोला, 'ऐसा कैसे होगा?'

'जी हां, खबर सच है। अभी टेलीप्रिंटर पर आई है।' उसने कहा।

अब तो अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। घण्टे भर के भीतर शोक-संदेशों की झड़ी लग गई।

धनंजय सुन्न रह गया। यह समाचार बिलकुल अनपेक्षित था। जोशी जी अभी-अभी परसों तक हट्टे-कट्टे थे, सूबे की राजनीतिक गतिविधियों पर उनकी नज़र थी, अगले चुनाव की तैयारियों में मुस्तैदी के साथ जुट पड़े थे। और एकाएक यह क्या हो गया?

उसे लगा कि उसके निकट का एक घनिष्ठ सम्बन्धी चला गया, उसके हृदय

पर गहरा ग्राघात लगा।

जोशी जी ग्रौर उसके सम्बन्ध ग्रत्यन्त निकट के थे—ग्रौर जब वे ग्रत्यन्त मधुर थे तब तो उनकी मिठास की कल्पना करना भी कठिन है। उनका हृदय बड़ा विशाल था, उदार था, स्नेह से ग्रोतप्रोत था। एक ज़माना ऐसा था कि उन दोनों के व्यवहार पिता-पुत्र की तरह थे। जोशी जी वयोवृद्ध थे ग्रौर उसने ग्रपनी सारी श्रद्धा ग्रौर ग्रादर उन्हें समर्पित किया था। धनंजय स्वयं बड़ा भावुक भी था। जिसे मानता था उसे पूरे दिल से मानता था। पर जब उसका हृदय-भंग हो जाता तब फिर उस ग्रोर से मुंह फेर लेता तो पीछे मुड़कर एक बार भी नहीं देखता था। उनके साथ सम्बन्ध निभाना ग्रत्यन्त सरल था, ग्रौर ग्रत्यन्त कठिन भी था।

उसे जेल के वे महत्वपूर्ण ग्रविस्मरणीय दिन याद ग्राए, कितने प्यारे थे वे दिन। दोनों एक दूसरे के निकट ग्राए थे। उनकी मैत्री कितनी निस्स्वार्थ थी? उसमें राजनीति का कलुष नहीं था, सत्ता का तामस नहीं था।

यह पारिवारिकता ग्रौर स्नेह-भाव कुछ वर्षों तक टिका। वह इसी प्रकार निष्कलंक टिका रहता तो कितना सुन्दर होता!

राष्ट्रीयता के संग्राम में वे नज़दीक ग्राए थे, कन्धे से कन्धा भिड़ाकर उन्होंने देश के उत्थान के लिए ग्रंग्रेज़ी हुकूमत से लड़ाइयां लड़ी थीं, ग्रांसू बहाए थे, रक्त-दान किया था, दारुण दुःख ग्रौर ग्रभाव भोगा था। उनका स्नेह कष्ट-सहन की ग्रग्नि में तपकर कुन्दन जैसा शुद्ध ग्रौर एकरूप हो गया था।

पर सत्ता-कामिनी के ग्रवतरण के साथ ही उन स्नेह-सम्बन्धों में विकार ग्रा गया। ग्रादर्शों ग्रौर स्वप्नों पर ग्राधारित उस पवित्र एवं निष्कलंक मैत्री में दुनियादारी ग्रौर व्यावसायिकता ग्रा गई। हित-सम्बन्धों में फर्क पड़ गया, सत्ता के मद ने दृष्टि-भेद पैदा कर दिया, उगते हुए सूरज की पूजावृत्ति ने ग्रासपास स्वार्थियों ग्रौर खुशामदियों की ऊंची-ऊंची दीवारें खड़ी कर दीं, 'ग्रहं' की पुष्टि ग्रौर तुष्टि हुई ग्रौर स्नेह की पुरानी दुनिया, ग्रादर्शों ग्रौर स्वप्नों का ग्रन्तर्जगत, निश्छल पारिवारिकता का मधुर विश्व न जाने कहां छिन्न-भिन्न हो गया ग्रौर उसकी मीठी-कड़वी स्मृतिमात्र रह गई।

ग्रौर यह कहानी धनंजय ग्रौर जोशी जी के बीच ही नहीं गुज़री, देश के ज़िले-ज़िले में, सूबे-सूबे में गुज़री। पुराने संग्राम-साथी बिछुड़ गए, सुख-दुख के मधुर सम्बन्ध टूट गए, त्याग ग्रौर व्यथा के दुर्दिनों का विस्मरण हो गया, ग्रौर शासन

की शान-शौकत, सत्ता की चकाचौंध, स्वार्थ-लिप्त व्यक्तियों की झूठी प्रशंसा, ग्रौर व्यक्तिगत सुख ग्रौर ग्राराम की कमज़ोरी ग्रौर भोग-वृत्ति ने बड़े-बड़े वीर योद्धाग्रों का तपोभंग कर दिया, ग्रौर जो कल तक श्रद्धेय ग्रौर पूजनीय थे, वे ग्राज तिरस्कृत एवं निरादृत हो गए।

धनंजय ने सोचा, ग्राज जोशी जी ग्रौर उनकी पीढ़ी यदि ग्रपना विवेक ग्रौर संयम रख पाती, संतुलन नहीं खोती तो क्या यह देश ग्रब तक नन्दनवन नहीं हो जाता ? क्या उसमें स्वर्णयुग का ग्रागमन नहीं होता ? क्या वह सत्ययुग के दरवाज़े नहीं जा पहुंचता ?

पर व्यक्तियों की तरह राष्ट्रों को भी ज़हर का प्याला पीना पड़ता है, ग्रौर शिव की तरह उसे पचाने की क्षमता रखनी होती है। तभी वह ग्रमृतत्व की ग्रोर बढ़ सकता है।

पर ग्राज जोशी जी के ग्रवसान पर उसकी ग्रांखों में ग्रांसू ग्रा गए। स्नेह के सौभाग्य-काल में उसने जो पाया था वह विद्वेष ग्रौर संघर्ष के दुर्दिनों के कारण मिट तो नहीं सकता था। दोनों ज़माने की स्मृतियां ताज़ी थीं, ग्रौर उनमें इतनी विपरीतता थी, इतना विरोध-भाव था, यही दुर्भाग्य का लक्षण था।

पर जिस तरह जोशी जी का ग्रन्त हुग्रा उससे धनंजय को घोर दुख हुग्रा। एक बड़े दबंग उज्वल चरित्र देशभक्त व्यक्ति का ग्रन्त इस प्रकार ग्राक्षेपों ग्रौर लोक-प्रवादों के बीच में हो, शान्ति की बजाय क्लेश में हो, यह बात उसके लिए बड़ी कष्टदायक थी। उनमें कई गुण थे, पर धृतराष्ट्र की तरह परिजनों का मोह वे नहीं टाल सके ग्रौर उनके परिजनों ने ग्रपने क्षणभंगुर स्वार्थ के लिए उनकी निष्कलंक प्रतिष्ठा ग्रौर कीर्ति की बलि चढ़ा दी।

पर यही बात इतिहास में हमेशा से होती चली ग्राई है सो इस काल में होने से कैसे रुकती ?

जोशी जी का इस प्रकार का ग्रन्त होगा इसकी धनंजय ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। उसकी स्वार्थ-सिद्धि के लिए भी इस प्रकार की दुर्घटना का कोई मूल्य नहीं था।

ग्राखिर उसके खिलाफ के मुकदमे तो एक-एक करके टूटते ही जा रहे थे। यह सब ग्रह-भोग तो काल-चक्र के ग्रनुसार ही होता है, शनि महाराज ग्रपना प्रभाव दिखाए बिना रहते नहीं, ऐसी उसकी धारणा थी। कर्म-गति को कोई टाल

नहीं सकता, स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम राम नहीं टाल सके, धर्मराज युधिष्ठिर नहीं टाल सके तो धनंजय जैसा सर्वसाधारण आदमी क्या टाल सकता है? उस समय तो धीरज रखकर और अपने आन्तरिक सत्य पर तथा ईश्वर पर अटूट श्रद्धा रखकर ही विपदा सहनी पड़ती है। समय बदलता है तब तो खूंटी भी हार निगल लेती है और मरी-भुनी हुई मछलियां उछलकर पानी में कूद जाती हैं। सोने को हाथ लगाओ तो वह मिट्टी बन जाता है। पर यह समय भी हमेशा ऐसे नहीं रहता, क्योंकि बदलना उसका धर्म है, काल-चक्र कभी स्थिर नहीं रहता। जो ऊंचे बैठे हैं वे गिरते हैं, और जो नीचे हैं वे ऊपर उठते हैं। प्रकृति का यह नियम अटल है।

इसलिए विपदा के दिनों में तो यही श्रेयस्कर है कि :

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, समुझि दिनन कौ फेर।
जब दिन नीके आतु हैं, बनत न लागे देर॥

धनंजय को विश्वास था, और वह स्वयं देख रहा था कि उसका समय अब बदल रहा है और उसकी मुसीबतों और चिन्ताओं का अन्त होने की घड़ी निकट आ रही है। और यह क्रम जोशी जी रहते तब भी नहीं टूटता। इसमें नियति अपना खेल अलग खेलती है। उसके कार्य करने के तौर-तरीके बिलकुल भिन्न होते हैं, तर्क और समझ से परे होते हैं। मानव तो नियति के हाथ में एक कठपुतली का खिलौनामात्र है। वह उससे चाहे जैसा नाच नचवा सकती है।

पर धनंजय मानव है। उसके भीतर हृदय है, और वह प्रियजनों के वियोग में रोता है।

आज वह जोशी जी के लिए फूट-फूटकर रो उठा। और जब शोक का आवेग कम हो गया तब वह बिस्तर से उठा और बोला, 'गीता, चलो ठाकुर जी के सामने दीप जलाकर उनसे प्रार्थना करें कि वे दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।'

५२

एक महीने बाद। चुनाव के बादल उमड़ आए थे, और चारों तरफ भाइयो, हमें वोट दो; देवियो, हमें वोट दो के नारे सुनाई पड़ रहे थे। राजनीतिक नभोमण्डल में जैसे तूफान आ गया, पद-लोलुप और उनसे लाभ उठाने वाले

व्यक्तियों के सिर पर जैसे भूत सवार हो गया। और सारे दिगन्त में वही नारे, वही स्वर सुनाई देते—भाइयो, हमें वोट दो! देवियो, हमें वोट दो!!

वही मोटरों की घर-घर और दौड़-धूप, लाउड स्पीकरों की भों-भों, हैण्डबिलों की लाखों की तादाद में छपाई और वितरण। दे समाचारपत्रों में प्रोपेगैण्डा! किसीको बात करने की फुर्सत नहीं। हां, आप कह दें कि हमारे पास इतने वोट हैं तो फिर बात ही अलग है। फिर आप तो उनके देवता हो गए। लीजिए, यह मोटर, ये हैण्डबिल, यह रुपया, यह हमारा फोटो और यह हमारी पेटी की निशानी।

ओफ! अजीब हालत थी। मिनिस्टर हवाई जहाजों से दौरे कर रहे थे, मोटर में खाते थे, मोटर में सोते थे। विधान सभा के सदस्यों का और टिकट पाए हुए उम्मीदवारों का भी वही हाल। जीप गाड़ी, रेलगाड़ी, साइकिल—सब लोगों की कुण्डली में ज़बर्दस्त वाहन-योग आ पड़ा था। किसीका ठौर-ठिकाना नहीं। किसी-को मिलने जाओ तो उनके यहां के लोग कहते कि फलां जगह गए हैं, मध्य रात्रि को लौटेंगे, कल पांच बजे सुबह फिर निकल जाएंगे।

सेक्रेटरिएट इस समय शान्त रहता है। चुनाव के अधिकारी मात्र बड़े व्यस्त रहते हैं। बाकी शाम को क्लब में ताश खेलकर तथा चुनाव की अटकलबाजियां लगाकर अपना वक्त गुज़ार देते हैं। अब चुनाव खतम होने तक उनके काम में बाधा पहुंचाने की किसीको फुर्सत ही नहीं है। हां, कहीं वोटों का मामला आ पड़ा तो आधी रात को कोई जगा ले जाए तो बात अलग है। पर यदि जवाब मिल गया कि साहब, फाइल कहां है, ज़रा देखना पड़ेगा तो दुबारा फिर आपके पास आने की उन्हें फुर्सत ही नहीं है।

धनंजय ये सब राग-रंग जानता था, कई बार देख चुका था। इस तमाशे का सबसे बड़ा लुत्फ तो वही लोग उठाते हैं जो इससे निर्लिप्त रहते हैं। धनंजय की भी वही हालत थी। कोई जीते, कोई हारे इसमें उसे कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। हां, राष्ट्रीय दल की पुरानी तपस्या के बल पर जो इज्ज़त अभी बनी हुई है उससे तो यही दिखता था कि वही जीतेगा। कोई संगठित विरोधी दल भी तो नहीं बन पाया है; वे सब तितर-बितर हैं। इसलिए मजबूरन लोग राष्ट्रीय दल की पेटी में ही वोट डालते, हालांकि दिल में उनके लिए इज्ज़त घटती जा रही थी।

पर हाथी को भी बैठने में समय लगता है। सो राष्ट्रीय दल का रथ अभी भी आगे बढ़ा चला जा रहा था, हालांकि उसकी रफ्तार कुछ धीमी पड़ गई थी।

धनंजय सोचता कि ये लोग यदि अपना घर-बार ठीक कर लें, और पुराने चरित्र और आदर्शों की भूमिका पर लौट आएं तो अभी दस-बीस साल इनके प्रभाव में खण्ड नहीं पड़ेगा। पर इस ओर उनका ध्यान जाए तब तो!

जोशी जी का अन्त दिल्ली में हुआ था। पर उनका दाह-संस्कार सूबे की राजधानी में किया गया था। वहीं उनकी कच्ची समाधि भी बनी हुई थी। अभी सब लोग चुनाव-चक्र में फंसे थे। वह समाप्त होने के बाद शासन उनके लिए पक्का स्मारक तैयार करने की योजना बना रहा था।

नये मुख्य मन्त्री की घोषणा हो चुकी थी और प्रदेश की राजनीति में नई हवाएं बहने लगी थीं। सत्ता के सूत्र अब और लोगों के हाथों में आ गए थे और वे फूले नहीं समाते थे। जिनके हाथ से वे चले गए थे वे मायूस थे। चंचला राजनीति ने नये वर के गले में जयमाला डाली थी। उगते हुए सूरज के पुजारी अब अस्तायमान सूर्य की याद करना भी भूल गए। आखिर वे सब बेचारे बादशाह के ही गुलाम तो थे, बैंगन के तो थे नहीं। सबका ध्यान जीवित मन्त्रियों की तरफ था, मृतक की समाधि की ओर नहीं।

वह पड़ी थी अपनी एकान्त पहाड़ी शय्या में, अकेली और मौन। शहर से वह स्थान दो मील बाहर था।

धनंजय वहां पहुंचा तब शाम हो रही थी। उस समय उसे छोड़कर और कोई वहां नहीं था। हां, कहने को था उसके स्कूटर का एक मुसलमान ड्राइवर जो दूर एक दरख्त के नीचे बैठकर पहाड़ की तरफ मुंह करके बीड़ी पी रहा था। स्कूटर का ठहराव घण्टे के हिसाब से था, इसलिए उसे लौटने की जल्दी नहीं थी।

धनंजय समाधि के बाहरी कटघरे के फाटक से भीतर गया। समाधि के पास जाते ही वह अपने आपको नहीं सम्हाल सका—रो पड़ा।

उसने अपने हाथ की पुड़िया खोलकर समाधि पर फूल चढ़ाए और उसपर सिर टिकाकर उसने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

और वह समाधि की तरफ मुंह करके नीचे ज़मीन पर ही पालथी मारकर हाथ जोड़कर बैठ गया। उसकी आंखें बन्द थीं, तरल थीं। और धीरे-धीरे उसके मुंह से शब्द निकले, 'आप तो जानते ही हैं जोशी जी, कि आपके प्रति मेरी सच्ची भावनाएं क्या रही हैं। दुनिया जाने या न जाने इससे कोई बहस नहीं है। भाग्य ने आपको और मुझे लड़ा दिया, यह उसका खेल था। पर आपकी आत्मा जानती है

ग्रौर ईश्वर जानता है कि संघर्ष के भयंकर दिनों में भी ग्रापके प्रति मेरे मन में कोई कटुता नहीं रही बल्कि स्नेह ही रहा ग्रौर यदि मैं ग्रापसे लड़ता था तो उसमें क्रोध की बजाय विषाद ही ग्रधिक था। कटुता के बजाय खेद ही था कि नियति हम लोगों से क्यों यह ग्रप्रिय खेल करा रही है? इस संघर्ष में मेरे मन में ग्रसहायता ग्रौर कर्तव्य-बुद्धि को छोड़कर ग्रौर कोई भावना नहीं थी।

'ग्रापने ग्रौर मैंने एक दूसरे के दिल को काफी दुखाया है, काफी चोटें दी हैं, पर ग्राज हमें सब कुछ भूलकर एक दूसरे को माफ करना चाहिए। 'मरणान्तानि वैराणि'। ग्रापके जीवित रहते हुए मैं यदि यह कहने के लिए ग्रापके पास ग्राता तो गलतफहमी होने की सम्भावना थी। पर ग्राज मैं यह ग्रापकी ग्रात्मा के सम्मुख कहने के लिए ग्राया हूं। ग्रात्मा ग्रमर होती है यह मेरी श्रद्धा है इसलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरी ग्रावाज़ ग्राप तक ग्रवश्य पहुंची होगी ग्रौर जिस दिव्य लोक में ग्राप ग्रभी विचरण कर रहे होंगे उसमें तो ग्राप मेरे कुछ कहे-सुने बिना ही मेरी भावना को जान गए होंगे।

'मैं ग्रापको श्रद्धा से ग्रवनत होकर नमस्कार करता हूं ग्रौर ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह ग्रापकी ग्रात्मा को चिर शान्ति प्रदान करे:

'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे,
ग्रस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः,
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥'

पश्चिम में सूरज डूब रहा था, पर उसकी सुनहरी किरणें ग्रस्त होने के पहले एक बार फिर समाधि को उद्भासित कर उठीं।

धनंजय का चेहरा भी उन किरणों की सौम्यता में शान्ति पा गया।

उसने ग्राखिरी बार फिर प्रणाम किया ग्रौर एक गहरा निःश्वास लेकर उठा।

स्कूटर का ड्राइवर भी दौड़कर ग्रपनी सीट पर जा बैठा ग्रौर गाड़ी स्टार्ट करते हुए बोला, 'क्या ग्रापका पण्डित जी के साथ नज़दीक का रिश्ता था?'

'हां भाई, बड़े नज़दीक का रिश्ता था, वे मेरे वालिद जैसे ही थे।'

स्कूटर वाले ने भी बड़ी ग्रदब से ग्रपना सिर झुकाया ग्रौर उसकी गति तेज़ कर दी। देखते-देखते स्कूटर हवा से बातें करने लगा।